ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला : अपभ्रंश ग्रन्थांक-१

महाकवि स्वयम्भूदेव विरचित

पउमचरिउ

[भाग १]

मूल-सम्पादक

डॉ एच सी भायाणी
एम ए, पी-एच डी.

अनुवाद

डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन
एम ए., पी-एच डी

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

वीर निर्वाण सवत् २५०१, विक्रम सवत् २०३१, सन् १९७५ ईसवी
तृतीय संस्करण – मूल्य . दस रुपये

स्वर्गीया पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें
तत्सुपुत्र साहू शान्तिप्रसादजी द्वारा संस्थापित

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालाके अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड़, तमिल आदि प्राचीन भाषाओंमें उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन-साहित्यका अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उसका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदिके साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन भण्डारोंकी ग्रन्थ-सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, विशिष्ट विद्वानोंके अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित हो रहे हैं।

●

ग्रन्थमाला सम्पादक

डॉ. आ. ने. उपाध्ये, एम. ए., डी. लिट्.
सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री

●

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
प्रधान कार्यालय बी/४५-४७, कॅनॉट प्लेस, नयी दिल्ली-११०००१
प्रकाशन कार्यालय दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-२२१००५
मुद्रक सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-२२१००५

●

स्थापना फाल्गुन कृष्णा ९, वीर निर्वाण संवत् २४७०
विक्रम संवत् २००० ● १८ फरवरी सन् १९४४

JÑĀNAPĪṬHA MŪRTIDEVĪ GRANTHAMĀLĀ Apabhraṃśa Gra. No 1

PAUMA-CARIU

of

SVAYAMBHŪDEVA

Text Edited by

Dr. H C Bhayani
M A., Ph D.

Translated by

Dr Devendra Kumar Jain
M A, Ph. D
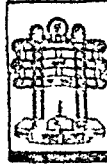
BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA PUBLICATION

VIRA NIRVANA SAMVAT 2501,
VIKRAMA SAMVAT 2031, 1975 A. D
Third Edition : Price Rs. 10.00

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA MŪRTIDEVĪ

JAINA GRANTHAMĀLĀ

Founded By

SĀHU SHANTIPRASAD JAIN

IN MEMORY OF HIS LATE BENEVOLENT MOTHER

SMT. MURTIDEVI

In this Granthamālā critically edited Jaina Āgamic, Philosophical, Paurāṇic, Literary, Historical and other original texts available in Prakrit, Sanskrit, Apabhraṁśa, Hindi, Kannada, Tamil etc., are being published in their respective languages with their translations in modern Indian languages

&

Catalogues of Jaina Bhandāras, Inscriptions, Studies of competent scholars & popular Jain literature are also being published

General Editor

Dr A N Upadhye, M A, D Litt

Siddhantacharya **Pt. Kailash Chandra Shastri**

Published by

Bhāratīya Jñānapītha

Head Office B/45-47, Connaught Place, New Delhi-110001

Publication Office Durgakund Road, Varanasi-221005

Founded on Phalguna Krishna 9, Vira Sam 2470

Vikrama Sam 2000, 18th Feb 1944

प्राथमिक वक्तव्य

महाकवि स्वयम्भू और उनकी दो विशाल अपभ्रंश रचनाओ—पउमचरिउ और हरिवश-पुराणके सम्बन्धमे बहुत कुछ लिखा जा चुका है। इनका सर्वप्रथम परिचय—"Svayambhu and his two poems is Apabhransa" by H L Jain (Nagpur University Journal vol I 1935) द्वारा प्रकाशित हुआ था। कविके एक छन्द-ग्रन्थका अन्वेपण कर उसका उपलभ्य भाग डॉ. एच डी. वेलणकरने सम्पादित कर प्रकाशित कराया (ब. रा. ए. सो. जर्नल १९३५ और १९३६)। तत्पश्चात् सन् १९४० मे प्रो मधुसूदन मोदीका 'चतुर्मुख स्वयभू अने त्रिभुवन स्वयभू' शीर्षक लेख भारतीय विद्या अक २–३ मे प्रकाशित हुआ जिसमे लेखकने कविके नामके सम्बन्धमे बडी भ्रान्ति की है। सन् १९४२ में प नाथूराम प्रेमीका 'महाकवि स्वयम्भू और त्रिभुवन स्वयम्भू' लेख उनकी 'जैन साहित्य और इतिहास' नामक पुस्तकके अन्तर्गत प्रकट हुआ। तत्पश्चात् सन् १९४५ मे प. राहुल साकृत्यायनका 'हिन्दी काव्यधारा' ग्रन्थ प्रकाशित हुआ जिसमे कविकी रचनाके काव्यात्मक अवतरण भी उद्धृत हुए। भारतीय विद्या-भवन, बम्बईसे डॉ एच सी. भायाणी द्वारा सम्पादित होकर कविका 'पउमचरिउ' प्रकाशित होना प्रारम्भ हो गया है और अबतक उसके दो भाग निकल चुके है। अतएव प्रस्तुत रचना-सम्बन्धी विशेप जानकारीके लिए यह सब साहित्य देखने योग्य है। कविका दूसरा महाकाव्य 'हरिवशपुराण' अभी सम्पादन-प्रकाशनकी बाट जोह रहा है।

प्रस्तुत प्रकाशनमें डॉ देवेन्द्रकुमारने डॉ भायाणी द्वारा सम्पादित पाठको लेकर उसका हिन्दी अनुवाद दिया है। इस विपयमें अनुवादकने

अपने वक्तव्यमें कुछ आवश्यक बातें भी कह दी हैं। उन्होंने जो परिश्रम किया है वह स्तुत्य है। तथापि, जैसा उन्होंने निवेदन किया है—

"इतने बड़े कविके काव्यका पहली बारमें सर्वांग-सुन्दर और शुद्ध अनुवाद हो जाना सम्भव नहीं।" अतएव स्वाभाविक है कि विद्वान् पाठकोंको इसमें अनेक दूषण दिखाई दें। इन्हें वे क्षमा करेंगे और अनुवादक व प्रकाशकको उनकी सूचना देनेकी कृपा करेंगे।

डॉ देवेन्द्रकुमारजी तथा भारतीय ज्ञानपीठके प्रयाससे अपभ्रंश भाषाके आदि महाकविकी यह विशाल रचना हिन्दी पाठकोंके सम्मुख उपस्थित हो रही है, इसके लिए वे दोनों ही हमारे धन्यवादके पात्र हैं।

हीरालाल जैन
आ. ने. उपाध्ये
प्रधान सम्पादक

१७–२–५८]

दूसरे संस्करणकी भूमिका

आदरणीय भाई लक्ष्मीचन्द्रजीका आग्रह है कि मैं पउमचरिउ भाग-१ के दूसरे सस्करणकी एक पृष्ठीय भूमिका शीघ्र भेज दूँ। पहले संस्करणकी भूमिकामें मैंने लिखा था कि इतने बडे कविके काव्यका पहली बारमे सर्वांग सुन्दर अनुवाद हो जाना सम्भव नही। अनुवादका अर्थ, शब्दश. अर्थ कर देना नही, बल्कि कविके भाव-चेतना, चिन्तन-प्रक्रिया और अभिव्यक्तिकी भगिमासे साक्षात्कार करना है। अत· जब दुबारा अपने अनुवादको देखनेका प्रस्ताव भारतीय ज्ञानपीठने रखा तो मुझे अपना उक्त कथन याद आ गया और मैंने पुनर्निरीक्षणके बजाय उसकी पुनर्रचना कर डाली। मैं अनुभव करता हूँ कि ऐसा करके जहाँ मैने पहले अनुवादकी कमियाँ दूर की, वही महाकवि स्वयम्भूके प्रति ईमानदारी भी बरती।

इस समय अपभ्रंश साहित्यके अध्ययनमें आत्म-विज्ञापनका बाजार गरम है। लोगोकी ढपली अपना राग बजाने और उसे दूसरोके गले उतारनेमें इसलिए सफल है कि एक तो आम पाठक आलोच्य साहित्यसे वैसे ही दूर है, और थूसरे अपभ्रश साहित्यके अध्ययनका दृष्टिकोण, आजसे चालीस साल पहलेके दृष्टिकोण जैसा ही है, बल्कि और विकृत ही हुआ है। आज भी कुछ पण्डित उसे आभीरोकी भाषा मानते है, जबकि आभीर जातिका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नही रहा, और रहा भी हो तो आटेमे नमकके बराबर। याद रखनेकी बात है कि यह नमक भी स्वदेशी था। परन्तु कुछ हिन्दी पण्डित आज भी नमकको ही विदेशी नही मानते, बल्कि आटेको भी विदेशी मानते है। इधर तुलनात्मक अध्ययनके नामपर हिन्दी प्रेमाख्यानोकी शैली अपभ्रश चरितकाव्योमे खोजी जा रही है।

आश्चर्य तो यह है कि इस प्रकारकी मान्यताएँ उच्चशोधके नामपर विश्वविद्यालयोसे उपाधियाँ लेकर स्थापित हो रही है। मैं समझता हूँ इसका विरोध करनेकी हिम्मत सरस्वतीमें भी नहीं है, क्योंकि आखिर वह भी उनकी गिरफ्तमें है, 'इण्टरव्यू' सरस्वती नहीं, ये लोग लेते हैं। इसका प्रारम्भिक इलाज यही है कि मूलकाव्योंका प्रामाणिक अनुवाद सुलभ कर दिया जाये। और यह काम भारतीय ज्ञानपीठ जिस निष्ठासे कर रहा है उसकी सराहना की जानी चाहिए।

इस अवसरपर मैं स्व. डॉ हीरालाल और स्व डॉ गुलाबचन्द्र चौधरीका पुण्यस्मरण करता हूँ। श्री चौधरीने जैन साहित्यके लिए बहुत कुछ किया, और वह बहुत कुछ करनेकी स्थितिमें थे। परन्तु अचानक चल बसे। दुख यह देखकर होता है कि जैन समाज, महावीरके २५००वें *निर्वाण महोत्सव वर्षमें 'पुरस्कारों' की वर्षा कर रहा है, लेकिन स्व.* चौधरीकी ओर किसीका ध्यान नहीं! अभी भी समय है और इस सम्बन्धमें कुछ स्थायी रूपसे किया जा सकता है। पउमचरिउके अनुवादकी मूल प्रेरणा मुझे आदरणीय पण्डित फूलचन्द्रजीने दी थी, और पूरा करनेमें आदरणीय लक्ष्मीचन्द्रजीने सहयोग दिया—दोनोंके प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, साथ ही सम्पादक मण्डलके प्रति भी।

११४ उषानगर
इन्दौर-२
६ फरवरी १९७५

—देवेन्द्रकुमार जैन

प्रास्ताविक

पउमचरिउके रचयिता कवि स्वयम्भू, अपभ्रश भापाके ही नही वरन् भारतीय भापाओके गिने-चुने कवियोमेंसे एक है। आदिकविके वाद 'रामकथाकाव्य' के वह समर्थ और प्रभावशाली कवि है, यद्यपि उनके पूर्व विमलसूरि और आचार्य रविषेण, अपने काव्य 'पउमचरिअ' और पद्मचरित लिख चुके थे। परन्तु स्वयम्भूकी पद्धडिया वन्धवाली कडवक शैली, इतनी प्रभावक और लोकप्रिय हुई कि उनके सात-आठ सौ साल वाद हिन्दी कवि तुलसीदासने लगभग उसी शैलीमें अपना महाकाव्य लिखा। श्रद्धेय प फूलचन्द्रजीकी प्रेरणासे मैंने प्रस्तुत अनुवाद प्रारम्भ किया था और उन्हीके सुझावपर भारतीय ज्ञानपीठने इसे प्रकाशित करना स्वीकार किया। जुलाई १९५३ मे जव मैंने यह कार्य प्रारम्भ किया उस समय मै अल्मोडेमे था। अनुवादका मूलाधार डॉ एच सी भायाणी द्वारा सम्पादित 'पउमचरिउ' है। स्वयम्भूकी खोजका श्रेय क्रमशः स्व डॉ पी. डी. गुणे, मुनि जिनविजय, स्व नाथूरामजी प्रेमी, स्व डॉ हीरालालजी जैन आदि विद्वानोको है। हिन्दी जगत् को स्वयभूके परिचयका श्रेय स्व राहुल साकृत्यायनको है। परन्तु उसका सुसम्पादित सस्करण सुलभ करानेका श्रेय श्री डॉ. एच सी भायाणीको है। जो काम पुष्पदन्तके महापुराणको प्रकाशमे लानेके लिए डॉ पी एल वैद्यने किया, वही काम पउमचरिउको प्रकाशमे लानेके लिए डॉ भायाणीने। सस्कृत काव्योके अनुवादकी तुलनामें अपभ्रश काव्योका अनुवाद कितना कठिन और समय-साध्य है, यह वही जान सकता है कि जिसे इसका अनुभव है। उसमें व्याकरण और शब्दोकी वनावट ही नही, प्रत्युत वाक्योके लहजेको भी समझना पडता है, कहाँ कवि की अभिव्यक्ति शास्त्रीय है और कहाँ

लोकमूलक ?—इसका सही-सही विचार किये बिना—आगे बढ़ना कठिन ही नहीं असम्भव है। वैसे कविने स्वयं अपने प्रस्तावनावाले रूपकमें कहा है कि इसमें कहीं-कहीं दुष्कर शब्दरूपी चट्टानें हैं। चट्टानें नदीकी धाराओंमें दिख जाती हैं और वे उसे काटकर निकल जाती हैं, परन्तु स्वयम्भूके सघन दुष्कर शब्दरूपी शिलातलोंकी कठिनाई यह है कि अर्थ की धाराएँ उन्हींमें समाहित हैं। उनका भेदन किये बिना अर्थ तक पहुँचना कठिन है। स्वयम्भू-जैसे क्लासिक कविके अनुवादके लिए जो समझ, अभ्यास और अनुभव आज मुझे प्राप्त है, वह आजसे बीस साल पहले नहीं था। दूसरे स्वयम्भू-जैसे जीवनसिद्ध कवियोंकी रचनाओंका निर्दोष और सम्पूर्ण अनुवाद एक बारमें सम्भव नहीं। इधर बहुत-से अपभ्रंश काव्य प्रकाशित हुए हैं, और उसके विविध अंगोंपर शोध प्रबन्ध भी देखनेमें आये हैं, जो इस बातके प्रमाण हैं कि हिन्दी जगत् अपभ्रंश-भाषा और साहित्यके प्रति आकृष्ट हो रहा है, यद्यपि अपभ्रंशमें शोधके निर्देशक सिद्धान्त दिशाएँ अभी भी अनिश्चित हैं। इसका एक कारण अपभ्रंशके प्रमुख काव्योंका हिन्दीमें प्रामाणिक अनुवाद न होना है। स्व डॉ हीरालाल जैन द्वारा सम्पादित अपभ्रंश काव्य इसके अपवाद हैं। उन्होंने मूलपाठके समानान्तर हिन्दी अनुवाद भी दिया है। भारतीय ज्ञानपीठ इस दिशामें विशेष प्रयत्नशील है, उसीका यह परिणाम है कि 'पउमचरिउ' हिन्दी जगत्में लोकप्रिय हो सका। भारतके विभिन्न विश्वविद्यालयोंमें 'उसके' अंश पाठ्यक्रममें निर्धारित होनेसे उसकी बिक्री बढ़ी है। 'पउमचरिउ'के प्रथम काण्डको दुबारा छापनेकी सम्भावनाको देखते हुए आ भाई लक्ष्मीचन्दजीने मुझे लिखा कि "मैं सारे अनुवादको अच्छी तरह देख लूँ जिससे उसमें अशुद्धियाँ न रह जायें।" इस दृष्टिसे जब मैंने अनुवादको देखा तो लगा कि पुराने अनुवादमें सुधार करनेके बजाय उसकी पुनर्रचना ही ठीक है। ऐसा करनेमें ही कविके साथ न्याय हो सकता है। मैं अब अपभ्रंश काव्यके प्रेमी पाठकोंके लिए यह विश्वास दिला सकता हूँ कि प्रस्तुत अनुवादको शुद्ध और प्रामाणिक बनानेमें मैंने कोई कसर नहीं उठा रखी। फिर भी अपभ्रंश काव्यके मूल्यांकनमें

दिलचस्पी रखनेवाले विद्वानोसे निवेदन है कि यदि उनके ध्यानमें गलतियाँ आयें तो वे नि.सकोच मुझे सूचित करनेका कष्ट करें जिससे भविष्यमे उनका साभार परिमार्जन किया जा सके। मैं भाई लखमी-चन्द्रजीके प्रति हमेशाकी तरह अपना आभार व्यक्त करता हूँ। यह वर्ष तीर्थंकर महावीरकी २५००वी और हिन्दी सन्त कवि तुलसीके 'राम-चरितमानस' की ४००वी वर्षगांठ है, अत भूमिकाके रूपमें अनुवादके साथ 'पउमचरिउ और रामचरितमानस' का कुछ महत्त्वपूर्ण विन्दुओपर मैंने तुलनात्मक परिचय भी दे दिया है जिससे पाठक यह जान सकें कि दो विभिन्न दार्शनिक भूमिकाओ और समयोमें लिखे गये उक्त रामकाव्योमे 'भारतीय जनमानस' किन रूपोमे प्रतिबिम्बित हुआ है।

१ ४ १९७४
११४ उषानगर
इन्दौर–२

—देवेन्द्रकुमार जैन

'पउमचरिउ' और 'रामचरितमानस'

स्वयम्भू और उनकी रामकथा

स्वयम्भूने आचार्य रविषेण (ई ६७४) का उल्लेख किया है, और पुष्पदन्तने (ई ९५९) स्वयम्भू का। अत. स्वयम्भूका समय इन दोनोंके बीच आठवी और नौवी सदियोंके मध्य सिद्ध होता है। कर्णाटक और महाराष्ट्रमें उस समय घनिष्ठ सम्पर्क था, अत अधिकतर सम्भावना यही है कि स्वयम्भू महाराष्ट्रमे आकर यहाँ बसे। कुछ विद्वान् स्वयम्भूको कन्नौजसे प्रव्रजित इस आधारपर मानते हैं कि प्रसिद्ध राष्ट्रकूट राजा ध्रुवने कन्नौजपर आक्रमण किया था और उसीके अमात्य रयडा धनजयके साथ स्वयम्भू उत्तरसे दक्षिण आये। परन्तु यह बहुत दूरकी कल्पना है जिसका कोई ऐतिहासिक आधार नही। स्वयम्भूकी माताका नाम पद्मनी और पिताका मारुतदेव था। कविकी दो पत्नियाँ थी—आदित्याम्मा और अमृताम्मा। एक अपुष्ट आधारपर उनकी तीसरी पत्नी भी बतायी जाती है। एक धारणा यह भी है कि स्वयम्भूने अपनी तीनो रचनाएँ अधूरी छोडी जिन्हें उनके पुत्र त्रिभुवन स्वयम्भूने पूरा किया। परन्तु यह धारणा ठीक प्रतीत नही होती। क्योकि यह विश्वास करना कठिन है कि स्वयम्भू जैसा महाकवि सभी रचनाओको अधूरा छोडेगा। एकाध रचनाके विषयमें तो यह सच हो सकता है, परन्तु सभी रचनाओंके सम्बन्धमें नही। पउमचरिउके अलावा उनकी दो रचनाएँ और है—'रिट्ठणेमि चरिउ' और 'स्वयम्भूच्छन्द'।

स्वयम्भूके अनुसार रामकथा तीर्थंकर महावीरके समवशरणसे प्रारम्भ होती है। राजा श्रेणिक पूछता है और गौतम गणधर उसे बताते है। उनके अनुसार, भारतमे दो वश थे—एक इक्ष्वाकुवश (मानव वश) और

दूसरा विद्याधर वश। आदि तीर्थंकर ऋषभनाथ इसी परम्परामे राजा हुए। उनके पुत्र भरत चक्रवर्तीकी लम्बी परम्परामे सगर चक्रवर्ती सम्राट् हुआ। वह विद्याधर राजा सहस्राक्षकी कन्या तिलककेशीसे विवाह कर लेता है। सहस्राक्ष अपने पिताके बैरका बदला लेनेके लिए, विद्याधर राजा मेघवाहनको मार डालता है। उसका पुत्र तोयदवाहन अपनी जान बचाकर तीर्थंकर अजितनाथके समवशरणमे शरण लेता है। वहाँ सगरके भाई भीम सुभीम तोयदवाहनको राक्षसविद्या तथा लका और पाताल लका प्रदान करता है। यहीसे राक्षसवशकी परम्परा चलती है जिसमें आगे चलकर रावणका जन्म होता है। इसी प्रकार इक्ष्वाकु कुलमे राम हुए।

तोयदवाहनकी पाँचवी पीढीमे कीर्तिधवल हुआ। उसने अपने साले श्रीकण्ठको वानरद्वीप भेंटमे दिया जिससे वानरवशका विकास हुआ। 'वानर' श्रीकण्ठके कुलचिह्न थे। राक्षसवश और वानरवशमे कई पीढियो तक मैत्री रहनेके बाद श्रीमालाके स्वयवरको लेकर दोनोमे विरोध उत्पन्न हो जाता है। राक्षस वशको इसमे मुँहकी खानी पडती है। जिस समय रावणका जन्म हुआ उस समय राक्षस कुलकी दशा बहुत ही दयनीय थी।

रावणके पिताका नाम रत्नाश्रव था और माँका कैकशी। एक दिन खेल-खेलमें भण्डारमे जाकर वह राक्षसवशके आदिपुरुष तोयदवाहनका नवग्रह हार उठा लेता है, उसमे विजडित नवग्रहोमे रावणके दस चेहरे दिखाई दिये, इससे उसका नाम दशानन पड गया। रावण दिन दूना रात चौगुना बढने लगा। उसने विद्याधरोसे बदला लिया। पूर्वजोकी खोयी जमीन छीनी। विद्याधर राजा इन्द्रको परास्त कर अपने मौसेरे भाई वैश्रावणसे पुष्पक विमान छीन लिया। उसकी बहन चन्द्रनखाका खरदूषण अपहरण कर लेता है। वह बदला लेना चाहता है, परन्तु मन्दोदरी उसे मना कर देती है। वालीकी शक्तिकी प्रशंसा सुनकर रावण उसे अपने अधीन करना चाहता है। परन्तु वाली इसके लिए तैयार नही है। रावण

उसपर आक्रमण करता है परन्तु हार जाता है। बाली दीक्षा ग्रहण कर लेता है।

नारद मुनिसे यह जानकर कि दशरथ और जनककी सन्तानोके हाथ रावणकी मृत्यु होगी, विभीषण दोनोको मारनेका षड्यन्त्र रचता है। वे दोनो भाग निकलते है। दशरथ कौतुकमगल नगरके स्वयवरमें भाग लेते है। कैकेयी उन्हे वरमाला पहना देती है। इसपर दूसरे राजा दशरथपर आक्रमण करते है, कैकेयी युद्धमे उनकी रक्षा करती है, दशरथ उन्हे वरदान देते है। दशरथके ४ पुत्र होते है, कौशल्यासे रामचन्द्र, कैकेयीसे भरत, सुमित्रासे लक्ष्मण और सुप्रभासे शत्रुघ्न। जनकके एक कन्या सीता और एक पुत्र भामण्डल उत्पन्न होता है। परन्तु इसे पूर्वजन्मके वैरसे एक विद्याधर राजा उडाकर ले जाता है। जनकके राज्यपर कुछ वर्बर म्लेच्छ राजा आक्रमण करते है। सहायता मांगनेपर दशरथ राम और लक्ष्मणको भेजते है। वे जनककी रक्षा करते हैं। स्वयवरमें वज्रावर्त और समुद्रावर्त धनुष चढा देनेपर सीता रामको वरमाला पहना देती हैं। दशरथ अयोध्यासे बारात लेकर आते है। शशिवर्धन राजाकी १८ कन्याओकी शादी रामके दूसरे भाइयोसे हो जाती है। बुढापेके कारण दशरथ रामको राजगद्दी देना चाहते है। परन्तु कैकेयी अपने वर मांग लेती है जिनके अनुसार राम को वनवास और भरतको राजगद्दी मिलती है। उस समय भरत अयोध्यामें ही था। राम वनवासके लिए कूच करते है। स्वयम्भूके अनुसार वास्तविक राघव-चरित यहीसे प्रारम्भ होता है। गम्भीरा नदी पार करनेके बाद राम जब एक लतागृहमे थे, तब भरत उन्हे अयोध्या वापस चलनेके लिए कहता है। राम अपने हाथसे दुबारा उसके सिरपर राजपट्ट बाँध देते है। भरत जिनमन्दिरमें जाकर प्रतिज्ञा करता है कि रामके लौटते ही वह राज्य उन्हें सौंप देगा। चित्रकूटसे चलकर राम वशस्थल नामक स्थानपर पहुँचते है, जहां सूर्यहास खड्ग सिद्ध करते हुए शम्बुकका धोखेसे सिर काट देते है। उसकी मां चन्द्रनखा अपने पुत्रको मरा देखकर हत्यारेका पता लगाती है। राम-लक्ष्मणको

देखकर उसका आक्रोश प्रेममें बदल जाता है। वह उनसे अनुचित प्रस्ताव करती है। लक्ष्मण उसे अपमानित कर भगा देते है। राम-रावणके संघर्षकी भूमिका यहीसे प्रारम्भ होती है। खरदूषणके हारनेपर चन्द्रनखा रावणके पास जाकर अपनी गुहार सुनाती है। वह अवलोकिनी विद्याकी सहायतासे सीताका अपहरण कर लेता है। मार्गमे जटायु और भामण्डलका अनुचर विद्याधर इसका विरोध करता है। परन्तु उसकी नही चलती। लका पहुँचकर सीता नगरमें प्रवेश करनेसे मना कर देती है, रावण उसे नन्दनवन में ठहरा देता है। रावण सीताको फुसलाता है। परन्तु व्यर्थ। रावणकी कामजन्य दयनीय स्थिति देखकर मन्त्रिपरिषद्की बैठक होती है।

तीसरे सुन्दर काण्डमे राम सुग्रीवकी पत्नीका उद्धार कपट सुग्रीव (सहस्रगति) से इस शर्तपर करते है कि वह उनकी सीताकी खोज-खबरमे योग देगा। पहले तो सुग्रीव चुप रहता है, परन्तु वादमे लक्ष्मणके डरसे वह चार सामन्त सीताकी खोजके लिए भेजता है। सीताका पता लगनेपर हनुमान् सन्देश लेकर जाता है। सीताकी प्रतिज्ञा थी कि वह पतिकी खबर मिलनेपर ही आहार ग्रहण करेगी। हनुमानसे समाचार पाकर वह आहार ग्रहण करती है। समझौतेके सब प्रस्ताव-वार्ताएँ असफल होनेपर युद्ध छिडता है, और रावण लक्ष्मणके हाथो मारा जाता है। रावणका दाहसस्कार करनेके वाद राम अयोध्या वापस आते है और सामन्तोमे भूमिका वितरण कर देते है। कुछ समय राज्य करनेके वाद, (.कविके अनुसार) रामका मन सीतासे विरक्त हो उठता है, अनुरक्तिके समय रामने सीताके लिए क्या-क्या नही किया, विरक्ति होने पर रामको वही सीता काटने दौडती है। वह उसका परित्याग कर देते है, सीताको वनमें-से उसका मामा वज्रजघ ले जाता है, जहाँ वह 'लवण' और 'कुश' दो पुत्रोको जन्म देती है। वडे होनेपर उनका रामसे द्वन्द होता है। वादमें रहस्य खुलनेपर राम उन्हें गले लगा लेते है। अग्नि परीक्षाके वाद सीता दीक्षा ग्रहण कर लेती है। कुछ दिन वाद लक्ष्मणकी मृत्यु होती है, राम

उसके शवको कन्धेपर लादकर छह माह तक घूमते-फिरते हैं। अन्तमें आत्मबोध होनेपर दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। तपकर मोक्ष प्राप्त करते हैं।

तुलसी और मानस

तुलसीदास १६वी सदीमें हुए। इनका बचपन उपेक्षा, कठिनाई और सकटमें बीता। पिताका नाम आत्माराम दुबे था और माताका हुलसी। इन्होंने राजापुर, काशी और अयोध्यामें निवास किया। उन्हे रामकथा सूकर क्षेत्रमें सुननेको मिली। तुलसीका प्रामाणिक इतिवृत्त न मिलनेपर उनके विषयमें तरह-तरहकी किंवदन्तियां हैं, जिनका यहाँ उल्लेख अनावश्यक है। कहते हैं कि एक बार ससुराल पहुँचनेपर इनकी पत्नी रत्नावली इन्हे झिडक देती है जिनसे कविको आत्मबोध होता है और वह रामभक्तिमे लग जाता है। उनका मन रामके लोककल्याणकारी चरितमें रम गया, उन्होंने निश्चय कर लिया कि मैं रामके चरित की लोकमानसमें प्रतिष्ठा करूँगा। तुलसीके अनुसार रामकथाकी परम्परा अगस्त मुनिसे प्रारम्भ होती है। वह यह कथा शिवको सुनाते हैं, शिव पार्वतीको, और बादमें काकभुशुण्डीको। उनसे यह कथा याज्ञवल्क्यको मिलती है और उनसे भारद्वाजको। कवि, इसके अलावा उन स्रोतोंका उल्लेख करता है जिन्होंने उसके कथाकाव्यको पुष्ट बनाया। मुख्यरूपसे वह आदिकवि और हनुमान्-का उल्लेख करता है, क्योंकि एक रामकथाका कवि है और दूसरा रामभक्ति-का प्रतीक। तुलसीके लिए दोनो अपरिहार्य हैं। कवि सन्तसमाजको चलता-फिरता तीर्थराज कहता है जिसमें रामभक्तिरूपी गगा, ब्रह्मविद्यारूपी सरस्वती और जीवन की विधि निषेधमयी प्रवृत्तियों की यमुनाका सगम है, दूसरे शब्दोंमें, "ब्रह्मविद्याको आधार मानकर प्रवृत्ति-निवृत्तिका विचार करनेवाला सच्चा रामभक्त ही वास्तविक तीर्थराज है।" रामचरित मानस-की बुनावट समझनेके लिए यह एक महत्त्वपूर्ण सकेत है। कविने प्राकृतजन और प्राकृत कवियोका उल्लेख किया है। परन्तु यहाँ उनका प्राकृतसे अभिप्राय लौकिकजन या कविसे है, न कि प्राकृतभाषाके कवि, जैसा कि

कुछ लोग समझते है। अपने मानसरूपकमे वह स्पष्ट करते है—कवि मानव की मूल समस्या यह है कि प्रभुके साक्षात् हृदयमे विद्यमान होते हुए भी मनुष्य दीन-दुखी क्यो है ? पुराणोके समुद्रसे वाष्पोके रूपमे जो विचाररूपी जल साधुरूपी मेघोके रूपमे जमा हो गया था, वही बरसकर जनमानसमे स्थिर होकर पुराना हो गया। कविकी बुद्धि उसमें अवगाहन करती है, हृदय आनन्दसे उल्लसित हो उठता हैं और वही काव्यरूपी सरिताके रूप में प्रवाहित हो उठता है, लोकमत और वेदमतके दोनो तटोको छूती हुई उसकी यह रामकाव्यरूपी सरिता बहकर अन्तमें रामयज्ञके महासमुद्रमें जा मिलती है। और इस प्रकार कविकी काव्ययात्रा उसके लिए तीर्थयात्रा है।

पहले काण्डमे परम्परा और स्रोतोके उल्लेखके बाद, रामजन्मके उद्देश्योपर प्रकाश डालता है। फिर रामभक्तिके सैद्धान्तिक प्रतिपादनके बाद उल्लेख है कि दशरथके चार पुत्र हुए। विश्वामित्रके अनुरोधपर दशरथ राम-लक्ष्मणको यज्ञकी रक्षाके लिए भेज देते है, वहाँ राम धनुषयज्ञमे भाग लेते हैं, और सीतासे उनका विवाह होता है। रामको राजगद्दी देनेपर कैकेयी अपने वर माँग लेती है, फलस्वरूप रामको १४ वर्षोका वनवास मिलता है। भरत ननिहाल से लौटता है और अयोध्यामे सन्नाटा देखकर हैरान हो उठता हैं। बादमे असली बात मालूम होनेपर वह रामको मनाने जाता हैं। अन्तमे रामकी चरणपादुकाएँ लेकर वह राजकाज करने लगता है। जयन्तके प्रसगके बाद राम विविध मुनियोसे भेंट करते हुए आगे बढते है। रावणकी बहन सूर्पणखा राम-लक्ष्मणसे अनुचित प्रस्ताव रखती है। लक्ष्मण उसके नाक-कान काट लेते है। इस घटनासे उनके विरोधकी सम्भावना बढ जाती है। राम सीताका अग्निप्रवेश करा देते है, वहाँ केवल छाया सीता रह जाती हैं। स्वर्णमृगके छलसे रावण छाया सीताका अपहरण करता हैं। इससे राम दुखी होते हैं। शबरी उन्हे सुग्रीवसे मिलनेकी सलाह देती है। राम बालीका वधकर सुग्रीवकी पत्नी तारा उसे दिलवाते है। सुग्रीवके कहनेपर हनुमान् सीताका पता लगाते है। हनुमान् सीतासे भेंट कर वापस आता है। मन्दोदरी रावणको समझाती है। विभीषण अपमानित

होकर रामसे मिल जाता है। अन्तमें रावण युद्धमें मारा जाता है और राम विभीषणको राज्य सौंपकर अयोध्याके लिए कूच करते है। राज्याभिषेकके बाद तुलसीका कवि रामराज्यकी प्रशंसा करता है। भक्ति और ज्ञानके विश्लेषणके बाद कवि पूर्वजन्मोंका उल्लेख करता है। अन्तमें काकभुशुण्डी गरुडके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए कहते है कि ससारका सबसे बडा दुख गरीबी है और सबसे बडा धर्म अहिंसा है। दूसरोकी निन्दा करना सबसे बडा पाप है। सन्त वह है जो दूसरोके लिए दुख उठाये और असन्त वह जो दूसरोको दुख देनेके लिए स्वय दुख उठाये। इस फल कथनके बाद रामचरित मानस समाप्त होता है।

कथानक

पउमचरिउ और रामचरित मानसके कथानकोकी तुलनासे यह बात सामने आती है कि एकमें कुल पाँच काण्ड है और दूसरेमें ७ काण्ड। 'मानस'की मूलकथाका विभाजन आदिरामायणके अनुसार सात सोपानो में है। 'चरिउ' में सात काण्डकी कथाको पाँच भागोमे विभक्त किया गया है। 'चरिउ' का विद्याधर काण्ड 'मानस' के बालकाण्डकी कथाको समेट लेता है, दोनो मे अपनी-अपनी पौराणिक रूढियो और काव्य सम्बन्धी मान्यताओंके निर्वाहके साथ, पृष्ठभूमि और परम्पराका उल्लेख है। थोडे-से परिवर्तनके साथ अयोध्या काण्ड और सुन्दर काण्ड भी दोनोंमे लगभग समान है, लेकिन 'चरिउ' में अरण्य और किष्किन्धा काण्ड अलगसे नही है, इनकी घटनाएँ उसके अयोध्या काण्ड और सुन्दर काण्डमें आ जाती है। मानसके अरण्यकाण्डकी घटनाएँ (चन्द्रनखाके अपमानसे लेकर जटायु-युद्ध तक) चरिउके अयोध्या काण्डमें है। तथा किष्किन्धा काण्डकी घटनाएँ (राम-सुग्रीव मिलन, सीताकी खोज इत्यादि) चरिउके सुन्दर काण्डमे है। वस्तुत' देखा जाये तो किष्किन्धा काण्ड और अरण्य काण्डकी घटनाएँ एक दूसरेसे जुडी हुई है, और उन्हें एक काण्डमें रखा जा सकता है। स्वयम्भूने दोनोका एकीकरण न करते हुए एकको उसके पूर्वके काण्डमें जोड दिया है

और दूसरेको उसके बादके। इस प्रकार दो काण्डोकी सख्या कम हो गयी। लेकिन रामके प्रवृत्तिमूलक और उद्यमशील चरित्रको दोनो प्रधानता देते हैं। रामायणका अर्थ है, रामका अयन अर्थात् चेष्टा या व्यापार। त्रिभुवन स्वयम्भू भी अपने पिताकी तरह रामकथाको पवित्र मानता है। तुलसीदास तो आदिसे अन्त तक उसे 'कलिमल समनी' कहते रहे है। त्रिभुवन स्वयम्भूका कहना है कि जो इसे पढता और सुनता है उसकी आयु और पुण्यमे वृद्धि होती है। त्रिभुवन स्वयम्भू लिखता है—"इस रामकथारूपी कन्याके सात सर्गवाले सात अग है, वह चाहता है कि तीन रत्नोको धारण करनेवाली उसके आश्रयदाता 'विन्दइ'का मनरूपी पुत्र इस कन्याका वरण करे।" हो सकता है विन्दइका चचल मन दूसरी कथा-कन्याओको देखकर लुभा रहा हो और कविने उसका चित्त आकर्षित करनेके लिए नयी कथा-कन्याकी रचना की हो। अपनी कथा-कन्याके सात अग बताकर त्रिभुवनने यह तो सकेत कर ही दिया कि उन्हे उसके सात काण्डोकी जानकारी थी।

वनमार्ग

'मानस'मे रामकी वनयात्राका मार्ग आदिरामायणके अनुसार है। शृगवेरपुरसे प्रयाग, यमुना पार कर चित्रकूट। वहाँसे दण्डकारण्य। ऋष्यमूक पर्वत और पम्पा सरोवर। माल्यवान् पर्वतपर सीताके वियोगमें वर्षाऋतु काटना। रामकी सेनाका सुबेल पर्वतपर जमाव, समुद्रपर सेतु बाँधकर लकामे प्रवेश। इसके विपरीत स्वयम्भूके रामकी वनयात्राका मार्ग है—अयोध्यासे चलकर गम्भीर नदी पार करना। वहाँसे दक्षिणकी ओर राम प्रस्थान करते है, बीचमें आकर भरत रामसे मिलते है, कवि उस स्थान का नाम नही बताता। वह एक सरोवरका लतागृह था। वहाँसे तापस वन, धानुष्क वन और भील बस्ती होते हुए वे चित्रकूट पहुँचते हैं, फिर दशपुर नगरमें प्रवेश करते है। नलकूबर नगरसे विन्ध्यगिरिकी ओर मुडते है, नर्मदा और ताप्ती पार कर, कई नगरोमे-से होकर दण्डक वनसे क्रौच-

नदी पार कर वशस्थलमें प्रवेश करते हैं। 'मानस' और 'आदिरामायण' में चित्रकूटसे लेकर दण्डकवन तकके मार्गका उल्लेख नही है। चरिउमें अयोध्यासे निकलकर राम सीधे गम्भीर नदी पार करते है, स्वयम्भूका गगा जैसी नदी पार करनेका उल्लेख न करना सचमुच विचारणीय है। लेकिन लक्ष्मणको शक्ति लगनेपर हनुमान् जब उत्तर भारतकी उडान मारते है, तो उसमें समुद्र-मलयपर्वत—कावेरी, तुगभद्रा, गोदावरी, महानदी, विन्ध्याचल, नर्मदा, उज्जैन, पारियात्र, मालव जनपद, यमुना, गगा और अयोध्याका उल्लेख है। इसमें गम्भीरका उल्लेख नही है। दोनो परम्पराओके भौगोलिक मार्गोकी खोजसे उस सामान्य मार्गका पता लगाया जा सकता है जिससे रामने वस्तुत यात्रा की थी। क्योकि पौराणिक अतिरजनाएँ भौगोलिक मार्गकी वास्तविकताको नही झुठला सकती।

अवान्तर प्रसग

आदिकवि और स्वयम्भूकी रामकथाकी तुलनासे दूसरा तथ्य यह उभरकर आता है कि मूलकथामे दोनोमें अवान्तर प्रसग जुडते गये है। 'चरिउ'मे ऐसे अवान्तर प्रसग है विभिन्न वशोकी उत्पत्ति, भरत बाहुबलि-आख्यान, भामण्डल आख्यान, रुद्रभूति और वालिखिल्य, वज्रकर्ण और सिंहोदर, राजा अनन्तवीर्य, पवनजय आख्यान, अरुणगाँवका कपिल मुनि, यक्षनगरी, कुलभूषण और देश-भूषण मुनियोका आख्यान। मानसमें ऐसे आख्यान है—शिवपार्वती आख्यान, केकयदेशके प्रतापभानुकी पूर्वजन्मकी कथा, निषादराज गुह, केवट, भरद्वाज, वाल्मीकि, अगस्त्य और सुतीक्ष्ण ऋषियोसे भेंट। अहल्याका उद्धार, जयन्त प्रसग और शबरी आख्यान।

उक्त अवान्तर प्रसगोका उद्देश्य मुख्य कथाको अग्रसर या गतिशील बनाना उतना नही है कि जितना अपने मतको प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति देना। जहाँ तक दोनो काव्योमें समान रूपमे उपलब्ध चरित्रोका प्रश्न है उनके चरित्रकी मूलभूत विशेषताएँ एक सीमा तक सुरक्षित है, शेष परिवर्तन अपनी-अपनी मान्यताओके अनुसार है, विस्तारभयसे यहाँ उनका उल्लेख

नहीं किया जा रहा है। विशिष्ट पात्रोंके चरित्रकी चर्चा भी नहीं की जा रही है क्योंकि वह तुलनात्मक अध्ययनमें सहायक नहीं है।

दार्शनिक विचार

स्वयम्भू और तुलसी दोनों स्पष्टतापूर्वक और आग्रहके साथ अपने दार्शनिक विचार प्रकट करते हैं, जैनदर्शनके अनुसार सृष्टिकी व्याख्या करते हुए वह कहते हैं कि संसार जड और चेतनका अनादि-निधन मिश्रण है। मिश्रणकी इस रासायनिक प्रक्रियाका विश्लेषण नितान्त कठिन है। तात्त्विक दृष्टिसे चेतन आनन्दस्वरूप है, परन्तु जडकर्मने उसपर आवरण डाल रखा है इसलिए जीव दुखी है, आत्माएँ अनेक है, प्रत्येक आत्मा स्वयके लिए उत्तरदायी है। इस प्रकार स्वयम्भू द्वैतवादी और बहु-आत्मवादी है। राग चेतनासे मुक्ति पानेके लिए यह विवेक विकसित करना जरूरी है कि जडसे चेतन अलग है, इस विवेकको वीतराग-विज्ञान कहते हैं। चित्तकी शुद्धिके लिए राग चेतनासे विरति होना जरूरी है। परन्तु इसके साथ और इसीकी सिद्धिके लिए स्वयम्भूने तीर्थकरोंकी विभिन्न स्तुतियाँ और प्रार्थनाएँ लिखी है, श्रद्धाके अतिरेकमें वह तीर्थंकरो को भगवान् त्रिलोक पितामह, त्रिलोक शोभालक्ष्मीका आलिंगन करनेवाला, यहाँतक कि माँ-बाप मान लेते है। तुलसीका दार्शनिक मत सूर्य की तरह स्पष्ट है, क्योंकि उनकी काव्य चेतनाकी मूल प्रेरणा ही भक्ति चेतना है। भगवत्प्राप्तिके बजाय भक्ति ही तुलसीका साध्य है।

> "सगुणोपासक मोक्ष न लेही
> तिन्ह कहुँ रामभक्ति निज देही।"

भक्तिकी अनुभूतिकी निरन्तरता भी उसका एक गुण है :

> "रामचरित जे सुनत अघाही
> रस बिसेस तिन जाना नाहीं"

स्वयम्भूके वीतराग विज्ञानके लिए विरक्ति आवश्यक है और जिनभक्ति, विरक्तिमें सहायक है। तुलसीके लिए भक्ति मुख्य है, विरक्ति उसमें सहायक है। अर्थात् एकके लिए भक्ति विरक्तिका एक साधन है जबकि

दूसरेके लिए विरक्ति भक्तिका। एक बात और, तुलसीके राम समस्त लीलाएँ करते हुए भी, व्यक्तिगत रूपसे उनमें तटस्थ है, जबकि स्वयम्भूके राम जीवनकी प्रवृत्तियोंमें सक्रिय भाग लेते हुए भी उनमें आसक्त है, वह इस आसक्तिको नही छिपाते। लेकिन जीवनके अन्तिम क्षणोंमें विरक्तिको अपना लेते हैं। वस्तुत इसमें दो भिन्न दार्शनिक दृष्टिकोणोंकी दो भिन्न परिणतियाँ है जो जीवनकी पूर्णता और सार्थकताके लिए प्रवृत्ति और निवृत्तिका समुचित समन्वय आवश्यक मानती है।

चरितकाव्य-घटनाकाव्य-महाकाव्य

काव्य—प्रबन्धकाव्यके मुख्य दो भेद है—चरितकाव्य और घटनाकाव्य। घटनाकाव्यमें यद्यपि घटना मुख्य होती है, परन्तु उसमें वर्णनात्मकता अधिक रहती है। इसलिए कुछ पण्डित घटनाकाव्यको वर्णनात्मक माननेके पक्षमें है। वर्णन चरितकाव्यमे भी होते है। परन्तु उसमें किसी पौराणिक या लौकिक व्यक्तिके चरितका एक क्रममें वर्णन होता है। जहाँ तक अपभ्रंशमें उपलब्ध चरितकाव्योंका सम्बन्ध है, वे अधिकतर पौराणिक या धार्मिक व्यक्तियोंके जीवनवृत्तको आधार लेकर चलते है। चरितकाव्यके दो भेद किये जा सकते है। धार्मिक चरितकाव्य और रोमांचक चरित काव्य। परन्तु यह विभाजन भी अधिक ठोस नही है। क्योंकि चरितकाव्यमें भी रोमाचकता रहती है, ठीक इसी प्रकार रोमाचककाव्योंमें धार्मिकताका पुट रहता है। शृंगार और शौर्यकी प्रवृत्ति दोनोंमें रहती है। कुछ हिन्दी आलोचक, 'चरितकाव्य' को चरितकाव्य और घटनाकाव्यको महाकाव्य मानते है। 'रामचरितमानस' और 'पद्मावत' को महाकाव्य सिद्ध करनेके लिए, उन्हें घटनाकाव्य मानते है, जबकि वे विशुद्ध चरितकाव्य है। मानसके चरितकाव्य होनेमे सन्देह नही, परन्तु पद्मावत भी चरितकाव्यकी कोटिमे आता है। पद्मावतमे मुख्य-रूपसे रत्नसेनका वह चरित वर्णित है जो पद्मावतीके पानेसे सम्बद्ध है। मेरे विचारमें चरितकाव्य भी घटनाकाव्य हो सकता है। महाकाव्यके

लिए यह जरूरी नही है कि वह घटनाकाव्य हो ही। 'घटना' महाकाव्यकी कसौटी नही, उसके लिए महत्तत्त्वका समावेश और उदार दृष्टिकोणकी आवश्यकता है। यदि 'मानस' 'चरिउ' और 'पद्मावत' में महत्तत्त्व और व्यापक उदारता है, तो वे चरितकाव्य होकर भी महाकाव्य हे इसके लिए उन्हे घटनाकाव्य सिद्ध करनेकी आवश्यकता नही। क्योकि चरितकाव्य भी महाकाव्य हो सकते है। इसमे सन्देह नही कि अपभ्रश चरितकाव्योका विकास सस्कृत पुराण काव्योसे हुआ। यह बात सस्कृतमे रविषेणके 'पद्मचरित' और 'स्वयम्भू' के 'पउमचरिउ' के तुलनात्मक अध्ययनसे स्वत. स्पष्ट हो जाती है। इधर अपभ्रशके कुछ युवातुर्क अध्येता अपभ्रश काव्यके दो भेद करनेके पक्षमे है—(१) चरितकाव्य और (२) कथाकाव्य। परन्तु अपभ्रश काव्यके स्वरूप और शिल्पको देखते हुए यह विभाजन ठीक नही। एक ही कवि अपने काव्यको चरित भी कहता है और कथाकाव्य भी। यह कहना भी गलत है कि चरितकाव्योका नायक धार्मिक व्यक्ति होता है जबकि लौकिक कथाकाव्योका लौकिक पुरुप। उदाहरण के लिए धनपालका 'भविसयत्तकहा' को 'भविसयत्त चरिउ' भी कहा जा सकता है। उसका नायक भविसयत्त 'सामान्य लौकिक' व्यक्ति नही है, जैसा कि कुछ लोग समझते है, लौकिक और अलौकिक व्यक्तियोका चरित चित्रण करना अपभ्रश चरित-कवियोका उद्देश्य भी नही है। दूसरा उदाहरण है 'सिरिवालचरिउ'का। कही-कही उसका नाम 'सिरिवालकहा' भी मिलता है। अपभ्रशकाव्य, वस्तुतः विशिष्ट प्रबन्धकाव्य है, जिन्हे आसानीसे चरितकाव्य या कथाकाव्य कहा जा सकता है, केवल 'चरिउ' या 'कथा' नामके आधारपर उनमे भेद करना गलत है। स्वयम्भू और पुष्पदन्त दोनो अपभ्रशके सिद्ध कवि है और उन्होने अपनी कथाको अलकृत कथा कहा है। यह अलकृत कथा वही है जो उनके चरितकाव्योमे प्रयुक्त है, रामायणकी चेष्टा या प्रयत्न ही रामायण है, आगे चलकर यही अयन या चेष्टा पौराणिक व्यक्तियोके साथ जुडकर 'चरिउ' जाती है। यह जरूरी है कि उक्त चेष्टा लौकिक ही हो, वह

हो सकती है, जैसे धाहिलका 'पउमसिरी चरिउ'। कहनेका अभिप्राय यह कि अपभ्रंश कवियोंके वे चरितकाव्य और कथाकाव्योंमें विशेष अन्तर नहीं किया। ये कवि कभी अपने काव्यको आख्यानककाव्य भी कहते हैं, अभिप्राय वही है। जहाँ तक 'प्रेमतत्त्व' की प्रचुरताका सम्बन्ध है, वह चरितकाव्योंमें भरपूर है, परन्तु वे विशुद्ध प्रेमकाव्य नही हैं। कुछ विश्वविद्यालयोके हिन्दी विभागोके अन्तर्गत अपभ्रंश चरितकाव्योका प्रभाव हिन्दीके प्रेमाख्यानक काव्योपर खोजा गया है जो सचमुच विचारणीय है, क्योंकि प्रेमकाव्य और प्रेमाख्यानक काव्योंमें मौलिक अन्तर है। प्रेमकाव्य एक प्रकारसे शृंगार काव्य हैं जबकि प्रेमाख्यानक काव्य ऐसा लौकिक प्रेमाख्यान है जिसके द्वारा कवि लौकिक प्रेमके द्वारा अलौकिक प्रेमका वर्णन करता है। हिन्दी सूफी कवियोंमें रूढ प्रेमाख्यानक काव्योंपर अपभ्रंश चरितकाव्योंका प्रभाव खोजना बहुत बडी ऐतिहासिक भूल है? लेकिन हिन्दीमें अपभ्रंश सम्बन्धी खोज, अधिकतर इसी प्रकार की ऐतिहासिक भूलोकी निष्पत्ति है, जिसपर गम्भीरतासे ध्यान देनेकी आवश्यकता है।

युगीन परिस्थितियाँ

स्वयम्भूका समय स्वदेशी सामन्तवादकी स्थापनाका समय है, ७११ ईसवीमें मुहम्मद बिन कासिमका सिन्धपर सफल आक्रमण हो चुका था, और उनके ढाई साल बाद लगभग मुहम्मद गोरी की अन्तिम जीतके साथ गंगाघाटीसे हिन्दू सत्ता समाप्त हो चुकी थी। लेकिन पूरे अपभ्रंश साहित्यमें इन महत्त्वपूर्ण घटनाओंका आभास तक नहीं है। समाज और धर्मके केन्द्रमें राज्य था। शक्ति और सत्ता पुण्यका फल था। सामाजिक विषमताओंकी परिणतिकी व्याख्या पुण्यपापके द्वारा की जाती थी। 'कन्या'का स्थान समाजमें निम्न माना जाता था। वह दूसरेके घरकी शोभा बढानेवाली थी। स्वयम्भूके राम भी आदर्श है—"जो भी राजा हुआ है या होगा, उसे दुनियाके प्रति कठोर नहीं होना चाहिए, न्यायसे प्रजाका पालन करते हुए वह देवताओ, ब्राह्मणों और श्रमणोंको पीडा न दे।" स्वयम्भूके समय विन्ध्याटवीमें भीलोंकी मजबूत बस्तियाँ थी। स्वयंवरको

प्रथा थी। सबसे बडी बात यह थी कि उस समय चीजोमे मिलावट होती थी। तुलसीसे सात-आठ सौ साल पहले, स्वयम्भूने लिखा था कि कलियुगमें धर्म क्षीण हो जाता है, इससे स्पष्ट है कि कलियुगकी धारणा ससारके प्रति भारतवासियोके निराशावादी दृष्टिकोणका परिणाम है, उसका विदेशी आक्रान्ताओसे कोई सम्बन्ध नही।

जहाँ तक 'मानस'में समकालीन 'सास्कृतिक चित्र' के अकनका प्रश्न है, वह स्पष्ट रूपसे उभरकर नही आता। परन्तु ध्यानसे देखनेपर लगता है कि समूचा रामचरितमानस युगके यथार्थकी ही प्रतिक्रिया है। उनके अनुसार वेद विरोधी ही निशाचर नही है, परन्तु जो दूसरेके धन और स्त्रीपर डाका डालते है, जुआडी है, माँ बापकी सेवा नही करते, वे भी निशाचर है। इस परिभाषाके अनुसार नैतिक आचरणसे भ्रष्ट प्रत्येक व्यक्ति निशाचर है। तुलसीके समय आध्यात्मिक शोषणकी प्रवृत्ति सबसे अधिक प्रबल थी। कवि कहता है कि लोग अध्यात्मवाद और अद्वैतवादकी चर्चा करते है, परन्तु दो कौडीपर दूसरोकी जान लेनेपर उतारू हो जाते है। तपस्वी पैसेवाले है, और गृहस्थ दरिद्र है। इसका अर्थ यह नही है कि तुलसीदास समाजवादी और प्रगतिशील थे। वस्तुत समाजमे नैतिक क्रान्ति चाहते थे, रामके चरितका गान उनके इसी उद्देश्यकी पूर्तिका साहित्यिक प्रयास था। इसमें सन्देह नही कि दोनो कवि अपने युगके नैतिक पतनसे अत्यन्त दु खी थे। परन्तु एक जिनभक्ति द्वारा समाज और व्यक्तिमे नैतिक क्रान्ति लाना चाहता है जबकि दूसरा, रामभक्ति द्वारा। दोनो कवि रामकथाके मूलस्वरूपको स्वीकार करके चलते है ? कथाके गठनमें चरित्र-चित्रण और नैतिक मूल्योको महत्त्व दोनोने दिया है। स्वयम्भू सीताके निर्वासनका उल्लेख तो करते है, परन्तु सीताके स्वाभिमानको आँच नही आने देते। 'मानस' की सीताके निर्वासनका विषय स्वय तुलसीदास पी जाते है। कुल मिलाकर दोनो कवियोका उद्देश्य एक आचारमूलक आस्तिक चेतनाकी प्रतिष्ठा करना रहा है।

—देवेन्द्रकुमार जैन

अनुक्रम

कुम्भकर्णका उपद्रव करना और वैश्रवणके दूतका अ
अपमान और अभियान, वैश्रवण और रावणमें भिड
प्रदर्शन, लकापर रावणकी विजय ।

ग्यारहवी सन्धि

रावणकी पुष्पकविमानमे यात्रा, जिन-मन्दिरोंह
हरिषेणका आख्यान, सम्मेद शिखरकी यात्रा,
वशमें करना, रावणकी हस्ति-क्रीडा, भट द्वारा यम
यमकी नगरीपर आक्रमण, यमपुरीका वर्णन
मुक्ति, यम और उसके सेनानियोंसे युद्ध, युद्धमें
रावणका लकाको प्रस्थान, आकाशसे समुद्रकी

बारहवी सन्धि

मन्त्रिपरिषद्, रावणका परामर्श, रावणका
चन्द्रनखाका अपहरण, रावणका आक्रोश, मन्दे
रावणके दूतकी वालिसे वार्ता, दूतका रु
अभियान, द्वन्द्व-युद्धका प्रस्ताव, विद्या-युद्ध, रा
द्वारा दीक्षाग्रहण और सुग्रीवका रावणसे
सहस्रगतिकी विरहवेदना और उसका प्रतिशो

तेरहवी सन्धि

रावणकी वालिके प्रति आशका, कैलास
उपसर्ग, कैलासपर इसकी हलचल, धरणेन्द्र
इसकी प्रतिक्रिया और अन्त पुर द्वारा क्षमा-
वालिकी स्तुति, जिनमन्दिरोकी वन्दना, रा
दूषण द्वारा उसका स्वागत, निशाका वर्णन

अठारहवीं सन्धि २८८–३०२

मन्दराचलकी प्रदक्षिणा, अनन्तरथको केवलज्ञानकी उत्पत्ति, रावणकी प्रतिज्ञा, प्रह्लादराजकी नन्दीद्वीप यात्रा, पवनजयकी अजनासे सगाई, कुमारकी कामवेदना, मित्रकी सान्त्वना, दोनो-का आदित्यनगर पहुँचना और कुमारका रुष्ट होना, विवाह और परित्याग, कुमारका युद्धके लिए प्रस्थान, मानसरोवरपर डेरा, चकवीके वियोगसे प्रेमका उद्रेक, चुप-चाप आकर अंजनासे एकान्त भेंट।

उन्नीसवी सन्धि ३०२–३२४

मिलनका प्रतीक चिह्न देकर कुमारका प्रस्थान, सास द्वारा अजना-पर लाछन, घरसे निष्कासन, पिताके घर पहुँचना, पिताका तिरस्कार, अजनाका विलाप, मुनिवरसे भेंट, उनकी सान्त्वना, सिहका आना और देव द्वारा उनकी रक्षा, हनुमान्का जन्म, प्रतिसूर्यका अजनाको ले जाना, हनुमान्का शिलापर गिरना, पवनकुमारका युद्धसे लौटना और विलाप, पवनकी उन्मत्त अवस्था, पवनका गुप्त सन्यास, उसकी खोज, उसका पता लगाना, हनुरुह द्वीपको प्रस्थान।

बीसवीं सन्धि ३२४–३३९

हनुमान्का यौवनमे प्रवेश, हनुमान् और पवनमें विवाद, हनुमान्-का रावण द्वारा स्वागत, वरुणकी तैयारी, तुमुल युद्ध, वरुणका पतन, अन्त पुरकी मुक्ति, वरुणकी कन्यासे रावणका विवाह, हनुमान् आदिका ससम्मान विदा।

कइराय-सयम्भूएव-किउ

पउमचरिउ

णमह णव-कमल-कोमल-मणहर-वर-वहल-कन्ति-सोहिल्ल ।

उसहस्स पाय-कमल स-सुरासुर-वन्दिय सिरसा ॥१॥

दीहर-समास-णालं सद्द-दल अत्थ-केसरुग्घविय ।

बुह-महुयर-पीय-रस सयम्भु-कव्वुप्पलं जयउ ॥२॥

पहिलउ जयकारेँवि परम-मुणि । मुणि-वयणेँ जाहँ सिद्धन्त-झुणि ॥१॥

झुणि जाहँ अणिट्ठिय रत्तिदिणु । जिणु हियएँ ण फिट्टइ एक्कु खणु ॥२॥

खणु खणु वि जाहँ ण विचलइ मणु । मणु मग्गइ जाहँ मोक्ख-गमणु ॥३॥

गमणु वि जहिँ णउ जम्मणु मरणु ॥४॥

मरणु वि कह होइ मुणीवरहँ । मुणिवर जे लग्गा जिणवरहँ ॥५॥

जिणवर जेँ लीय माण परहोँ । परु केव दुक्कु जेँ परियणहोँ ॥६॥

परियणु मणेँ मण्णिउ जेहिँ तिणु । तिण-समउ णाहिँ लहु णरय-रिणु ॥७॥

रिणु केम होइ भव-भय-रहिय । भव-रहिय धम्म-सजम-सहिय ॥८॥

घत्ता

जे काय-वाय-मणेँ णिच्छिरिय जे काम-कोह-दुण्णय-तरिय ।

ते एक्क-मणेण स यं भु एँ ण वन्दिय गुरु परमायरिय ॥९॥

कविराज-स्वयम्भूदेव-कृत

पद्मचरित

जो नवकमलोंकी कोमल सुन्दर और अत्यन्त सघन कान्तिकी तरह शोभित है और जो सुर तथा असुरोंके द्वारा वन्दित है, ऐसे ऋषभ भगवान्‌के चरणकमलोंको शिरसे नमन करो॥१॥

जिसमें लम्बे-लम्बे समासोंके मृणाल है, जिसमें शब्दरूपी दल है, जो अर्थरूपी परागसे परिपूर्ण है, और जिसका बुधजन रूपी भ्रमर रसपान करते है, स्वयम्भूका ऐसा काव्यरूपी कमल जयशील हो ॥२॥

पहले, परममुनिकी जय करता हूँ; जिन परममुनिकी सिद्धान्त-वाणी मुनियोंके मुखमें रहती है, और जिनकी ध्वनि रात-दिन निस्सीम रहती है (कभी समाप्त नहीं होती), जिनके हृदयसे जिनेन्द्र भगवान् एक क्षणके लिए अलग नहीं होते। एक क्षणके लिए भी जिनका मन विचलित नही होता, मन भी ऐसा कि जो मोक्ष गमनकी याचना करता है, गमन भी ऐसा कि जिसमे जन्म और मरण नही है। मृत्यु भी मुनिवरोंकी कहाॅ होती है, उन मुनिवरोंकी, जो जिनवरकी सेवामें लगे हुए है। जिनवर भी वे, जो दूसरोंका मान ले लेते है (अर्थात् जिनके सम्मुख किसीका मान नहीं ठहरता), जो परिजनोंके पास भी पर के समान जाते है (अत. उनके लिए न तो कोई पर है, और न स्व), जो स्वजनोंको अपनेमें तृणके समान समझते है, जिनके पास नरकका ऋण तिनकेके बराबर भी नही है। जो संसारके भयसे रहित है, उन्हें भय हो भी कैसे सकता है ? वे भयसे रहित और धर्म एवं संयमसे सहित है ॥१-८॥

घत्ता—जो मन-वचन और कायसे कपट रहित है, जो काम और क्रोधके पापसे तर चुके है, ऐसे परमाचार्य गुरुओको स्वयम्भूदेव (कवि) एकमनसे वंदना करता है ॥९॥

पढमो संधि

तिहुअण-लग्गण-खम्भु गुरु परमेट्ठि णवेप्पिणु ।
पुणु आरम्भिय रामकह आरिसु जोएप्पिणु ॥१॥

[१]

पणवेप्पिणु आइ-भडाराहों । संसार-समुद्द-पाराहों ॥१॥
पणवेप्पिणु अजिय जिणेसरहों । दुज्जय-कन्दप्प-दप्प-हरहों ॥२॥
पणवेप्पिणु संभवसामियहों । तइलोक्क-सिहर-पुर-गामियहों ॥३॥
पणवेप्पिणु अहिणन्दण जिणहों । कम्मट्ठ-दुट्ठ-रिउ-णिज्जिणहों ॥४॥
पणवेप्पि सुमइ-तित्थङ्करहों । वय पञ्च-महाधुर-धरहों ॥५॥
पणवेप्पिणु पउमप्पह-जिणहों । मोहिय-भव-लक्ख दुक्ख-रिणहों ॥६॥
पणवेप्पिणु सुरवर-साराहों । जिणवरहों सुपास-भडाराहों ॥७॥
पणवेप्पिणु चन्दप्पह-गुरुहों । भवियायण सउण-कप्पतरुहों ॥८॥
पणवेप्पिणु पुप्फयन्त-मुणिहें । सुरभवणुच्छलिय-दिव्व झुणिहें ॥९॥
पणवेप्पिणु सीयल-पुङ्गमहों । कल्लाण झाण-णाणुग्गमहों ॥१०॥
पणवेप्पिणु सेयसाहिवहों । अचन्त-महन्त-पत्त-सिवहों ॥११॥
पणवेप्पिणु वासुपुज्ज-मुणिहें । विप्फुरिय-णाण-चूडामणिहें ॥१२॥
पणवेप्पिणु विमल-भडारिसिहें । सदरिसिय-परमागम-दिसिहें ॥१३॥
पणवेप्पिणु मङ्गलगाराहों । साणन्तहों धम्म-भडाराहों ॥१४॥
पणवेप्पिणु सन्ति-कुन्थु-अरहँ । तिण्णि मि तिहुअण-परमेसरहँ ॥१५॥

पहली सन्धि

त्रिभुवनके लिए आधार-स्तम्भ परमेष्ठी गुरुको नमन कर तथा शास्त्रोंका अवगाहन कर कविके द्वारा रामकथा प्रारम्भ की जाती है।

[१] संसाररूपी समुद्रसे तारनेवाले आदि भट्टारक ऋषभ जिनको प्रणाम करता हूँ। दुर्जेय कामका दर्प हरनेवाले अजित जिनेश्वरको प्रणाम करता हूँ। त्रिलोकके शिखरपर स्थित मोक्ष-पुर जानेवाले सम्भव स्वामीको प्रणाम करता हूँ। आठ कर्म-रूपी दुष्ट शत्रुओंको जीतनेवाले अभिनन्दन जिनको नमस्कार करता हूँ। महा कठिन पाँच महाव्रतोंको धारण करनेवाले सुमति तीर्थंकरको प्रणाम करता हूँ। संसारके लाख-लाख दुःखोंके ऋणका शोधन करनेवाले पद्मप्रभु जिनको प्रणाम करता हूँ। सुरवरोंमें श्रेष्ठ, आदरणीय सुपार्श्वको प्रणाम करता हूँ। भव्यजनरूपी पक्षियोंके लिए कल्पतरुके समान चन्द्रप्रभु गुरुको प्रणाम करता हूँ। जिनकी ध्वनि स्वर्गलोकतक उछलकर जाती है, ऐसे पुष्पदन्त मुनिको प्रणाम करता हूँ। कल्याण ध्यान और ज्ञानके उद्गम स्वरूप, श्रेष्ठ शीतलनाथको प्रणाम करता हूँ। अत्यन्त महान् मोक्ष प्राप्त करनेवाले श्रेयान्साधिपको प्रणाम करता हूँ। जिनका केवलज्ञानरूपी चूडामणि चमक रहा है ऐसे वासुपूज्य मुनिको प्रणाम करता हूँ। परमागमोंका दिशाबोध देनेवाले विमल महाऋषिको प्रणाम करता हूँ। कल्याणके आगार अनन्तनाथ सहित आदरणीय धर्मनाथको प्रणाम करता हूँ। शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरहनाथको प्रणाम करता हूँ जो तीनों ही तीनों लोकोंके परमेश्वर हैं।

पणवेवि मल्लि-तित्थङ्करहों । तइलोक्क-महारिसि-कुलहरहों ॥१६॥
पणवेप्पिणु मुणिसुव्वय-जिणहों । देवासुर-दिण्ण-पयाहिणहों ॥१७॥
पणवेप्पिणु णमि-णेमीसरहँ । पुणु पास-वीर-तित्थङ्करहुँ ॥१८॥

घत्ता

इय चउवीस वि परम-जिण पणवेप्पिणु भावें ।
पुणु अप्पाणउ पायडमि रामायण-कावें ॥१९॥

[२]

वद्धमाण-मुह-कुहर-विणिग्गय । रामकहा-णइ एह कमागय ॥१॥
अक्खर-वास-जलोह-मणोहर । सु-अलङ्कार-छन्द-मच्छोहर ॥२॥
दीह-समास-पवाहावङ्किय । सक्कय-पायय-पुलिणालङ्किय ॥३॥
देसीभासा-उभय-तडुज्जल । क वि दुक्कर-घण-सद्द-सिलायल ॥४॥
अत्थ-बहल-कल्लोलाणिट्ठिय । आसासय-समतूह-परिट्ठिय ॥५॥
एह रामकह-सरि सोहन्ती । गणहर-देवहिँ दिट्ठ वहन्ती ॥६॥
पच्छइ इन्द्रभूइ-आयरिएं । पुणु धम्मेण गुणालङ्करिएं ॥७॥
पुणु पहवें संसाराराएं । कित्तिहरेण अणुत्तरवाएं ॥८॥
पुणु रविसेणायरिय-पसाएं । बुद्धिएँ अवगाहिय कइराएं ॥९॥
पउमिणि-जणणि-गब्भ-संभूएँ । मारुयएव-रूव-अणुराएं ॥१०॥
अइ-तणुएण पईहर-गत्तें । छिव्वर-णासें पविरल-दन्तें ॥११॥

घत्ता

णिम्मल-पुण्ण-पवित्त-कह- कित्तणु आढप्पइ ।
जेण समाणिज्जन्तएँण थिर कित्ति विढप्पइ ॥१२॥

त्रिलोक महाऋषियोंके कुलको धारण करनेवाले मल्लि तीर्थंकर को प्रणाम करता हूँ। देव और असुर जिनकी प्रदक्षिणा देते हैं ऐसे मुनिसुव्रतको मैं प्रणाम करता हूँ। नमि और नेमि, तथा पार्श्व और महावीर तीर्थंकरोंको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१-१८॥

घत्ता—इस प्रकार चौबीस परम जिन तीर्थंकरोंकी भावपूर्वक वन्दना कर मैं स्वयंको रामायण काव्यके द्वारा प्रगट करता हूँ ॥१९॥

[२] वर्धमान (तीर्थंकर महावीर) के मुखरूपी पर्वतसे निकलकर, यह रामकथारूपी नदी क्रमसे चली आ रही है, जो अक्षरोंके विस्तारके जलसमूहसे सुन्दर है, जो सुन्दर अलंकार और छन्दरूपी मत्स्योंको धारण करती है, जो दीर्घ समासोंके प्रवाहसे कुटिल है, जो संस्कृतप्राकृत रूपी किनारोंसे अंकित है, जिसके दोनों तट देशीभाषासे उज्ज्वल है, कहीं-कहीं कठोर और घन शब्दोंकी चट्टाने हैं, अर्थोंकी प्रचुर तरंगोंसे निस्सीम है, और जो आश्वासकों (सर्गों) रूपी तीर्थोंसे प्रतिष्ठित है। शोभित रामकथा रूपी इस नदीको गणधर देवोंने बहते हुए देखा। बादमें आचार्य इन्द्रभूतिने, फिर गुणोंसे विभूपित धर्माचार्य ने। फिर, संसारसे विरक्त प्रभवाचार्य ने। फिर अनुत्तरवाग्मी कीर्तिधर ने। तदनन्तर आचार्य रविषेणके प्रसादसे कविराजने 'इसका अपनी बुद्धिसे अवगाहन किया। स्वयम्भू माँ पद्मिनीके गर्भसे जन्मा। पिता मारुतदेवके रूपके लिए उसके मनमे अत्यन्त अनुराग था। अत्यन्त दुबला, लम्बा शरीर, चिपटी नाक, और दूर-दूर दाँत ॥१-११॥

घत्ता—निर्मल और पुण्यसे पवित्र कथाका कीर्तन किया जाता है जिसको समाप्त करनेसे स्थिर कीर्ति प्राप्त होती है ॥१२॥

[३]

वुहयण सयम्भु पइँ विण्णवइ । मइँ सरिसउ अण्णु णाहिँ कुकइ ॥१॥
वायरणु कयावि ण जाणियउ । णउ वित्ति-सुत्तु वक्खाणियउ ॥२॥
णउ पच्चाहारहोँ तत्ति किय । णउ संधिहेँ उप्परि वुद्धि थिय ॥३॥
णउ णिसुअउ सत्त विहत्तियउ । छव्विहउ समास-पउत्तियउ ॥४॥
छक्कारय दस लयार ण सुय । वीसोवसग्ग पच्चय वहुय ॥५॥
ण वलावल धाउ णिवाय-गणु । णउ लिङ्गु उणाइ वक्कु वयणु ॥६॥
ण णिसुणिउ पञ्च-महाय-कव्वु । णउ भरहु गेउ लक्खणु वि सव्वु ॥७॥
णउ वुज्झिउ पिङ्गल-पत्थारु । णउ मम्मह-दण्डि-अलङ्कारु ॥८॥
ववसाउ तो वि णउ परिहरमि । वरि रड्डावद्ध कव्वु करमि ॥९॥
सामण्ण भास छुडु सावडउ । छुडु आगम-जुत्ति का वि घडउ ॥१०॥
छुडु होन्तु सुहासिय-वयणाइँ । गामिल्ल-भास-परिहरणाइँ ॥११॥
एँहु सज्जण-लोयहोँ किउ विणउ । जं अवुहु पदरिसिउ अप्पणउ ॥१२॥
जइ एम विरूसइ को वि खलु । तहोँ हत्थुत्थल्लिउ लेउ छलु ॥१३॥

घत्ता

पिसुणेँ किं अब्भत्थिएँण जसु को वि ण रुच्चइ ।
किं छण-चन्दु महागहेँण कम्पन्तु वि मुच्चइ ॥१४॥

[४]

अत्रहत्थेँवि खलयणु णिरवसेसु । पहिलउ णिरु वण्णमि मगहदेसु ॥१॥
जहिँ पक्क-कलमेँ कमलिणि णिसण्ण । अलहन्त तरणि थेर व विसण्ण ॥२॥
जहिँ सुय-पन्तिउ सुपरिट्ठियाउ । ण वणसिरि-मरगय-कण्ठियाउ ॥३॥
जहिँ उच्छु-वणइँ पवणाहयाइँ । कम्पन्ति व पीलण-भय-गयाइँ ॥४॥
जहि णन्दणवणइँ मणोहराइँ । णच्चन्ति व चल-पल्लव-कराइँ ॥५॥

[३] बुधजनो, यह स्वयम्भू कवि आपलोगोंसे निवेदन करता है कि मेरे समान दूसरा कोई कुकवि नही है। कभी भी मैने व्याकरणको न जाना, न ही वृत्तियो और सूत्रोंकी व्याख्या की। प्रत्याहारोंमें भी मैने सन्तोष प्राप्त नही किया। संधियोंके ऊपर मेरी बुद्धि स्थिर नहीं। सात विभक्तियाँ भी नही सुनी, और न छह प्रकारकी समास-प्रवृत्तियाँ ही। छह कारक और दस लकार नहीं सुने। बीस उपसर्ग और बहुत-से प्रत्यय भी नही सुने। बलाबल धातु और निपातगण, लिंग, उणादि वाक्य और वचन भी नहीं सुने। पाँच महाकाव्य नहीं सुने, और न भरतका सब लक्षणोंसे युक्त गेय सुना। पिंगल शास्त्रके प्रस्तारको नहीं समझा। और न दंडी और भामहके अलकार भी। तो भी मै अपना व्यवसाय नहीं छोड़ूँगा, बल्कि रड्डावद्ध शैलीमे काव्य रचना करता हूँ। संप्राप्त सामान्य भाषामें कोई आगम युक्तिको गढता हूँ। ग्राम्य भाषाके प्रयोगोसे रहित मेरी भाषा सुभाषित हो। मैने यह विनय सज्जन लोगोंसे ही की है और अपना अज्ञान प्रदर्शित किया है। यदि इतनेपर भी कोई दुष्ट रूठता है तो उसके छलको मै हाथ उठाकर लेता हूँ ॥१-१३॥

घत्ता—उस दुष्टको अभ्यर्थनासे भी क्या लाभ, जिसे कोई भी अच्छा नहीं लगता ? क्या काँपता हुआ पूर्णिमाका चन्द्रमा महाग्रहणसे बच पाता है ? ॥१४।

[४] समस्त खलजनोंकी उपेक्षाकर, पहले मैं मगध देशका वर्णन करता हूँ। जहाँ कमलिनी पके हुए धान्यसे ऐसी स्थित है, जो मानो सूर्यको नही पा सकनेके कारण वृद्धाकी तरह उदासीन है ? जहाँ बैठी हुई तोतोकी पंक्ति ऐसी लगती है मानो वनलक्ष्मीका पन्नोंका कण्ठा हो। जहाँ हवासे हिलते हुए ईखों के खेत ऐसे लगते है जैसे पेरे जानेके डरसे काँप रहे हो। जहाँ सुन्दर नन्दन वन, अपने चञ्चल पल्लव रूपी हाथोंसे ऐसे

जहिँ फाडिम-वयणइँ दाडिमाइँ । णज्जन्ति ताइँ णं कइ-मुहाइँ ॥६॥
जहिँ-महुयर-पन्तिउ सुन्दराउ । केयइ-केसर-रय-धूसराउ ॥७॥
जहिँ दक्खा-मण्डव परियलन्ति । पुणु पन्थियरस-सलिलइँ पियन्ति॥८॥

घत्ता

तहिँ तं पट्टणु रायगिहु धण-कणय-समिद्धउ ।
ण पिहिविएँ णव-जोव्वणएँ सिरेँ सेहरु आइद्धउ ॥९॥

[५]

चउ-गोउर-चउ-पायारवन्तु । हसइ व मुत्ताहल-धवल दन्तु ॥१॥
णच्चइ व मरुद्धुय-धय-करग्गु । धरइ व णिवडन्तउ गयण-मग्गु ॥२॥
सूलग्ग-भिण्ण-देवउल-सिहरु । कणइ व पारावय-सद्द-गहिरु ॥३॥
घुम्मइ व गएँहिं मय-भिम्भलेहि । उड्डइ व तुरङ्गहिँ चञ्चलेहि ॥४॥
ण्हाइ व ससिकन्त-जलोहरेहिँ । पणवइ व हार-मेहल-भरेहिँ ॥५॥
पक्खलइ व णेउर-णियलएहिँ । विप्फुरइ व कुण्डल-जुयलएहिँ ॥६॥
किलिकिलइ व सव्वजणुच्छवेण । गज्जइ व मुरव-भेरी-रवेण ॥७॥
गायइ वालाविणि-मुच्छणेहिँ । पुरवइ व धण्ण-धण-कञ्चणेहि ॥८॥

घत्ता

णिवडिय-पण्णेँहिं फोप्फलेँहि छुह-चुण्णासङ्गे ।
जण-चलणग्ग-विमद्दिएँण महि रञ्जिय रङ्गें ॥९॥

लगते हैं मानो नाच रहे हों। जहाँ खुले हुए मुखोंके दाडिम ऐसे लगते है जैसे वानरोंके मुख हो। जहाँ केतकीके पराग-रजसे धूसरित मधुकरोंकी पंक्तियाँ सुन्दर जान पडती है। जहाँ द्राक्षाओंके मण्डप झरते रहते है, पथिक जिनसे रसरूपी जलका पान करते है ॥१-८॥

घत्ता—उसमें धन और सोनेसे समृद्ध राजगृह नामका नगर है, जो ऐसा लगता है जैसे नवयौवना पृथ्वीके शिरपर चूड़ामणि बाँध दिया गया हो ॥९॥

[५] चार गोपुर और चार परकोटोंसे युक्त तथा मोतियोंके सफेद दाँतोंवाला वह नगर ऐसा जान पड़ता है जैसे हँस रहा हो। हवामें उड़ती हुई ध्वजारूपी हथेलियोंसे ऐसा लगता है जैसे नाच रहा है, गिरते हुए आकाशमार्गको जैसे धारण कर रहा हो? जिनके शिखरोंमे त्रिशूल लगे हुए है, ऐसे मन्दिरों तथा कबूतरोके शब्दोसे गम्भीर जो ऐसा लगता है जैसे कल-कल कर रहा हो। मदविह्वल हाथियोंसे ऐसा लगता है जैसे घूम रहा हो, चंचल घोड़ोसे ऐसा लगता है जैसे उड़ रहा हो, चन्द्रकान्त मणिकी जलधाराओसे ऐसा लगता है जैसे नहा रहा हो, हार और मेखलाओंसे परिपूर्ण ऐसा लगता है जैसे प्रणाम कर रहा हो, नूपुरकी श्रृंखलाओंसे ऐसा लगता है जैसे स्खलित हो रहा हो, कुंडलोंके जोडोंसे ऐसा लगता है जैसे चमक रहा हो। सार्वजनिक उत्सवोंसे ऐसा लगता है कि जैसे किलकारियाँ भर रहा हो, मृदंग और भेरीके शब्दोंसे ऐसा लगता है 'जैसे गर्जन कर रहा हो, बाल वीणाओंकी मूर्च्छनाओंसे ऐसा लगता है जैसे गा रहा है, धान्य और धनसे ऐसा लगता है जैसे 'नगर प्रमुख' हो ॥१-८॥

घत्ता—गिरे हुए पानके पत्तों, सुपाडियों तथा लोगोंके पैरोंके अग्रभागसे कुचले गये चूनेके समूहसे उसकी धरती लाल

[६]

तहि सेणिउ णामें णय-णिवासु । उवमिज्जइ णरवइ कवणु तासु ॥१॥
किं तिणयणु ण ण विसम-चक्खु । किं सग्गहरु ण ण एक्क-पक्खु ॥२॥
किं दिणयरु ण ण दहण-सीलु । किं हरि ण ण कम-भुअण-लीलु ॥३॥
किं कुञ्जरु ण ण णिच्च-मत्तु । किं गिरि ण ण ववसाय-चत्तु ॥४॥
किं सायरु ण ण खार-णीरु । किं वम्महु ण ण हय-सरीरु ॥५॥
किं फणिवइ ण ण कूर-भाउ । किं मारुउ ण ण चल-सहाउ ॥६॥
किं महुमहु ण ण कुडिल-वक्कु । किं सुरवइ ण ण सहस-अक्खु ॥७॥
अणुहरइ पुणु वि जइ सो ज्जें तासु। वामद्धु व दाहिण-अद्धु जासु ॥८॥

घत्ता

ताव सुरासुर-वाहणेंहि गयणङ्गण छाइउ ।
वीर-जिणिन्दहों समसरणु विउलइरि पराइउ ॥९॥

[७]

परमेसरु पच्छिम-जिणवरिन्दु । चरणग्गे चालिय-महिहरिन्दु ॥१॥
णाणुज्जलु चउ-कल्लाण-पिण्डु । चउ-कम्म-डहणु कलि-काल-दण्डु॥२॥
चउतीसातिसय-विसुद्ध-गत्तु । भुवणत्तय-वल्लहु धवल-छत्तु ॥३॥
पण्णारह-कमलायत्त-पाउ । अहल्ल-फुल्ल-मण्डव-सहाउ ॥४॥
चउसट्ठि-चामरुद्धूअमाणु । चउ-सुरणिकाय-संथुव्वमाणु ॥५॥
थिउ विउल-महीहरें वद्धमाणु । समसरणु वि जसु जोयण-पमाणु ॥६

रंगसे रंग गयी ॥९॥

[६] उसमे नीतिका आश्रयभूत राजा श्रेणिक शोभित है। कौन-सा राजा है कि जिसकी उससे तुलना की जाये। क्या त्रिनयन (शिव) की ? नहीं नहीं, वह विषमनेत्र है। क्या चन्द्रमा की ? नहीं नही, उसका एक पक्ष है। क्या दिनकर की ? नहीं नही, वह दहनशील है। क्या सिंहकी ? नहीं नही, वह क्रम (परम्परा) को तोड़कर चलता है। क्या हाथी की ? नही नहीं, वह हमेशा मत्त रहता है। क्या पहाड़की ? नहीं नहीं, वह व्यवसायसे शून्य है ? क्या समुद्र की ? नहीं नहीं, वह खारेपानीवाला है। क्या कामदेव की ? नहीं नहीं, उसका शरीर जल चुका है। क्या नागराज की ? नही नहीं, वह क्रूर-स्वभाववाला है। क्या कृष्णकी ? नहीं नही, उनके वचन कुटिल है। क्या इन्द्र की ? नहीं नही, उसकी हजार आँखे है। उससे वही समानता कर सकता है जिसका आधा दाहिना भाग, उसके बाये आधे भागके समान हो ॥१-८॥

घत्ता—इतनेमे आकाशरूपी आँगन, सुर और असुरोंके वाहनोसे छा गया। तीर्थंकर जिनेन्द्र महावीरका समवशरण विपुलगिरि (विपुलाचल) पर पहुँचा ॥९॥

[७] जिन्होने अपने पैरके अग्रभागसे पर्वतराज सुमेरुको चलित कर दिया, जो ज्ञानसे उज्ज्वल और चार कल्याणोसे युक्त है, जिन्होने चार घातिया कर्मोका नाश कर दिया है, जो कलिकालके दण्ड स्वरूप है, जिनका शरीर चौतीस अतिशयोसे विशुद्ध है, जो तीनों भुवनोंके लिए प्रिय है, जिनके ऊपर धवल छत्र है, जिनका पैर पन्द्रह कमलोंके विस्तारपर स्थित रहता है, और चारो निकायोके देवोंके द्वारा जिनकी स्तुति की जाती है, ऐसे परमेश्वर अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमान विपुलाचलपर ठहर गये। उनका समवशरण एक योजन प्रमाण था। उसमे तीन

पायार तिण्णि चउ गोउराइँ । वारा गग वारह मन्दिराइँ ॥७॥
उब्भिय चउ माणव-थम्भ जाम । सुरमाणें केण वि णरेंण णाम ॥८॥

घत्ता

चलण णवेप्पिणु जिणवरहाँ मेणिउ मगहाहिउ ।
जं झायहिँ जं ममरहिँ सो जग-गुरु आओ ॥९॥

[८]

जण-वयणाइँ कण्णुप्पलिकरेंवि । सिंहासण-सिहरहों ओयरेंवि ॥१॥
गउ पयइँ सत्त रोमञ्चियङ्गु । पुणु महियलें णाविउ उत्तमङ्गु ॥२॥
देवाविय लहु आणन्द-भेरि । थरहरिय वसुन्धरि जग जणेरि ॥३॥
स-कलत्तु स-पुत्तु स-पिण्डवासु । स-परियणु स-साहणु सट्टहासु ॥४॥
गउ वन्दण-हत्तिएँ जिणवरासु । आसण्णीहूउ महाहरासु ॥५॥
समसरणु दिट्ठु हरिसिय-मणेण । परिवेढिउ वारह-विह-गणेण ॥६॥
पहिलएँ कोट्टएँ रिसि-सघु दिट्ठ । वीयएँ कप्पङ्गण-जणु णिविट्ठु ॥७॥
तइयएँ अज्जिय-गणु साणुराउ । चउथएँ जोइस-वर-अच्छराउ ॥८॥
पञ्चमें विन्तरिउ सुहासिणीउ । छट्टएँ पुणु-भवण-णिवासिणीउ ॥९॥
सत्तमें भावण गिव्वाण साव । अट्ठमें विन्तर ससुद्ध-भाव ॥१०॥
णवमएँ जोइस णमिउत्तमङ्ग । दहमएँ कप्पामर पुलइयङ्ग ॥११॥
एयारहमए णरवर णिविट्ठ । वारहमए तिरिय णमन्त दिट्ठ ॥१२॥

घत्ता

दिट्ठु भडारउ वीर-जिणु सिंहासण-सहिउ ।
तिहुवण-मत्थएँ सुह-णिलएँ ण मोक्खु परिट्ठिउ ॥१३॥

परकोटे और गोपुर थे। उसमें बारह गण और बारह ही कोठे थे। जैसे ही चार मानस्तम्भ बनकर तैयार हुए वैसे ही किसी आदमीने शीघ्र ही ॥१-८॥

घत्ता—चरणोंमे प्रणाम कर, राजा श्रेणिकसे निवेदन किया—"तुम जिसका ध्यान और स्मरण करते हो, वह जगत् गुरु आये हैं ॥९॥

[८] जनके वचनोंको अपने कानोका कमल बनाकर (सुनकर या अलंकार बनाकर) राजा सिंहासनसे उतर पडा। पुलकित अंग होकर और सात पैर आगे जाकर, उसने धरतीपर अपना शिर नवाया। फिर उसने आनन्दकी भेरी बजवा दी, जग-को उत्पन्न करनेवाली धरती उससे हिल गयी। राजा अपने परि-वार, पुत्र, अन्तःपुर, परिजन और सेनाके साथ सहर्ष जिनवर-की वन्दना भक्तिके लिए गया। वह महीधरके निकट पहुँचा। उसने हर्षित मन होकर बारह प्रकारके गणोंसे घिरा हुआ समवशरण देखा। पहले कोठेमें उसने ऋषिसंघको देखा। दूसरेमे कल्पवासी देवोंकी देवांगनाएँ बैठी हुई थीं, तीसरेमें अनुरागपूर्वक आर्यिकाएँ थी, चौथेमें ज्योतिष देवोकी देवागनाएँ थी, पाँचवेमें 'शुभ बोलनेवाली' व्यन्तर देवोंकी देवांगनाएँ थीं, छठेमें भवनवासी देवांगनाएँ थीं, सातवेंमे समस्त भवनवासी देव और आठवेमे श्रद्धाभाववाले व्यन्तरवासी देव थे। नौवेमे अपना शिर झुकाये हुए ज्योतिप देव बैठे थे। और दसवेमें पुलकिताग कल्पवासी देव थे। ग्यारहवेंमें श्रेष्ठ नर बैठे थे और बारहवेंमें नमन करती हुई स्त्रियाँ ? ॥१-१२॥

घत्ता—सिंहासनपर विराजमान आदरणीय वीर जिन ऐसे दिखाई दिये जैसे त्रिभुवनके मस्तकपर स्थित शिवपुरमे मोक्ष ही परिस्थित हो ॥१३॥

[९]

सिर-सिहरेँ चडाविय-करयलग्गु । मगहाहिउ पुणु वन्दणहँ लग्गु ॥१॥
'जय णाह सव्व-देवाहिदेव । किय-णाग-णरिन्द-सुरिन्द-सेव ॥२॥
जय तिहुवण-सामिय-तिविह छत्त । अट्ठविह-परम-गुण-रिद्धि-पत्त ॥३॥
जय केवल-णाणुब्भिण्ण-देह । वम्मह-णिम्महण पणट्ठ-णेह ॥४॥
जय जाइ-जरा-मरणारि-छेय । बत्तीस-सुरिन्द-कियाहिसेय ॥५॥
जय परम परम्पर वीयराय । सुर-मउड-कोडि-मणि-घिट्ठ-पाय ॥६॥
जय सव्व-जीव-कारुण्ण-भाव । अक्खय अणन्त णहयल-सहाव' ॥७॥
पणवेप्पिणु जिणु तग्गय-मणेण । पुणु पुच्छिउ गोत्तमसामि तेण ॥८॥

घत्ता

'परमेसर पर-सासणेँहि सुव्वइ विवरेरी ।
कहे जिण-सासणेँ केम थिय कह राहव-केरी ॥९॥

[१०]

जगेँ लोएँहिँ ढक्करिवन्तएहिँ । उप्पाइउ भतिउ मन्तएहिँ ॥१॥
जइ कुम्में धरियउ धरणि-वीढु । तो कुम्मु पडन्तउ केण णीढु ॥२॥
जइ रामहोँ तिहुअणु उवरेँ माइ । तो रावणु कहिँ तिय लेवि जाइ ॥३॥
अण्णु वि खरदूसण-समरेँ देव । पहु जुज्झइ सुज्झइ भिच्चु केँव ॥४॥
किह तियमइ-कारणेँ कविवरेण । वाइज्जइ वालि सहोयरेण ॥५॥
किह वाणर गिरिवर उव्वहन्ति । बन्धेँवि मयरहरु समुत्तरन्ति ॥६॥

[९] मगधराज अपने दोनों हाथ सिररूपी शिखरपर चढाकर (सिरके ऊपर रखकर) फिर वन्दना करने लगा,—"नाग, नरेन्द्र और सुरेन्द्रने जिनकी सेवा की है, ऐसे सब देवोंके अधिदेव नाथ, आपकी जय हो। आठ प्रकारके परम गुण और ऋद्धिको प्राप्त करनेवाले, तथा जो त्रिभुवनके स्वामी है और जिनके पास तीन प्रकारके छत्र हैं, ऐसे आपकी जय हो। काम-को नष्ट करनेवाले नष्टनेह, जिनका शरीर केवलज्ञानसे परिपूर्ण है, ऐसे आपकी जय हो। बत्तीस प्रकारके सुरेन्द्रोंने जिनका अभिषेक किया है, जन्म-जरा और मरणरूपी शत्रुओंका जिन्होने अन्त कर दिया है, ऐसे आपकी जय हो। देवताओंके मुकुटोंके करोडो मणियोंसे जिनके चरण घर्षित है, ऐसे परमश्रेष्ठ वीतराग आपकी जय हो। आकाशकी-तरह स्वभाव-वाले, अक्षय, अनन्त, तथा सब जीवोंके प्रति करुणाभाव रखनेवाले आपकी जय हो।" इस प्रकार तल्लीन मन होकर तथा जिन भगवान्‌को प्रणाम कर, राजा श्रेणिकने गौतमगणधरसे पूछा ॥१-८॥

घत्ता—हे परमेश्वर, दूसरे मतोंमे रामकी कथा उलटी सुनी जाती है, जिनशासनमें वह किस प्रकार है, बताइए ? ॥९॥

[१०] दुनियामे चमत्कारवादी और भ्रान्त लोगोंने भ्रान्ति उत्पन्न कर रखी है। यदि धरतीकी पीठ कछुएने उठा रक्खी है तो तिरते हुए कछुएको कौन उठाये है ? यदि रामके पेटमे त्रिभुवन समा जाता है तो रावण उनकी पत्नीका अपहरण कर कहाँ जाता है ? और भी हे देव, खर-दूषणके युद्धमे यदि स्वामी युद्ध करता है, तो उससे अनुचर कैसे शुद्ध होता है ? सगे भाई सुग्रीवने स्त्रीके लिए अपने भाई वालीको किस प्रकार मारा ? क्या वानर पहाड उठा सकते है, समुद्रको बाँधकर पार कर सकते है ? क्या रावण दसमुख और बीस हाथोंवाला था ?

किह रावणु दह-मुहु वीस-हत्थु । अमराहिव-भुव-वन्धण-समत्थु ॥७॥
वरिसद्ध सुअइ किह कुम्भयण्णु । महिसा-कोडिहि मि ण धाइ अण्णु॥८

घत्ता

जं परिसेसिउ दहवयणु पर-णारीहिँ समणु ।
सो मन्दोवरि जणणि-सम किह लेइ विहीसणु' ॥९॥

[११]

त णिसुणेँ वि वुच्चइ गणहरेण । सुणेँ सेणिय किं वहु-वित्थरेण ॥१॥
पहिलउ आयासु अणन्तु साउ । णिरवेक्खु णिरञ्जणु पलय-भाउ ॥२॥
तइलोक्कु परिट्ठिउ मज्झेँ तासु । चउदह रज्जुय आयामु जासु ॥३॥
तेत्थु वि झल्लरि-मज्झाणुमाणु । थिउ तिरिय-लोउ रज्जुय-पमाणु ॥४॥
तहि जम्वूदीउ महा-पहाणु । वित्थरेँण लक्खु जोयण-पमाणु ॥५॥
चउ-खेत्त-चउदह-सरि-णिवासु । छव्विह-कुलपव्वय-तड-पयासु ॥६॥
तासु वि अब्भन्तरेँ कणय-सेलु । णवणवइ-उवरेँ सहसेक्क-मूलु ॥७॥
तहोँ दाहिण-भाएँ भरहु थक्कु । छक्खण्डालङ्किउ एक्क-चक्कु ॥८॥

घत्ता

तहिँ ओसप्पिणि-कालेँ गएँ कप्पयरुच्छण्णा ।
चउदह-रयणविसेस जिह कुलयर-उप्पण्णा ॥९॥

[१२]

पहिलउ पहु पडिसुइ सुयवन्तउ । वीयउ सम्मइ सम्मइवन्तउ ॥१॥
तइयउ खेमङ्करु खेमङ्करु । चउथउ खेमन्धरु रणेँ दुद्धरु ॥२॥
पञ्चमु सीमङ्करु दीहर-करु । छट्ठउ सीमन्धरु धरणीधरु ॥३॥
सत्तमु चारु-चक्खु चक्खुब्भउ । तासु कालेँ उप्पज्जइ विम्भउ ॥४॥
सहसा चन्द-दिवायर-दंसणेँ । सयलु वि जणु आसङ्किउ णिय-मणेँ ॥५
'अहोँ परमेसर कुलयर-सारा । कोउहल्लु महु एउ भडारा' ॥६॥

क्या वह इन्द्रके हाथोंको बाँधनेमे समर्थ था ? क्या कुम्भकर्ण आधे वर्ष सोता था, और करोड़ भैंसोंका भी अन्न उसे पूरा नही होता था ? ॥१-८॥

घत्ता—जिसने रावणको समाप्त करवाया, परस्त्रियोंके प्रति जिसका मन अच्छा था, वह विभीषण माँ के समान मन्दोदरीको किस प्रकार पत्नीके रूपमे ग्रहण करता है ? ॥९॥

[११] यह सुनकर गणधर बोले, "बहुत विस्तारसे क्या, हे श्रेणिक सुनो, पहला समूचा अनन्त अलोकाकाश है जो निरपेक्ष निराकार और शून्य है, उसके मध्यमें त्रिलोक स्थित है, जिसका आयाम चौदह राजू प्रमाण है ? उसमे भी डमरूके मध्य आकारके समान और एक राजू प्रमाण तिर्यक् लोक है। उसमे, एकलाख योजन विस्तारवाला महा प्रमुख जम्बूद्वीप है। जिसमें चार क्षेत्र और चौदह नदियाँ है। जो छह प्रकारके कुलपर्वतोके तटोंसे प्रकाशित है। उसके भी भीतर सुमेरु पर्वत है, जो एक हजार योजन गहरा, और निन्यानवे हजार योजन ऊँचा है। उसके दक्षिणभागमे भरत क्षेत्र स्थित है, छह खण्डोंसे विभूपित उसका एक चक्रवर्ती राजा है ॥१-८॥

घत्ता—उसमें अवसर्पिणी कालके बीतनेपर, कल्पतरु उच्छिन्न हो गये और चौदह विशेप रत्नोंके समान चौदह कुलकर उत्पन्न हुए ॥९॥

[१२] पहला श्रुतिवन्त प्रतिश्रुत राजा, दूसरा सन्मतिवान् सम्मति, तीसरा कल्याण करनेवाला क्षेमंकर, चौथा रणमें दुर्धर क्षेमन्धर, पाँचवाँ विशालबाहु सीमंकर, छठा धरणीधर सीमन्धर, सातवाँ चारुनयन चक्षुष्मान्। उसके समयमे एक विस्मयकी बात हुई। सहसा सूर्य और चन्द्रमाके दिखनेसे सभी लोग अपने मनमे आशंकित हो उठे, (उन्होने कहा),— "हे कुलकर श्रेष्ठ परमेश्वर भट्टारक ! हमे कुतूहल हो रहा है।"

त णिसुणेवि णराहिउ घोसइ । कम्म-भूमि लइ एवहिं होसइ ॥७॥
पुव्व-विदेहेँ तिलोआणन्दें । कहिउ आसि महु परम-जिणिन्दें ॥८

घत्ता

णव-सञ्झारुण-पल्लवहोँ तारायण-पुप्फहोँ ।
आयइँ चन्द-सूर-फलइँ अवसप्पिणि-रुक्खहोँ ॥९॥

[१३]

पुणु जाउ जसुम्मउ अतुल-थामु । पुणु विमलवाहणुच्छलिय-णामु ॥१॥
पुणु साहिचन्दु चन्दाहि जाउ । मरुएउ पसेणइ णाहिराउ ॥२॥
तहोँ णाहिहेँ पच्छिम-कुलयरासु । मरुएवि सई व पुरन्दरासु ॥३॥
चन्दहोँ रोहिणि व मणोहिराम । कन्दप्पहो रइ व पसण्ण-णाम ॥४॥
सा णिरलकार जि चारु-गत्त । आहरण-रिद्धि पर भार-मेत्त ॥५॥
तहेँ णिय-लायण्णु जें दिण्ण-सोहु । मलु केवलु पर कुकुम-रसोहु ॥६॥
पासेय-फुलिङ्गावलि जें चारु । पर गरुयउ मोत्तिय-हारु भारु ॥७॥
लोयण जि सहावें दल-विसाल । आडम्बरु पर कन्दोट्ट-माल ॥८॥

घत्ता

कमलासाएँ समन्तएँण अलि-वलए मन्दें ।
सुहलीहूयउ कम-जुयलु किं णेउर-सद्दें ॥९॥

[१४]

तो एत्थन्तरेँ माणव-वेसे । आइउ देविउ इन्दाएसे ॥१॥
ससि-वयणिउ कन्दोट्ट-दलच्छिउ । कित्ति-बुद्धि-सिरि-हिरि-दिहि- लच्छिउ
सप्परिवारउ ढुक्कउ तेत्तहेँ । सा मरुएवि भडारी जेत्तहेँ ॥३॥
का वि विणोउ किं पि उप्पायइ । पढइ पणच्चइ गायइ वायइ ॥४॥

यह सुनकर राजाने घोषणा की कि लो अब कर्मभूमि आरम्भ होगी। पूर्व विदेहमें त्रिलोकके लिए आनन्द स्वरूप परम जिनेन्द्रने यह बात मुझसे कही थी ॥१-८॥

घत्ता—जिसके नवसन्ध्या अरुण पत्ते है, और तारागण पुष्प है, ऐसे इस अवसर्पिणी कालरूपी वृक्षके ये सूर्य और चन्द्र, फल है ? ॥९॥

[१३] फिर अतुल शक्तिवाले यशस्वी हुए। फिर प्रसिद्ध नाम विमलवाहन, फिर अभिचन्द्र और चन्द्राभ हुए। तदनन्तर मरुदेव, प्रसेनजित् और नाभिराज हुए। उन अन्तिम कुलकर नाभिराजकी मरुदेवी वैसी ही पत्नी थी, जिस प्रकार इन्द्रकी इन्द्राणी। वह चन्द्रमाकी रोहिणीकी तरह सुन्दर और कामदेवकी रतिकी भाँति प्रसन्ननाम थी। वह बिना अलंकारोंके ही सुन्दर शरीर थी, आभरणोंका वैभव उसके लिए केवल भारस्वरूप था, उसका अपना लावण्य था जो उसे इतनी शोभा देता था कि केशरका-रस लेप (रसोह >रसोघ>रसका समूह) केवल मैल था। प्रस्वेद (पसीना) की चमकदार बूंदोकी पक्तिसे वह इतनी सुन्दर थी कि भारी मुक्ताहार उसके लिए केवल भार स्वरूप था। उसके लोचन स्वाभाविक रूपसे विशालदलवाले थे, कमलोंकी माला, उसके लिए केवल आडम्बर थी ॥१-८॥

घत्ता—कमलोकी आशासे धीरे-धीरे चक्कर काट रहे भ्रमर-समूहसे उसके दोनो पैर रुनझुन करते थे, नूपुरोकी ध्वनि उसके लिए किस काम की ? ॥९॥

[१४] कुछ दिनो बाद इन्द्रके आदेशसे देवियाँ मानव रूप धारण कर आयी। चन्द्रमुखी और नीलकमल के दलकी भाँति आँखोंवाली वे थी कीर्ति, बुद्धि, श्री, ह्री, धृति और लक्ष्मी। सपरिवार वे वहाँ पहुचीं जहाँ वह आदरणीय मरुदेवी थी। कोई-एक विनोद करती है, कोई पढती है, कोई नाचती है, कोई

का वि देइ तम्बोलु स-हत्थें । सव्वाहरणु का वि सहुँ वत्थें ॥५॥
पाडइ का वि चमरु कम धोवइ । का वि समुज्जलु दप्पणु ढोवइ ॥६॥
उक्खय-खग्ग का वि परिरक्खइ । का वि किं पि अक्खाणउ अक्खइ ॥७॥
का वि जक्खकद्दमेंण पसाहइ । का वि सरीरु ताहें सवाहइ ॥८॥

घत्ता

वर-पल्लकें पसुत्तियएँ सुविणावलि दिट्ठी ।
तीस पक्ख पहु-पङ्गणएँ वसुहार वरिट्ठी ॥९॥

[१५]

दीसइ मयगलु मय-गिल्ल-गण्डु । दीसइ वसहुक्खय-कमल-सण्डु ॥१॥
दीसइ पञ्चमुहु पईहरच्छि । दीसइ णव-कमलारूढ लच्छि ॥२॥
दीसइ गन्धुक्कड-कुसुम दामु । दीसइ छण-यन्दु मणोहिरामु ॥३॥
दीसइ दिणयरु कर-पज्जलन्तु । दीसइ झस-जुयलु परिब्भमन्तु ॥४॥
दीसइ जल-मङ्गल-कलसु वण्णु । दीसइ कमलायरु कमल-छण्णु ॥५॥
दीसइ जलणिहि गज्जिय-जलोहु । दीसइ सिंहासणु दिण्ण-सोहु ॥६॥
दीसइ विमाणु घण्टालि-मुहलु । दीसइ णागालउ सव्वु धवलु ॥७॥
दीसइ मणि-णियरु परिप्फुरन्तु । दीसइ धूमद्धउ धगधगन्तु ॥८॥

घत्ता

इय सुविणावलि सुन्दरिएँ मरुदेविएँ दीसइ ।
गम्पिणु णाहि-णराहिवहों सुविहाणएँ सीसइ ॥९॥

[१६]

तेण वि विहसेविणु एम वुत्तु । 'तउ होसइ तिहुअण-तिलउ पुत्तु ॥१
जसु मेरु-महागिरि-ण्हवणवीढु । णह-मण्डउ महिहर-खम्भ-गीढु ॥२॥
जसु मङ्गल कलस महा-समुद्द । मज्जणय कालें बत्तीस इन्द' ॥३॥
तहों दिवसहों लग्गें वि अद्धु वरिसु । गिव्वाण पवरिसिय रयण-वरिसु ॥४

गाती है, कोई बजाती है, कोई अपने हाथसे पान देती है, और कोई अपने हाथसे समस्त आभूषण। कोई चामर डुलाती है, कोई पैर धोती है, कोई उज्ज्वल दर्पण लाती है, कोई तलवार उठाये हुए रक्षा करती है, कोई कुछेक आख्यान कहती है, कोई सुगन्धित लेपसे प्रसाधन करती है, कोई उसके शरीरकी मालिश करती है ॥१-८॥

घत्ता—उत्तम पलंगमें सोते हुए (एक रात) उसने स्वप्नावलि देखी। तीस पक्षोंतक (पन्द्रह माह) रत्नवृष्टि होती रही। ॥९॥

[१५] वह देखती है—मदसे गीले गडस्थलवाला मत्तगज, देखती है—वृषभ, जिसने कमल समूह उखाड़ रखा है, देखती है—बडी-बडी आँखोंवाला सिंह, देखती है—नवकमलोपर बैठी हुई लक्ष्मी, देखती है—उत्कट गन्धवाली पुष्पमाला; देखती है मनोहर पूर्णचन्द्र, देखती है—किरणोसे प्रचण्ड दिनकर, देखती है—घूमता हुआ मीनोंका जोड़ा, देखती है, जलसे भरा हुआ मंगल-कलश, देखती है—कमलोसे आच्छन्न सरोवर, देखती है—जलनिधि जिसका जलसमूह गरज रहा है। देखती है—शोभादायक सिंहासन। देखती है—घण्टियोंसे मुखरित विमान, देखती है—अत्यन्त धवल नागालय। देखती है—चमकता हुआ मणिसमूह, देखती है—जलती हुई आग ॥१-८॥

घत्ता—यह स्वप्नावलि सुन्दरी मरुदेवीने देखी, और सवेरे जाकर उसने नाभिराजासे कहा ॥९॥

[१६] उसने भी हँसते हुए इस प्रकार कहा, 'तुम्हारे त्रिभुवन-विभूषण पुत्र होगा, जिसका स्नानपीठ मेरु महापर्वत होगा, पर्वतोके खम्भोंपर अवलम्बित, आकाशरूपी मण्डप होगा, महासमुद्र जिसके मंगलकलश होंगे। और अभिषेकके समय बत्तीस प्रकारके इन्द्र आयेगे। उस दिनसे लेकर आधे बरसतक देवोने रत्नवृष्टि की। शीघ्र नाभिराजाके घरमे ज्ञानदेह

लहु णाहि-णरिन्दहों तणय गेहु । अवइण्णु भडारउ णाण-देहु ॥५॥
थिउ गब्भब्भिन्तरें जिणवरिन्दु । णव-णलिणि-पत्तें ण सलिल-विन्दु ॥६
वसुहार पवरिसिय पुणु वि ताम । अण्णु वि अट्ठारह पक्ख जाम ॥७॥
जिण-सूरु समुट्ठिउ तेय-पिण्डु । वोहन्तु भव्व-जण-कमल-सण्डु ॥८॥

घत्ता

मोहन्धार-विणासयरु केवल-किरणायरु ।
उइउ भडारउ रिसह-जिणु स इँ भु वण-दिवायरु ॥९॥

इय एत्थ पउमचरिए धणञ्जयासिय-सयम्भुएव-कए ।
'जिण जम्मुप्पत्ति' इम पढम चिय साहिय पव्वं ॥१०॥

●

आदरणीय ऋषभजिन अवतरित हुए। वह गर्भके भीतर ऐसे स्थित हो गये, जैसे नव कमलिनीके पत्तेपर जलकी बूँद हो। फिर भी, जबतक अठारह पक्ष नहीं हुए, तबतक रत्नोंकी वर्षा होती रही। तेजस्वी शरीर जिनरूपी सूर्य, भव्यजन रूपी कमल-समूहको बोधित करता हुआ उदित हो गया ॥१-८॥

घत्ता—आदरणीय ऋषभजिन उत्पन्न हुए जो मोहान्धकार-का नाश करनेवाले, केवलज्ञानकी किरणोंके समूह स्वयं विश्वके लिए दिवाकर थे ॥९॥

इस प्रकार यहाँ धनंजयके आश्रित स्वयम्भूदेव
द्वारा रचित, 'जिन जन्म-उत्पत्ति' नामक
पहला पर्व पूरा हुआ ॥१॥

●

विईओ संधि

जग-गुरु पुण्ण-पवित्तु तइलोकहोँ मङ्गलगारउ ।
सहसा णेवि सुरेहि मेरुहि अहिसित्तु भडारउ ॥१॥

[१]

उप्पण्णएँ तिहुअण-परमेसरेँ । अट्ठोत्तर-सहास-लक्खण-धरेँ ॥१॥
भावण-भवणेँ हि सङ्ख पवज्जिय । ण णव-पाउसेँ णव घण गज्जिय ॥२॥
विन्तर-भवणेँ हिं पडह-सहासइँ दस-दिसिवह-णिग्गय-णिग्घोसइँ ॥३
जोइस-भवणन्तरेँ जिं अहिट्ठिय । भीसण-सीहणिणाय समुट्ठिय ॥४॥
कप्पामर-भवणहिँ जय-घण्टउ । सइँ जि गरुअ-टङ्कार-विसट्टउ ॥५॥
आसण-कम्पु जाउ अमरिन्दहोँ । जाणेँ वि जम्मुप्पत्ति जिणिन्दहोँ ॥६॥
चडिउ तुरन्तु सक्कु अइरावएँ । कण्ण-चमर-उड्डाविय-छप्पएँ ॥७॥
मेरु-सिहरि-सण्णिह-कुम्भ-त्थलेँ । मय-सरि-सोत्त-सित्त-गण्ड-त्थलेँ ॥८॥

घत्ता

सुरवइ दस-सय-णेत्तु रेहइ आरूढउ गयवरेँ ।
विहसिय-कोमल-कमलु कमलायरु णाइँ महीहरेँ ॥९॥

[२]

अमर-राउ सचल्लिउ जावेँ हिं । धणएं किउ कञ्चणमउ तावेँ हिं ॥१॥
पट्टणु चउ-गोउर-सपुण्णउ । सत्ताहिँ पायारेह रिवण्णउ ॥२॥
दीहिय-मढ-विहार-देवउलेँ हिं । सर-पोक्खरिणि तलाएँ हिं विउलेँ हिं॥३
कच्छाराम-सीम-उज्जाणेँ हिं । कञ्चण-तोरणेहिँ अपमाणेँ हिं ॥४॥
लहु सक्केय-णयरि किय जक्खेँ । परियञ्चिय ति-वार सहसक्खेँ ॥५॥
पीण-पओहराएँ ससि-सोमएँ । इन्द-महाएविएँ पउलोमएँ ॥६॥

दूसरी सन्धि

विश्वगुरु पुण्यपवित्र त्रिभुवनका कल्याण करनेवाले भट्टारक ऋषभको देवता लोग शीघ्र मेरु पर्वतपर ले गये और वहाँ उनका अभिषेक किया।

[१] एक हजार आठ लक्षणोंसे युक्त, त्रिभुवनके परमेश्वर ऋषभके जन्म लेनेपर भवनवासी देवोंके भवनोंमें शंख बज उठे, मानो नव वर्षाऋतुमें नवघन गरज उठे हों, व्यन्तर देवोंके भवनोंमे हजारों भेरियाँ बज उठी, जिनका निर्घोष दसों दिशा-पथोमे गूँज रहा था। ज्योतिष देवोंके भवनोमे भीषण सिंहनाद होने लगा, कल्पवासी देवोके भवनोंमे भीषण ध्वनिसे युक्त सौ जयघण्ट बजने लगे। इन्द्रका आसन काँपने लगा। जिनेन्द्रका जन्म जानकर इन्द्र शीघ्र ही ऐरावत महागजपर सवार हुआ, जो अपने कानरूपी चमरोंसे भ्रमरोंको उड़ा रहा था। मेरु पर्वतके शिखरके समान है कुंभस्थल जिसका तथा जो मदजल-की धाराओंसे सिक्त है ॥१-८॥

घत्ता—ऐसे महागजपर आरूढ, सहस्रनयन इन्द्र इस प्रकार शोभित था, जैसे महीधरपर, हँसते हुए कोमल कमलोंसे युक्त कमलाकर हो ॥९॥

[२] जैसे ही इन्द्रराज चला वैसे ही कुबेरने स्वर्णमय नगरकी रचना की, जो चार गोपुरोंसे सम्पूर्ण और सात परकोटोंसे सुन्दर था। यक्षने बड़े-बड़े मठ, विहार और देव-कुलों, सरोवर, पुष्करिणियों, बड़े तालाबों और गृहवाटिकाओं, सीमा-उद्यानों और अगणित स्वर्णतोरणोसे युक्त साकेत नगरकी रचना कर दी। इन्द्रने तीन बार उसकी प्रदक्षिणा की। जिसके

सव्व-जणहों उवसोवणि देप्पिणु । अग्गए मायावालु थवेप्पिणु ॥७॥
णिउ तिहुअण-परमेसरु तेत्तहें । सपरिवारु पुरन्दरु जेत्तहें ॥८॥

घत्ता

झत्ति सुरेहिं विमुक्क चरणोवरि दिट्ठि विसाला ।
भत्तिए अच्चण-जोग्गु णावइ णीलुप्पल-माला ॥९॥

[३]

वाल-कमल-दल-कोमल-वाहउ । अङ्कें चडाविउ तिहुअण-णाहउ ॥१॥
सुरवइणाऽरुण-वाल-दिवायरु । संचालिउ त मेरु-महीहरु ॥२॥
सत्तहिं जोयण-सयहि तहिंतिउ । सण्णवइहिं तारायण-पन्तिउ ॥३॥
उप्परि दस-जोयणेंहिं दिवायरु । पुणु असीहिं लक्खिज्जइ ससहरु ॥४॥
पुणु चऊहिं णक्खत्तहँ पन्तिउ । वुह-मण्डलु वि चऊहिं तहितिउ ॥५॥
असुर-मन्ति तिहिं तिहिं सवच्छरु । तिहिं अङ्गारउ तिहिं जि सणिच्छरु ॥६
अट्ठाणवइ सहास कमेप्पिणु । अण्णु वि जोयण-सउ लङ्घेप्पिणु ॥७॥
पण्डु-सिलोवरि सुरवर-सारउ । लहु सिंहासणें ठविउ भडारउ ॥८॥

घत्ता

णावइ सिरेंण लएवि मन्दरु दरिसावइ लोयहों ।
'एहउ तिहुअण-णाहु किं होइ ण होइ व जोयहों' ॥९॥

[४]

ण्हवणारम्भ-भेरि अप्फालिय । पडहाऽमर-किङ्कर-कर-ताडिय ॥१॥
पूरिय धवल सङ्ख किउ कलयलु । केहि मि घोसिउ चउविहु मङ्गलु ॥२॥
केहि मि आढत्तइँ गेयाइ मि । सरगय-पयगय-तालगयाइ मि ॥३॥
केहि मि वाइउ वज्जु मणोहरु । वारह-तालउ सोलह-अक्खरु ॥४॥
केहि मि उव्वेल्लिउ भरहुत्तउ । णव-रस-अट्ठ-भाव-संजुत्तउ ॥५॥

स्तन पीन है, और जो चन्द्रमाकी तरह कोमल है, ऐसी इन्द्रकी महादेवी इन्द्राणी सबलोगोंको मोहित कर तथा माँ के आगे मायावी बालक रखकर तीन लोकोंके परमेश्वर जिनको वहाँ ले गयी, जहाँ इन्द्र अपने परिवारके साथ था ॥१-८॥

घत्ता—देवोंने शीघ्र ही, भगवान्के श्रीचरणोंपर अपनी विशाल दृष्टि भक्तिसे इस प्रकार फेंकी, जैसे पूजाके योग्य नील कमलोंकी माला ही हो ॥९॥

[३] बाल कमलके दलोंके समान कोमल बाँहोंवाले, त्रिभुवननाथको इन्द्रने गोदमें ले लिया, और अरुण बाल दिवाकरके सामने उन्हें यह सुमेरु महीधरकी ओर ले चला। वहाँसे सात सौ छियानवे योजन दूर तारागणोंकी पंक्ति थी, उसके ऊपर दस योजनकी दूरीपर सूर्य, फिर अस्सी लाख योजन की दूरीपर चन्द्रमा, फिर चार योजनकी दूरीपर नक्षत्रोंकी पक्ति थी। वहाँसे चार योजन दूरपर बुधमण्डल, फिर वहाँसे क्रमशः बृहस्पति शुक्र मंगल और शनि ग्रह है। वहाँसे अट्ठानवे हजार योजन चलकर तथा एक सौ योजन और चलकर सुरवरोंमें श्रेष्ठ, परम आदरणीय ऋषभ जिनको पाण्डुकशिलाके ऊपर सिंहासनपर स्थापित कर दिया गया ॥१-८॥

घत्ता—मन्दराचल पर्वत (उन्हें) अपने सिरपर लेकर मानो लोगोंको बता रहा था कि देख लो यह त्रिभुवननाथ है या नहीं ॥९॥

[४] अभिषेकके शुरू होनेकी भेरी बजा दी गयी। देवोंके अनुचरोंके हाथोंसे ताडित पटह भी बजने लगे। सफेद शंख फूँक दिये गये। कोलाहल होने लगा। किसीने चार प्रकारके मंगलोंकी घोषणा की। किसीने स्वर पद और ताल से युक्त गान प्रारम्भ कर दिया। किसीने सुन्दर वाद्य बजाया जो बारह ताल और सोलह अक्षरोंसे युक्त था। किसीने भरत नाट्य

केहि मि उब्भिगाइँ भय-चिन्धइँ । केहि मि गुरु-थोराइँ पारद्धइँ ॥६॥
केहि मि लइयउ मालइ-मालउ । परिमल-बहलउ भमर-चमालउ ॥७॥
केहि मि वेणु केहिँ वर-वीणउ । केहि मि तिन्तरियाउ सर-लीणउ ॥८॥

घत्ता

जं परियाणिउ जेहिँ　　तं तेहिँ सव्वु विण्णासिउ ।
तिहुअण-सामि भणेवि णिय-णिय-विण्णाणु पयासिउ ॥९॥

[५]

पहिलउ कलसु लइउ अमरिन्दें । बीयउ हुअवहेण साणन्दें ॥१॥
तइयउ सरहसेण जमराएं । चउथउ णेरिय-देवें आएं ॥२॥
पञ्चमु वरुणें समरें समत्थें । छट्ठउ मारुएण सइँ हत्थें ॥३॥
सत्तमउ वि कुवेर अहिराणें । अट्ठमु कलसु लइउ ईसाणें ॥४॥
णवमउ समाणिउ धरणिन्दें । दसमउ कलसु लइज्जइ चन्दें ॥५॥
अण्ण कलस उच्चाइय अण्णेहिं । लक्ख-कोडि-अक्खोहणि-गण्णेहिं ॥६॥
सुरवर-वेल्लि अछिण्ण रएप्पिणु । चत्तारि वि समुद्द लङ्घेप्पिणु ॥७॥
खीर-महण्णवें खीरु भरेप्पिणु । अण्णहों अण्णु समप्पइ लेप्पिणु ॥८॥

घत्ता

ण्हाविउ एम सुरेहिँ　　बहु-मङ्गल-कलसेंहिं जिणवरु ।
ण णव-पाउस-कालें　　मेहेंहिँ अहिसित्तु महीहरु ॥९॥

[६]

मङ्गल-कलसेंहि सुरवर-सारउ । जय-जय-सद्दें ण्हविउ भडारउ ॥१॥
तो एत्थन्तरें हय-पडिवक्खें । गेण्हेंवि वज्ज-सूइ सहसक्खे ॥२॥
कण्ण-जुअलु जग णाहहों विज्झइ । कुण्डल-जुअलु झत्ति आइज्झइ ॥३॥
सेहरु सीसे हारु वच्छत्थलें । करें कङ्कणु कडिसुत्तउ कडियलें ॥४॥
तिहुअण-तिलयहों तिलउ थवन्ते । मणें आसङ्किउ दससयणेत्ते ॥५॥

प्रारम्भ किया जो नौ रसों और आठ भावोंसे युक्त था। किसीने ध्वज-पताकाएँ उठा ली। किसीने बड़े-बड़े स्तोत्र प्रारम्भ कर दिये। किसीने मालतीकी माला ले ली जो परागसे परिपूर्ण और भ्रमरोंसे मुखरित थी। किसीने वेणु, किसीने वर वीणा ले ली। कोई वीणाके स्वरमें लीन हो गया ॥८॥

घत्ता—उस अवसर पर जिसे जो ज्ञात था, उसने उसका सम्पूर्ण प्रदर्शन किया। उन्हें त्रिभुवनका स्वामी समझकर सब ने अपना-अपना विज्ञान प्रकट किया ॥९॥

[५] पहला कलश देवेन्द्र ने लिया, दूसरा सानन्द अग्नि ने। तीसरा हर्षपूर्वक यमराज ने, चौथा नैऋत्य देव ने। पाँचवाँ समर मे समर्थ वरुण ने, छठा स्वयं पवनने अपने हाथमें लिया। सातवाँ कुबेरने बड़े स्वाभिमानसे लिया। ईशानने आठवाँ कलश लिया। नौवाँ धरणेन्द्रने लिया, दसवाँ कलश चन्द्रने लिया। दूसरे-दूसरे कलश दूसरे-दूसरे देवोंने उठा लिये जिनकी संख्या एक लाख करोड अक्षौहिणीमें है। सुरवरोंकी लगातार कतार बनाकर, चारो समुद्रोंको लाँघकर, क्षीरमहासागरका क्षीर भरकर, तथा एकसे दूसरे को देते हुए ॥१-८॥

घत्ता—देवोंने बहुत मंगल कलशो से जिनवरका अभिषेक किया, मानो नववर्षाकालमे मेघोंने महीधर का ही अभिषेक किया हो ॥९॥

[६] सुरवर श्रेष्ठ परम आदरणीय ऋषभ जिनका जय जय शब्दोंके साथ, मगल-कलशोसे अभिषेक किया गया। इसके अनन्तर, शत्रुका नाश करनेवाला इन्द्र वज्रसूची लेकर जगन्नाथके दोनो कान छेद देता है और शीघ्र ही कुण्डल युगल उन्हें पहना देता है। सिरपर चूड़ामणि, वक्षस्थलपर हार, हाथमें कंगन, और कटितलमे कटिसूत्र। त्रिभुवन तिलक को तिलक लगाते हुए सहस्रनयनके मनमें आशंका हो गयी। फिर

पुणु आढत्त जिणिन्दहों वन्दण । जय तिहुअण-गुरु णयणाणन्दण ॥६॥
जय देवाहिदेव परमप्पय । जय तियसिन्द-विन्द-वन्दिय-पय ॥७
जय णह-मणि-किरणोह-पसारण । तरुण-तरणि-कर-णियर-णिवारण ॥८॥
जय णमिएहिं णमिय पणविज्जहि । अरुहु वुत्तु पुणु कहों उवमिज्जहि ॥९॥

घत्ता

जग-गुरु पुण्ण-पवित्तु तिहुअणहों मणोरह-गारा ।
भवेँ भवेँ अम्हहुँ देज्ज जिण गुण-सम्पत्ति भडारा ॥१०॥

[७]

णाय-णरामर-णयणाणन्दहों । वन्दण-हत्ति करन्तों इन्दहों ॥१॥
रूवालोयणेँ रूवासत्तइँ । तित्ति ण जन्ति पुरन्दर-णेत्तइं ॥२॥
जहिं णिवडियइँ तहिं जेँ पङ्गुत्तइँ । दुव्वल-ढोरइं पङ्कें व खुत्तइँ ॥३॥
वामकरङ्गुट्ठउ णिद्दारेँ वि । वालहों तेत्थु अमिउ सचारेँ वि ॥४॥
पुणु वि पडीवउ मयण-वियारउ । गम्पि अउज्झहेँ थविउ भडारउ ॥५॥
सूरे मेरु-गिरि व परियञ्चिउ । पुणु दस-सय कर करेँ वि पणच्चिउ ॥६
सालङ्कारु स-दोरु स-णेउरु । सच्छरु सप्परिवारन्तेउरु ॥७॥
जणणिए ज जि दिट्ठु अहिसित्तउ । रिसहु मणेँ वि पुणु रिसहु जेँ वुत्तउ ॥८

घत्ता

कालेँ गलन्तएँ णाहु णिय-देह-रिद्धि परियड्ढइ ।
विवरिज्जन्तु कईहिं वायरणु गन्थु जिह वड्ढइ ॥९॥

[८]

अमर-कुमारेँ हिं सहुँ कीलन्तहों । पुव्वहुँ वीस लक्ख लङ्घन्तहों ॥१॥
एक्क-दिवसेँ गय पय कूवारे । 'देवदेव सुअ भुक्खा-मारे ॥२॥
जाहँ पसाए अम्हे धण्णा । ते कप्पयरु सव्व उच्छण्णा ॥३॥

उसने जिनेन्द्रकी वन्दना प्रारम्भ की,—"त्रिभुवनगुरु और नेत्रो-को आनन्द देनेवाले आपकी जय हो, सूर्यकी तरह किरण-समूहको प्रसारण करनेवाले, और तरुण सूर्यकी किरणोके प्रसारको रोकनेवाले आपकी जय हो, नमि-विनमिके द्वारा नमित आपकी जय हो ॥१-९॥

घत्ता—"विश्वगुरु पुण्यसे पवित्र त्रिभुवनके मनोरथोको पूर्ण करनेवाले, हे आदरणीय जिन, जन्म-जन्म मे हमे गुण सम्पत्ति दे" ॥१०॥

[७] "नाग, नर और अमरोके नेत्रोको आनन्द देनेवाले तथा जिनकी वन्दना भक्ति करते हुए इन्द्रके रूपमे आसक्त नेत्र तृप्तिको प्राप्त नही हुए। वे जहाँ भी गिरते वही गड़कर इस प्रकार रह जाते जैसे कीचड़में फँसे हुए दुर्बल ढोर (पशु) हों। इन्द्रने, बालक जिनके बाये हाथके अँगूठेको चीरकर, उसमे अमृतका संचार कर दिया, और उसने जाकर, कामका नाश करनेवाले आदरणीय जिनको वापस अयोध्या में रख दिया। जैसे सूर्य, सुमेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा करता है, उसी प्रकार जिनकी इन्द्रने प्रदक्षिणा की और एक हजार हाथ बनाकर नाचा, अपने अलं-कार, ढोर, नूपुर स्वर-परिवार और अन्तःपुरके साथ। जब माँने उन्हे अभिषिक्त देखा तो उन्हे ऋषभ समझकर उनका नाम ऋषभ रख दिया ॥१-८॥

घत्ता—समय बीतनेपर स्वामीकी देह-ऋद्धि उसी प्रकार बढने लगी जिस प्रकार कवियोके द्वारा व्याख्या होनेपर व्याक-रणका ग्रन्थ फैलता जाता है ॥९॥

[८] अमरकुमारोके साथ क्रीडा करते हुए उनका बीस लाख पूर्व समय बीत गया। एक दिन प्रजा करुण स्वरमे पुकार उठी— "देव देव, हम भूखकी मारसे मरे जा रहे है। जिनके प्रसादसे हम अपनेको धन्य समझ रहे थे, वे सारे कल्पवृक्ष

एवहिँ को उवाउ जीवेवएँ । भोयणेँ खाणेँ पाणेँ परिहेवएँ ॥४॥
त णिसुणेँवि वयणु जग-सारउ । सयल-कलउ दक्खवइ भडारउ ॥५॥
अण्णहुँ असि मसि किसि वाणिज्जउ । अण्णहुँ विविह-पयारउ विज्जउ ॥६॥
कइहिँ दिणेँहिँ परिणाविउ देविउ । णन्द-सुणन्दाइउ सिय-सेविउ ॥७॥
सउ पुत्तहुँ उप्पण्णु पहाणहँ । भरह-बाहुबलि-अणुहरमाणहँ ॥८॥

घत्ता

पुव्वहँ लक्ख तिसट्ठि गय रज्जु करन्तहोँ जावेँहिँ ।
चिन्तामणेँ उप्पण्ण सुरवइ-महरायहोँ तावेँहिँ ॥९॥

[९]

तिहुअण-जग-मण-णयण-पियारउ । मोयासत्तउ णिएँवि भडारउ ॥१॥
मणेँ चिन्ताविउ दससयलोयणु । करमि किं पि वइरायहोँ कारणु ॥२॥
जेण करइ सुहि-सत्त-हियत्तणु । जेण पवत्तइ तित्थ-पवत्तणु ॥३॥
जेण सीलु वउ णियमु ण णासइ । जेण अहिंसा-धम्मु पयासइ ॥४॥
एम वियप्पेँ वि छण-चन्दाणण । पुण्णाउस कोक्किय णीलञ्जण ॥५॥
तिहुअण-गुरुहेँ जाहि ओलग्गएँ । णट्टारम्भु पदरिसहि अग्गएँ' ॥६॥
त आएसु लहेँवि गय तेत्तहेँ । थिउ अत्थाणेँ भडारउ जेत्तहेँ ॥७॥
पाउज्जिएँहिँ पउञ्जिउ तक्खणेँ । गेउ वज्जु ज वुत्तउ लक्खणेँ ॥८॥

घत्ता

रङ्गेँ पइट्ठ तुरन्ति कर-दिट्ठि-भाव-रस-रञ्जिय ।
विब्भम भाव-विलास दरिसन्तिएँ पाण विसज्जिए ॥९॥

[१०]

ज णीलञ्जण पाणेँहिँ मुक्की । जाय जिणहोँ ता सङ्क गुरुक्की ॥१॥
'धिद्धिगत्थु संसारु असारउ । अण्णहोँ अण्णु होइ कम्मारउ ॥२॥

नष्ट हो गये। इस समय जीने, भोजन, खान, पान और पहि-रनेका उपाय क्या है?" यह वचन सुनकर, जग-श्रेष्ठ उन्हें सब विद्याओंकी शिक्षा देते हैं। दूसरोंके लिए असि, मसि, कृषि और वाणिज्य। और दूसरोंके लिए विविध प्रकार की दूसरी दूसरी विद्याएँ? कई दिनों के बाद, उन्होंने नन्दा सुनन्दा नामक श्रीसे सेवित दो देवियों से विवाह किया। उनके, भरत और बाहुबलि के समान प्रधान सौ पुत्र हुए ॥१-८॥

घत्ता—जब राज्य करते हुए उनका त्रेसठ लाख पूर्व बीत गया, तो इन्द्रमहाराजके मनमें चिन्ता उत्पन्न हुई ॥९॥

[९] "त्रिभुवनके जन मन और नेत्रोंके लिए प्रिय आदरणीय जिनको भोगोंमें आसक्त देखकर इन्द्र अपने मनमें सोचने लगा कि मैं वैराग्यका कुछ तो भी कारण खोजता हूँ जिससे यह पण्डितो और सात्त्विक लोगोका मनचीता करे, जिससे तीर्थका प्रवर्तन प्रवर्तित हो, जिससे शील, व्रत और नियम का नाश न हो, जिससे अहिंसाधर्मका प्रकाश हो।" यह विचार कर इन्द्रने पुण्यायुवाली चन्द्रमुखी नीलाजनाको बुलाया और कहा, "त्रिभुवन स्वामीकी सेवामें जाओ, उनके सामने नाट्यारम्भका प्रदर्शन करो।" यह आदेश पाकर, वह वहाँ गयी जहाँ आदरणीय अपने आस्थानमें बैठे हुए थे, प्रयोग-कर्ताओंने तत्काल, जैसा कि लक्षणशास्त्रमें कहा गया है, गेय और वाद्य प्रारम्भ कर दिया ॥१-८॥

घत्ता—कर, दृष्टि, भाव और रससे रंजित नीलाजनाने तुरन्त रंगशालामें प्रवेश किया और विभ्रम भाव तथा विलास दिखाते-दिखाते उसने अपने प्राण छोड दिये" ॥९॥

[१०] नीलाजनाको प्राणोंसे मुक्त देखकर जिनको बहुत बडी शंका हो गयी। (वह सोचने लगे) असार संसारको धिक्कार है। इसमें एक के लिए दूसरा कर्मरत होता है?

अण्णहों अण्णु करइ भिच्चत्तणु'। त जि हूउ वइरायहों कारणु ॥३॥
लोयन्तियहिँ ताम पडिवोहिउ। 'चारु देव जं सइँ उम्मोहिउ ॥४॥
उवहिहिँ णव-णव-कोडाकोडिउ। णट्ठउ धम्मु सत्थु परिवाडिउ ॥५॥
णट्ठइँ दसण-णाण-चरित्तइँ। दाण-झाण-सजम-सम्मत्तइँ ॥६॥
पञ्च महव्वय पञ्चाणुव्वय। तिण्णि गुणव्वय चउ सिक्खावय ॥७॥
णियम-सील-उववास-सहासइँ। पइँ होन्तेण हवन्तु असेसइँ' ॥८॥

घत्ता

ताम विमाणारूढ चउ-दिसु चउ देव-णिकाया।
'पइँ विणु सुण्णउ सोक्खु' ण जिण-हक्कारा आया ॥९॥

[११]

सिविया-जाणे सुरवर-सारउ। जय-जय-सद्दे चढिउ भडारउ ॥१॥
देवेँ हिँ खन्धु देवि उच्चाइउ। णिविसे त सिद्धत्थु पराइउ ॥२॥
तहिँ उववणेँ थोवन्तरु थाएँवि। भरहहों राय-लच्छि करेँ लाएँवि ॥३॥
'णमह परम-सिद्धाण' भणन्ते। किउ पयागेँ णिक्खवणु तुरन्ते ॥४॥
मुट्ठिउ पञ्च भरेप्पिणु लइयउ। चामीयर-पडलोवरेँ थवियउ ॥५॥
गेण्हेँ वि जण-मण-णयणाणन्दे। घित्तउ खीर-समुद्दे सुरिन्दे ॥६॥
तेण समाणु सनेहें लइया। रायहँ चउ सहास पव्वइया ॥७॥
परिमिउ ससि जिह गह-सघाए। णद्द वरिसु थिउ काओसग्गए ॥८॥

घत्ता

पवणुद्धुयउ जडाउ रिसहहों रेहन्ति विसालउ।
सिहिहेँ वलन्तहों णाइँ धूमाउल-जाला-मालउ ॥९॥

एककी चाकरी दूसरा करता है।" यह बात उसके लिए वैराग्य का कारण हो गयी। तभी लौकान्तिक देवोंने आकर परमजिनको प्रतिबोधित किया, "हे देव, बहुत सुन्दर जो आप स्वयं मोहसे विरक्त हो गये। निन्यानवे कोडा-कोड़ी सागर पर्यन्त समयसे धर्मशास्त्र और परम्परा नष्ट हो चुकी है, दर्शन, ज्ञान और चारित्र नष्ट हो गये हैं, दान-ध्यान-संयम और सम्यक्त्व नष्ट हो गया है, पाँच महाव्रत, पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और शिक्षाव्रत नष्ट हो चुके हैं, नियम, शील और सहस्रों उपवास नष्ट हो चुके हैं, अब आपके होनेसे ये सब होंगे ॥१-८॥

घत्ता—इतनेमें चारो निकायोंके देव विमानोमे आरूढ होकर आ गये, मानो जिन भगवान्‌के लिए यह बुलावा आया हो कि आपके बिना मोक्ष सूना है ॥९॥

[११] तब सुरश्रेष्ठ आदरणीय जिन जय-जय शब्दके साथ शिविका यानमे चढ़े। देवोंने कन्धा देकर उसे उठा लिया और पलभरमे वे सिद्धार्थ उपवनमे पहुँच गये। उस उपवनके थोडी दूर स्थित होकर, भरत के हाथमें राज्यलक्ष्मी देकर, परमसिद्धोको नमस्कार करते हुए 'प्रयाग' (उपवन) में उन्होने तुरत सन्यास ग्रहण कर लिया। पाँच मुट्ठियोमे भरकर, बाल ले लिये और स्वर्णपटलके ऊपर रख दिये। जनोंके मन और नेत्रोंको आनन्द देनेवाले सुरेन्द्रने उन्हें लेकर क्षीरसमुद्रमें डाल दिया। स्नेहसे प्रेरित होकर चार हजार राजाओने भी उनके साथ प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। जिस प्रकार चन्द्रमा ग्रहसमूहसे घिरा रहता है, उसी प्रकार नवदीक्षित राजाओंसे घिरे हुए परमजिन आधे वर्ष तक कायोत्सर्गमें स्थित रहे ॥१-८॥

घत्ता—ऋषभ जिनकी हवामें उडती हुई विशाल जटाएँ ऐसी लगती थी मानो जलती हुई आगकी धूमाकुल ज्वालमाला हो ॥९॥

[१२]

जिणु अविउलु अविचलु वीसत्थउ । थिउ छम्मासु पलम्बिय-हत्थउ ॥१॥
जे णिव तेण समउ पव्वइया । ते दारुण-दुव्वाएं लइया ॥२॥
सीउण्हें हिं तिस-भुक्खें हिं खामिय । जिम्मण-णिद्दालसें हिं विणामिय ॥३॥
चालण-कण्डुयणइँ अलहन्ता । अहि-विच्छिय-परिवेढिज्जन्ता ॥४॥
घोर-वीर-तव-चरणें हि भग्गा । णासें वि सलिलु पिएवएँ लग्गा ॥५॥
केण वि महियलें घत्तिउ अप्पउ । 'हो हो केण दिट्ठु परमप्पउ ॥६॥
पाण जन्ति जइ एण णिओए । तो किर तेण काइँ परलोएं ॥७॥
को वि फलइँ तोडेप्पिणु भक्खइ । 'जाहुँ' भणेवि को वि काणेक्खइ ॥८॥

घत्ता

को वि णिवारइ कि वि आमेल्लें वि चलण जिणिन्दहों ।
'कल्लएँ देसहुँ काइँ पच्चुत्तरु भरह-णरिन्दहों ॥९॥

[१३]

तहि तेहएँ पडिवन्नएँ अवसरें । दइवी वाणि समुट्ठिए अम्बरें ॥१॥
अहों अहों कूड-कवड-णिग्गन्थहों । कापुरिसहों अणाय-परमत्थहों ॥२॥
एण महारिसि-लिङ्ग-ग्गहणे । जाइ-जरा-मरण-त्तव-डहणे ॥३॥
फलइँ म तोडहों जलु मा डोहहों । ण तो णीसङ्गत्तणु छण्डहों' ॥४॥
त णिसुणें वि तिस-भुक्खादण्णें हि । उद्धूलिउ अप्पाणउ अण्णें हि ॥५॥
भण्णें हि अण्ण समय उप्पाइय । तहि अवसरें णमि-विणमि पराइय ॥६
कच्छ-महाकच्छाहिव-णन्दण । वर-करवाल-हत्थ णीसन्दण ॥७॥
वेण्णि वि विहि चलणें हिं णिवडेप्पिणु । थिय पासें हिं जिणु जयकारेप्पिणु ॥८

घत्ता

चिन्तिउ णमि-विणमीहि 'वुत्तउ वि ण वोल्लइ णाहो ।
एउ ण जाणहुँ आसि किउ अम्हहि को अवराहो ॥९॥

[१२] जिन भगवान्, छह माह तक हाथ लम्बे किये हुए अविकल, अविचल और विश्वस्त रहे। लेकिन जो राजा उनके साथ प्रव्रजित हुए थे, वे दारुण दुर्वातमें जा फँसे। शीत, उष्ण, भूख और प्याससे शीर्ण हो गये, जँभाई, नींद और आलस्यसे वे हार मान बैठे। चलना और खुजलाना न पा सकनेके कारण, साँप और बिच्छुओंने उन्हें घेर लिया। वे धीर-धीर तपश्चरणसे भग्न हो गये। भ्रष्ट होकर पानी पीने लग गये। कोई महीतल-पर पड़ गया। (कोई कहने लगा), हो हो, परमपद किसने देखा, यदि इस तपमे प्राण जाते है तो फिर उस परमलोकसे क्या ? कोई, फल तोड़कर खाता है, कोई 'मै जाता हूँ' कहकर तिरछी नजरसे देखता है ॥१–८॥

घत्ता—कोई जिनेन्द्रके चरणोंको छोड़कर जानेके लिए थोड़ा-सा मना करता है यह कहकर कि कल हम भरत नरेन्द्रको क्या जवाब देंगे ? ॥९॥

[१३] उस अवसरपर आकाशसे देव-वाणी हुई, "अरे कूट, कपटी, निर्ग्रन्थ कापुरुप, परमार्थको नहीं जाननेवालो, तुम जन्म-जरा और मृत्यु तीनोको जलानेवाले महाऋषियोके इस वेषको धारण कर, फल मत तोड़ो, पानी मत पिओ। नही तो दिगम्बरत्व छोड़ दो।" यह सुनकर, प्यास और भूखसे पीडित कुछ दूसरे साधुओंने अपने ऊपर धूल डाल ली, दूसरोने दूसरे मत खड़े कर लिये। इसी अवसरपर नमि और विनमि वहाँ पहुँचे कच्छप और महाकच्छपके बेटे। बिना रथके हाथोंमे तलवार लिये हुए। दोनों ही, जयकार पूर्वक, दोनों चरणोंमे प्रणाम कर जिनवरके पास बैठ गये। ॥१–८॥

घत्ता—नमि और विनमि अपने मनमे सोचने लगे कि बोलनेपर भी स्वामी जिन नही बोलते, हम नही जानते कि हमने कौन-सा अपराध किया है ॥९॥

[१४]

जइ वि ण किं पि देहिं सुर सारा । तो वरि एक्कसि वोल्लि भडारा ॥१॥
अण्णहुँ देसु विहजेंवि दिण्णउ । अम्हहुँ किं पहु णिद्धाखिण्णउ ॥२॥
अण्णहुँ दिण्ण तुरङ्गम गयवर । अम्हहुँ काइँ कियउ परमेसर ॥३॥
अण्णहुँ दिण्णउ उत्तिम-वेसउ । अम्हहुँ आलावेण वि ससउ' ॥४॥
एम जाम गरहन्ति जिणिन्दहों । आसणु चलिउ ताम धरणिन्दहों ॥५
अवहि पउञ्जेंवि सप्परिवारउ । आउ खणद्धें जेत्थु भडारउ ॥६॥
लक्खिउ विहि मि मज्झें परमेसरु । ससि सूरन्तरालें ण मन्दरु ॥७॥
तुरिउ ति-वारउ भामरि देप्पिणु । जिणवर-वन्दणहत्ति करेप्पिणु ॥८॥

घत्ता

पुच्छिय धरणिधरेण　'बिण्णि वि उण्णाविय-मत्था ।
थिय कज्जे कवणेण　उक्खय-करवाल-विहत्था' ॥९॥

[१५]

त णिसुणेवि दिण्णु पच्चुत्तरु । 'पेसिय वे वि आसि देसन्तरु ॥१॥
दूरट्ठाणु जाम त पावहुँ । जाम वलेवि पडीवा आवहुँ ॥२॥
ताम पिहिमि णिय-पुत्तहँ देप्पिणु । अम्महँ थिउ अवहेरि करेप्पिणु ॥३॥
त णिसुणेंवि विहसिय-मुह-यन्दें । दिण्णउ विज्जउ वे धरणिन्दें ॥४॥
'गिरि-वेयड्ढहों होहु पहाणा । उत्तर-दाहिण-सेढिहिं राणा' ॥५॥
त णिसुणेंवि णमि-विणमिहिं वुच्चइ । अण्णें दिण्णी पिहिवि न रुच्चइ ॥६॥
जइ णिग्गन्थु देइ सइँ हत्थें । तो अम्हे वि लेहुँ परमत्थें ॥७॥
त णिसुणेवि वे वि अवलोएँवि । थिउ उग्गएँ सो मुणिवरु होएँवि ॥८॥

घत्ता

हत्थु चलिउ तेण　गय वे वि लएप्पिणु विज्जउ ।
उत्तर-सेढिहिं एक्कु　थिउ दाहिण-सेढिहिं विज्जउ ॥९॥

[१४] सुर श्रेष्ठ है, यदि कुछ नहीं दे, तो भी आदरणीय एक बार बोल तो ले, दूसरोको तो देश विभक्त करके दे दिया, हे स्वामी, हमारे प्रति आप अनुदार क्यों हैं ? दूसरोको आपने तुरंगम और गजवर दिये है, हे परमेश्वर हमने क्या किया है ? दूसरोंको आपने उत्तम वेश दिये है, परन्तु हमसे बात करनेमें भी सन्देह है ? इस प्रकार वे जब जिनवरकी निन्दा कर रहे थे कि तभी धरणेन्द्रका आसन कम्पायमान हुआ, अवधिज्ञानसे सब जानकर, परिवारके साथ आधे पलमें वहाँ आया, जहाँ आदरणीय परमजिन थे। दोनों (नमि और विनमि) के बीच, परमेश्वरको धरणेन्द्रने इस प्रकार देखा, जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमाके बीचमें मन्दराचल हो। तुरन्त तीन प्रदक्षिणा देकर, जिनवरकी वन्दना भक्ति कर ॥१-८॥

घत्ता—धरणेन्द्रने पूछा, "तुमलोग अपने दोनों हाथ ऊपर-कर, हाथमे तलवार लेकर, किसलिए यहाँ बैठे हो" ॥९॥

[१५] यह सुनकर उन्होंने उत्तर दिया, "हम दोनोको देशान्तर भेजा गया था। लेकिन जबतक हम वहाँ पहुँचे और वापस आये, तबतक अपने पुत्रोको धरती देकर, यह हमारी उपेक्षा कर यहाँ स्थित है।" यह सुनकर, हँसते हुए (हँस रहा है, मुखचन्द्र जिसका ऐसे) धरणेन्द्रने उन्हें दो विद्याएँ दीं, और कहा, तुम दोनो विजयार्ध पर्वतकी उत्तर-दक्षिण श्रेणियोंके प्रमुख राजा वन जाओ।" यह सुनकर नमि-विनमि बोले, "दूसरोके द्वारा दी गयी पृथ्वी हमें नही चाहिए, यदि वास्तवमें परम जिन (निर्ग्रन्थ) अपने हाथसे दे तो हम ले ले।" यह सुनकर और उन दोनोकी ओर देखकर धरणेन्द्र, उनके सामने मुनिवरका रूप धारण कर बैठ गया ॥१-८॥

घत्ता—उसने हाथ ऊँचा कर दिया ('हाँ' कर दी) वे दोनो भी विद्या लेकर चल दिये। एक उत्तर श्रेणी और दूसरा दक्षिण

[१६]

तहिँ अवसरेँ उच्चाइय-वाहहोँ। महि-विहरन्तहोँ तिहुअण-णाहहोँ ॥१
वहु-लायण्ण-वण्ण-सपण्णउ। आणइ को वि पसाहेँ वि कण्णउ ॥२॥
चेल्लिउ को वि को वि हय चञ्चल। रयणइँ को वि को वि वर मयगल॥३॥
को वि सुवण्णइँ रुप्पय-थालइँ। को वि धणइँ धण्णइँ असरालइँ ॥४॥
को वि अमुल्लाहरणइँ ढोयइ। ताइँ भडारउ णउ अवलोयइ ॥५॥
सव्वइँ धूलि-समइँ मण्णन्तउ। पट्टणु हत्थिणयरु सपत्तउ ॥६॥
जहिँ सेयम्सँ दसणु पाहिउ। छुडु छुडु णिय-परिवारहोँ साहिउ ॥७
'अज्जु पइट्ठु अणङ्ग-वियारउ। मइँ पाराविउ रिसहु भडारउ ॥८॥
इक्खु-रसहोँ भरियञ्जलि ज जे। घरेँ वसु-हार पवरिसिय तं जे ॥९॥
ताम चउद्दिसु लोए छाइउ। सच्चउ जें जिणु वारेँ पराइउ ॥१०॥

घत्ता

णिग्गउ 'थाहु' भणन्तु स-कलत्तु स-पुत्तु स-परियणु।
भमिउ ति-भामरि दिन्तु मन्दरहोँ जेम तारायणु ॥११॥

[१७]

वन्देँ वि पइसारियउ णिहेलणु। किउ चलणारविन्द-पक्खालणु ॥१॥
अण्णु वि गोमएण समज्जणु। दिण्ण जलेण धार पुणु चन्दणु ॥२॥
पुप्फइँ अक्खयाउ वलि दीवा। धूव-वास जल-वास पडीवा ॥३॥
कर-पक्खालणु देवि कुमारें। ससहर-सण्णिहेण भिङ्गारें ॥४॥
अहिणव-इक्खुरसहोँ भरियञ्जलि। ताव सुरेहिँ मुक्कु कुसुमञ्जलि ॥५॥
साहुकारु देव-दुन्दुहि-सरु। गन्ध-वाउ वसु-वरिसु णिरन्तरु ॥६॥
कञ्चण-रयणहँ कोडिउ वारह पडिय लक्ख वत्तीसट्ठारह ॥७॥
अक्खय-दाणु मणें वि सेयसहोँ। अक्खयतइय णाउ किउ दिवसहोँ ॥८

श्रेणीमें स्थित हो गया ॥९॥

[१६] उस अवसर पर, अपने हाथ ऊँचे किये हुए त्रिभुवननाथ ऋषभ जिन, धरती पर विहार करने लगे। कोई उनके पास, सौन्दर्य और रंगसे युक्त अपनी कन्याको सजाकर लाता है। कोई वस्त्र, कोई चंचल अश्व, कोई रत्न, और कोई मद विह्वल गज। कोई चाँदी की थालियाँ और स्वर्ण। कोई बहुत-सा धन धान्य। कोई अमूल्य आवरण ढोकर लाता है। परन्तु परम आदरणीय उनकी ओर देखते तक नहीं। सबको धूलिके समान मानते हुए वह हस्तिनापुर नगरमे पहुँचे। वहाँ विमोहने स्वप्न देखा (स्मृतिमें देखा) "उसने अपने परिवारसे कहा है कि आज कामदेवका नाश करनेवाले आये है और मैने उन्हें पारणा (आहार) करायी है। मैने इक्षु-रसकी जितनी अंजली भरी घरमें उतनी ही रत्नवृष्टि हुई"। इतनेमें चारो दिशाओंमे लोग छा गये, सचमुच जिनभगवान् उसके द्वार आ चुके थे ॥१–१०॥

घत्ता—'ठहरिये' कहता हुआ वह निकला, और अपनी स्त्री पुत्र और परिजनोके साथ उसने तीन प्रदक्षिणा दी, जैसे तारा-गण मन्दराचलको देते है ॥११॥

[१७] वन्दनाकर, वह उन्हें घरके भीतर ले आया। उनके चरण कमलोंका प्रक्षालन किया। और दूध दहीसे उन्हें धोया, जलकी धारा दी और चन्दन लगाया। पुष्प अक्षत नैवेद्य दीप और फिर धूप जल चढाया। श्रेयांस कुमारने हाथोंका प्रक्षालन कराकर, चन्द्रमाके समान भृंगारसे ताजे गन्नेके रससे उनकी अंजलि भरी ही थी कि देवोने पुष्पांजलि की वर्षा की। साधु-कार, और देव-दुन्दुभियोंका स्वर गूँज उठा, सुगन्धित हवा चलने लगी, रत्नोकी वर्षा होती रही, बारह करोड़ बत्तीस लाख अठारह रत्न बरसे। श्रेयांसके दानको अक्षयदान मानकर

घत्ता

णिसुणिउ भडारउ [illegible] संयमें अच्छइ जाम वि ।
[illegible] रिसह-जिणिन्दु [illegible] सहुँ [illegible] ॥९॥

इय एत्थ पउमचरिए धणञ्जयासिय-सयम्भुएव-कए ।
'जिणवर-णिक्खमणं' इमं बीयं चिय साहियं पव्वं ॥

●

[३. तईओ संधि]

तिहुअण-गुरु स गयउरु मेल्लेंवि खीण-कसाइउ ।
गय-सन्तउ विहरन्तउ पुरिमतालु सम्पाइउ ॥

[१]

दीहर-कालचक्क एण्ण चरिम-महासें पुण्णएण ।
सयडामुह-उज्जाण-वणु हुए भडारउ रिसह-जिणु ॥१॥
रम्मं महा ज च पुण्णाय-णाएहिँ । कुसुमिय-लया-वेल्लि-पल्लव-णिहाएहिँ॥२
कप्पूर-कक्कोल-एला-लवङ्गेहिँ । महु-माहवी-माहुलिङ्गी-विडङ्गेहिँ ॥३॥
मरियल्ल-जीरच्छ-कुंकुम-कुडङ्गेहिँ । णव-तिलय-वउलेहिँ चम्पय-पियङ्गेहिँ॥४
णारङ्ग-णग्गोह-आसत्थ-कन्थेहिँ । वङ्केहि पउमक्ख-रुद्दक्ख-दक्खेहिँ ॥५॥
खज्जूरि-जम्बीरि-घण-फणिस-लिम्बेहिँ । हरियाल-ढउएहिँ बहु-पुत्तजीवेहिँ॥६॥
सत्तच्छयाऽगत्थि-दहिवण्ण-णन्दीहिँ । मन्दार-कुन्दिन्दु-सिन्दूर-सिन्दीहिँ॥७॥
वर-पाडली-पोप्फली-णालिकेरीहिँ । करमन्दि-कन्थारि-करिमर-करीरेहिँ ॥८॥

उस दिनका नाम अक्षय तृतीया पड़ गया।

घत्ता—परम आदरणीय ऋषभ जिनने वह सब खाया, जो राजा श्रेयासने भावपूर्वक दिया। उसने अपने दोनों हाथ सिर पर रखकर ऋषभ जिनेन्द्रकी वन्दना की ।॥९॥

इस प्रकार यहाँ धनजयके आश्रित स्वयंभूदेव द्वारा विरचित 'जिनवर निष्क्रमण' नामक दूसरा पर्व समाप्त हुआ।

तीसरी सन्धि

जिनकी कषाय क्षीण हो चुकी है, ऐसे परमशान्त परमगुरु उस हस्तिनापुर नगरको छोडकर, विहार करते हुए पुरिमताल (उद्यान) पहुँचे।

[१] लम्बे समय चक्र के एक हजार वर्ष बीत जाने पर आदरणीय ऋषभजिन शकटामुख उद्यान-वन मे पहुँचे जो महान् उद्यान, खिली हुई लताओ पल्लवों और वेलो के समूह से युक्त था। पुन्नाग, नाग वृक्षो तथा कर्पूर, कंकोल, एला, लवंग, मधु-माधवी, मातुलिगी, विडंग, मरियल्ल, जीर, उच्छ, कुंकुम, कुडग, नवतिलक, पद्माक्ष, रुद्राक्ष, द्राक्षा, खर्जूर, जंबीरी, घन, पनस, निम्ब, हडताल, ढौक, वहुपुत्रजीविका, सप्तच्छद, अगस्त, दधिवर्ण, नंदी, मंदार, कुन्द, इंदु, सिन्दूर, सिन्दी,

फणियारि-कणवीर-मालूर-तरलेहिँ । सिरिखण्ड-सिरिसामली-साल-सरलेहिँ९
हिन्ताल-तालेहिँ ताली-तमालेहिँ । जम्बू-कयम्बेहिँ कञ्चण-कयम्बेहिँ ॥१०॥
भुज-देवदारुहिँ रिट्ठेहिँ चारेहिँ । कोसम्भ-सज्जेहिँ कोरण्ट-कोञ्जेहिँ ॥११॥
अवद्दय-जूहिहिँ जासवण-मल्लीहिँ । केयइएँ जाएँहि अवरहि मि जाईहिँ ॥१२

घत्ता

तहिँ दिट्ठउ सुमणिट्ठउ वड-पायउ थिर-थोरउ ।
घण-वणियहेँ सुहु-जणियहेँ उप्परि धरिउ व मोरउ ॥१३॥

[२]

तहिँ थाएँवि परमेसरेँण आइ-पुराण-महेसरेँण ।
विसय-सेण्णु सचूरिउ सुय-झाणु आऊरियउ ॥१॥
एक्क-सुक्क-झाणग्गि पलित्तहोँ । दो-गुण-धरहोँ दुविह-तव-तत्तहोँ ॥२॥
तियगारहोँ ति-सल्ल फेडन्तहोँ । चउविह-कम्मिन्धणइँ डहन्तहोँ ॥३॥
पञ्चिन्दिय-दणु-दप्पु हरन्तहोँ । छव्विह-रस-परिचाउ करन्तहोँ ॥४॥
सत्त-महाभय परिसेसन्तहोँ । अट्ठ दुट्ठ मय णिण्णासन्तहोँ ॥५॥
णवविहु बम्भचेरु रक्खन्तहोँ । दसविहु परम-धम्मु पालन्तहोँ ॥६॥
सुइ एयारहंग जाणन्तहोँ । बारह अणुवेक्खउ चिन्तन्तहोँ ॥७॥
तेरसविहु चारित्तु चरन्तहोँ । चउदसविह-गुणथाणु चडन्तहोँ ॥८॥
पण्णारह पमाय वज्जन्तहोँ । सोलहविह कसाय मुच्चन्तहोँ ॥९॥
सत्तारह सजम पालन्तहोँ । अट्ठारह वि दोस णासन्तहोँ ॥१०॥

घत्ता

सुह-झाणहोँ गय-माणहोँ अइपसण्ण-मुहयन्दहोँ ।
धवलुज्जलु तं केवलु णाणुप्पण्णु जिणिन्दहोँ ॥११॥

वर, पाटली, पोप्पली, नारिकेल, करमंदी, कंवारी, करिमर, करीर, कनेर, कर्णवीर, मालूर, तरल, श्रीखण्ड, श्रीसामली, साल, सरल, हिन्ताल, ताल, ताली, तमाल, जम्बू, आम्र, कच्चन, कदम्ब, भूर्ज, देवदारु, रिट्ठ, चार, कौशम्ब, सद्य, कोरण्ट, कोंज, अच्चइय, जुही, जासवण, मल्ली, केतकी और जातकी वृक्षोंसे रमणीय था ॥१-१२॥

घत्ता—वहाँ, स्थिर और स्थूल सुन्दर वटवृक्ष ऐसा दिखाई दिया, मानो, सुख देनेवाली वनरूपी वनिताके ऊपर मुकुट रख दिया गया हो" ॥१३॥

[२] आदिपुराणके महेश्वर परमेश्वरने उस स्थानमें स्थित होकर विषयरूपी सेना नष्ट की और अपना शुक्ल ध्यान पूरा किया। एक शुक्ल ध्यानकी अग्नि प्रज्वलित करते हुए, दो गुणस्थान और दो प्रकारका तप धारण करते हुए, स्त्रीत्वका बन्ध करानेवाली तीन शल्योंका नाश करते हुए, चार घातिया कर्मोंके ईंधनको जलाते हुए, पंचेन्द्रिय रूपी दानवका दर्प हरते हुए, छब्बीस प्रकारके रसका परित्याग करते हुए, सात महामदोंको परिक्षेप करते हुए, आठ दुष्ट मदोंका नाश करते हुए, नौ प्रकारके ब्रह्मचर्यकी रक्षा करते हुए, दस प्रकारके परम धर्मका पालन करते हुए, ग्यारह अंगोंके शास्त्रको जानते हुए, बारह अनुप्रेक्षाओंका चिन्तन करते हुए, तेरह प्रकारके चारित्रका आचरण करते हुए, चौदह प्रकारके गुणस्थानों पर चढ़ते हुए, पन्द्रह प्रमाणोंका वर्णन करते हुए, सोलह कषायोंको छोड़ते हुए, सत्रह प्रकारके संयमका पालन करते हुए और अठारह प्रकारके दोषोंका नाश करते हुए, ॥१-१०॥

घत्ता—शुभध्यान, गतमान और अत्यन्त प्रसन्न मुखचन्द्र ऋषभ जिनको धवल उज्ज्वल केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ॥११॥

[३]

साहिय-णिय-सहाव-चरिउ चउतीसऽइसय-परियरिउ ।
थिउ जिणु णिद्धुय-कम्म-रउ ण ससहरु णिज्जलहरउ ॥१॥

पुण्ण-पवित्तु पाव-णिण्णासणु । अण्णुप्पण्णु धवलु सिंहासणु ॥२॥
किसलय-कुसुम-रिद्धि-सपण्णउ । अण्णेत्तहेँ असोउ उप्पण्णउ ॥३॥
दिणयर-कोडि-पयाव-समुज्जलु । अण्णेत्तहेँ पसण्णु भामण्डलु ॥४॥
अण्णेत्तहेँ ओणामिय-मत्था । चामरिन्द थिय चमर-विहत्था ॥५॥
अण्णेत्तहेँ तिहुअणु धवलन्तउ । थिउ उद्दण्ड-धवल-छत्त-त्तउ ॥६॥
अण्णेत्तहेँ सुर-दुन्दुहि वज्जइ । ण पक्खुहणेँ महोवहि गज्जइ ॥७॥
दिव्व भास अण्णेत्तहेँ भासइ । अण्णेत्तहेँ कम्म-रउ-पणासइ ॥८॥
कुसुम-वासु अण्णेत्तहेँ वासइ ॥९॥
अट्ठ वि पाडिहेर उप्पण्णा । ण थिय पुण्ण-पुञ्ज आसण्णा ॥१०॥

घत्ता

इय-चिन्धइँ जसु सिद्धइँ पर-समाणु जसु अप्पउ ।
गह चक्कहोँ तइलोकहोँ सो जेँ देउ परमप्पउ ॥११॥

[४]

बारह-जोयण पोढिमउ मणहरु सव्वु सुवण्णमउ ।
चउदिसु चउरुज्जाण वणु सुर-णिम्मविउ समोसरणु ॥१॥

तिविहु कणय-पायारु पभाविउ । बारह कोट्ठा सोलह वाविउ ॥२॥
माणव-थम्भ चयारि परिट्ठिय । कञ्चण-तोरण-णिवह समुट्ठिय ॥३॥
चउ गोउरइँ हेम-परियरियइँ । णव णव थूहइँ तहिँ वित्थरियइँ ॥४॥
दह धय पउम-मोर-पञ्चाणण । गरुड मराल-वसह वर-वारण ॥५॥
अण्णु वि वत्थ-चक्क-छत्त-द्धय । फरहरन्त अच्चन्त समुण्णय ॥६॥
एक्केक्कएँ धएँ अहिणव-छायहुँ । सउ अट्ठोत्तरु चित्त-पडायहुँ ॥७॥

[३] जिन्होंने अपना स्वभाव और चारित्र सिद्ध कर लिया है, जो चौतीस अतिशयोसे युक्त है, और जिन्होने कर्म-रूपी रजको धो दिया है, ऐसे परम जिन स्थित हो गये, मानो मेघरहित चन्द्रमा ही हो। और भी उन्हें, पुण्य पवित्र और पापोका नाश करनेवाला धवल सिंहासन उत्पन्न हुआ। दूसरे स्थानपर किसलय और कुसुमोंकी ऋद्धिसे परिपूर्ण अशोक वृक्ष उत्पन्न हुआ, एक दूसरी ओर, करोड़ों सूर्योके प्रतापसे समुज्ज्वल भामण्डल प्रसन्न हुआ। दूसरी ओर, अपना माथा झुकाये और हाथमे चमर लिये हुए चामरेन्द्र देव खड़े थे। एक ओर, तीनो लोकोंको धवल करते हुए दण्डयुक्त तीन छत्र उत्पन्न हुए, एक ओर देवदुन्दुभि वज रही थी, मानो पूर्णिमाके दिन समुद्र गर्जन कर रहा हो, एक ओर दिव्यध्वनि खिर रही थी, दूसरी ओर कर्मरज ध्वस्त हो रही थी, एक ओर पुष्प वृष्टि सुवासित हो रही थी तो दूसरी ओर उन्हे आठ प्रातिहार्य उत्पन्न हुए, मानो पुण्यका समूह ही आकर उपस्थित हो गया हो ॥१-१०॥

घत्ता—ये चिह्न जिसको सिद्ध हो जाते है और जो परको अपने समान समझता है, ग्रहमण्डल और त्रिभुवनमें वही परमात्मा देव है ॥११॥

[४] बारह योजनकी समस्त धरती सुन्दर और स्वर्णमय थी। देवों द्वारा निर्मित समवसरण था, जिसमे चार दिशाओ-मे चार उद्यान-वन थे। तीन स्वर्ण-परकोटे थे। बारह कोठे और सोलह बावडियाँ। चार मानस्तम्भ स्थित थे। स्वर्ण-तोरणोका समूह था। स्वर्णजड़ित चार गोपुर थे। उनमे नौ-नौ धूनियाँ लगी हुई थीं। दस ध्वज थे जिनमे कमल, मयूर, पंचा-नन, गरुड़, हंस, वृषभ, ऐरावत, दुकूल, चक्र और छत्र [illegible] थे। प्रत्येक ध्वजमे अभिनव कान्तिवाली एक सौ आठ

त समसरणु परिट्ठिउ जावहिं । अमर-राउ संचलिउ तावहिं ॥८॥
चलियइँ आसणाइँ अहमिन्दहुँ । विसहरिन्द-अमरिन्द-णरिन्दहुँ ॥९॥

घत्ता

जिणसंपइ जाणावइ सुरवइ सुरवर-विन्दहुँ ।
'किं अच्छहु आगच्छहु जाहु भडारउ वन्दहुँ' ॥१०॥

[५]

त णिसुणेंवि पउरामरेंहिं कडय मउड-कुण्डल धरेंहिं ।
मणि-रयण-प्पह रञ्जियइँ णिय-णिय जाणइँ सज्जियइँ ॥१॥
केहि मि मेस महिस विस कुंजर । केहि मि तच्छ रिच्छ मिग सम्वर ॥२
केहि मि करह वराह तुरङ्गम । केहि मि हस मऊर विहङ्गम ॥३॥
केहि मि सस सारङ्ग पवङ्गम । केहि मि रहवर णरवर जङ्गम ॥४॥
केहि मि वग्घ सिंघ गय गण्डा । केहि मि गरुड कोञ्च कारण्डा ॥५॥
केहि मि सुसुआर मच्छोहर । एम पराइय सयऊ वि सुरवर ॥६॥
दस पयार वर भवण-णिवासिय । विन्तर अट्ठ पञ्च जोइसिय ॥७॥
वहुविह कप्पामर कोक्कन्तउ । ईसाणिन्दु वि आउ तुरन्तउ ॥८॥
विब्भम-हाव-भाव-सखोडिहिं । परिमिउ चउवीसऽच्छर-कोडिहिं ॥९॥

घत्ता

पेक्खेंवि वलु किय-कलयलु चउविह-देव-णिकायहों ।
धाइय णर कट्ठिय-धर सुरवर-वल्लह-रायहों ॥१०॥

[६]

ताव-गलिय-दाणोज्झरउ कण्ण-चमर-हय-महुयरउ ।
जिग वन्दण-गवणमणउ परिवड्ढिउ अइरावणउ ॥१॥
जोयण-लक्ख-पमाणु परिट्ठिउ । वीयउ मन्दरु णाइँ समुट्ठिउ ॥२॥
उप्परि पेक्खणाइँ पारद्धइँ । चामीयर-तोरणइँ णिवद्धइँ ॥३॥
उब्भिय धय धुवन्तइँ चिन्धइँ । कियइँ वणइँ फल-फुल्ल-समिद्धइँ ॥४॥

पताकाएँ थी। जैसे ही वह समवसरण बनकर तैयार हुआ वैसे ही अमरराजने कूच किया। अह्मिन्द्रों, नागेन्द्र, नरेन्द्र और देवेन्द्रोके आसन चलायमान हो गये ॥१-९॥

घत्ता—इन्द्र देवोंको जिनवरकी सम्पदा बताता हुआ कहता है कि "वैठे क्या हो, आओ, आदरणीय जिनवर की वन्दनाके लिए चले" ॥१०॥

[५] कटक, मुकुट और कुण्डल धारण करनेवाले प्रमुख देवोने जब यह सुना तो वे मणियो और रत्नोकी प्रभासे रंजित अपने-अपने यान सजाने लगे। कोई मेष, महिष, वृषभ और हाथीपर। कोई तक्षक, रीछ, मृग और शम्बरपर। कोई करभ, वराह और अश्वपर। कोई हंस, मयूर और पक्षीपर। कोई शशक, श्रेष्ठ हिरण और वानरपर। कोई रथवर, नरवरोंपर। कोई बाघ,गज और गेंडेपर। कोई गरुड़, क्रौच और कारण्डव-पर। कोई शुंशुमार और मत्स्यपर। इस प्रकार सभी सुरवर वहाँ पहुँचे। दस प्रकारके भवनवासी देव, आठ प्रकारके व्यन्तर, पाँच प्रकारके ज्योतिषी देव। अनेक प्रकारके कल्पवासी देव बुला लिये गये, ईशानेन्द्र भी तत्काल आ गया, विभ्रम हाव-भावसे क्षोभ उत्पन्न करनेवाली चौबीस करोड़ अप्सराओसे घिरा हुआ ॥१-९॥

घत्ता—चार निकायोंकी कोलाहल करती हुई सेनाको देखकर, इन्द्रराजके दण्ड धारण करनेवाले आदमी दौड़े ॥१०॥

[६] इतनेमें, जिससे मदजलका निर्झर बह रहा है, जो कानसे भ्रमरोको उड़ा रहा है और जिसका मन जिनभगवान् की वन्दनाके लिए व्याकुल था, ऐसा ऐरावत महागज आगे बढा। वह एक लाख योजन प्रमाण था, जैसे दूसरा मन्दराचल ही परिस्थित हो, ऊपर प्रदर्शन प्रारम्भ हो गये। स्वर्णनिर्मित तोरण बाँध दिये गये। ध्वज उतार दिये गये, चिह्न हिलने लगे।

पोक्खरिणिउ णव पङ्कय सरवर । दीहिय वावि तलाय लयाहर ॥५॥
तहिँ अइरावणेँ गलगज्जन्तएँ । दीहर-कर-सिक्कार मुअन्तएँ ॥६॥
विज्जिज्जन्तु चमर-परिवाडिहिँ । सत्तावीसहिँ अच्छर-कोडिहिँ ॥७॥
चडिउ पुरन्दरु मणेँ परिओसेँ । जय-मङ्गलु-दुन्दुहि-णिग्घोसेँ ॥८॥
वन्दिण-फग्गुणवयहि पढन्तेँहिँ । कड्ढियवालेँहिँ ढोउ ण दिन्तेँहिँ ॥९॥
इन्दहोँ तणिय रिद्धि अयलोॅएँवि । के वि विसूरिय विमुहा होएँवि ॥१०॥

घत्ता

'मल-धरणइँ तव-चरणइँ क दिवु भरहेँ करेसहुँ ।
जे दुल्लहु जण-वल्लहु इन्दत्तणु पावेसहुँ ॥११॥

[७]

ताम सुरासुर-वाहणइँ फलइँ व सग्ग-दुमहोँ तणइँ ।
जिणवर-पुण्ण-वाय-हयइँ हेट्ठामुहइँ समागयइँ ॥१॥
अवरोप्पर चूरन्त महाइय । गिरि-मणुमोत्तर-सिहरु पराइय ॥२॥
णिय-करेँ खञ्जेँवि भणइ पुरन्दरु । उच्चासण-आरुहणु असुन्दरु ॥३॥
जाइँ विउव्वण-सत्तिएँ हूयइँ । तुरिउ ताइँ आमेल्लहु रूअइँ ॥४॥
थिय देवासुर इन्दाएसे । सव्व पडीवा तेण जि वेसे ॥५॥
णाणा-जाण-विमाणेँहिँ तेत्तहेँ । ढुक्कु समोसरणेँ जिणु जेत्तहेँ ॥६॥
सयल वि दूरोणाविय-मत्था । सयल वि कर-मउलञ्जलि-हत्था ॥७॥
सयल वि जयजयकारु करन्ता । सयल वि थोत्त-सयाइँ पढन्ता ॥८॥
सयल वि अप्पाणउ दरिसन्ता । णामु गोत्तु णिय-णिलउ कहन्ता ॥९॥

घत्ता

तहिँ वेलएँ सुर-मेलएँ तेय-पिण्डु जिणु छज्जइ ।
गयणङ्गणेँ तारायणेँ छण-मयलञ्छणु णज्जइ ॥१०॥

वन, फल-फूलोसे समृद्ध थे। उसमें पुष्करणियाँ, नव पंकज, सरोवर, जलाशय, वावडी, तालाव और लतागृह थे। अपनी लम्बी सूँड़से जलकण फेंकता हुआ ऐरावत गरजने लगा। जिसे, सत्ताईस करोड अप्सराएँ कतारमे खड़े होकर चमरोंसे हवा कर रही थी, ऐसा इन्द्र मनमें प्रसन्न होकर, जय और दुन्दुभिके निर्घोपके साथ हाथीपर चढा। वन्दीजन और वामन स्तुतिपाठ पढ रहे थे। दण्डधारी जन प्रणाम कर रहे थे। इन्द्रकी उस ऋद्धिको देखकर, कितने ही लोग विमुख हो दुःख मनाने लगे ॥१-१०॥

घत्ता— मलको हरनेवाला तपश्चरण करके किस दिन हम मरेंगे, और दुर्लभ जनप्रिय इन्द्रत्व प्राप्त करेंगे ॥११॥

[७] इतनेमे, सुरों और असुरोंके विमान नीचे आ गये, मानो वे स्वर्गरूपी वृक्षके फल थे, जो जिनवरके पुण्यकी हवासे आहत होकर नीचे आ गये। महनीय वे एक दूसरेको धक्का देते हुए मानुपोत्तर पर्वतके शिखरपर जा पहुँचे। तव अपना हाथ उठाकर इन्द्र कहता है, "ऊँचे आसनपर बैठना ठीक नही, जिन्हे विक्रियाशक्तिसे जो-जो रूप प्राप्त हैं उन्हें तुरन्त छोड दो।" इन्द्रके आदेशसे, जो देव पहले जिस रूपमें थे वे वापस उसी रूपमें स्थित हो गये। वे नाना विमानो और यानोंसे वहाँ पहुँचे जहाँ समवसरणमें परम जिन थे। सबने दूरसे ही उन्हे माथा झुकाकर प्रणाम किया, सबके हाथोकी अंजलियाँ बँधी हुई थी। सभी जयजयकार कर रहे थे। सभी सैकडो स्तोत्र पढ रहे थे। सभी अपना परिचय दे रहे थे, अपना नाम-गोत्र और निकाय वताते हुए ॥१-९॥

घत्ता—देवताओंके उस जमघटके अवसरपर तेजपिण्ड जिन ऐसे शोभित थे, जैसे आकाशके प्रांगणमे तारागणोके वीच पूर्णचन्द्र हो। ॥१०॥

[८]

सुर-करि-खन्धुत्तिण्णएँण वहु-रोमञ्चुब्भिण्णएँण ।
सप्परिवारें सुन्दरेण थुइ आढत्त पुरन्दरेंण ॥१॥
'जय अजरामर-पुर-परमेसर । जय जिण आइ पुराण महेसर ॥२॥
जय दय-धम्म-रयण-रयणायर । जय अण्णाण-तमोह-दिवायर ॥३॥
जय ससि भव्व-कुमुय-पडिवोहण । जय कल्लाण-णाण गुण-रोहण ॥४॥
जय सुरगुरु तइलोक्क-पियामह । जय-संसार महाडइ-हुयवह ॥५॥
जय वम्मह-णिम्महण महाउस । जय कलि-कोह-हुआसणें पाउस ॥६॥
जय कसायघण-पलयसमीरण । जय माणइरि-पुरन्दरपहरण ॥७॥
जय इन्दिय-गयउलें पञ्चाणण । जय तिहुअण-सिरि-रामालिङ्गण ॥८॥
जय कम्मारि-मडप्फर-भञ्जण । जय णिक्कल णिरवेक्ख णिरञ्जण ॥९

घत्ता

तुह सासणु दुह-णासणु एवहिँ उण्णइ चडियउ ।
जें होन्तेंण पहवन्तेंण जगु संसारें ण पडियउ ॥१०॥

[९]

तं वलु तं देवागमणु सो जिणवरु तं समसरणु ।
पेक्खेंवि उववणें अवयरिउ जाउ महन्तउ अच्छरिउ ॥१॥
पट्टणें पुरिमतालें जो राणउ । रिसहसेणु णामेण पहाणउ ॥२ ॥
सो देवागमु णिएँवि पहासिउ । 'को सयडामुह-वणें आवासिउ ॥३॥
कासु एउ एवड्डु पहुत्तणु । जेण विमाणहिं णवइ णहङ्गणु' ॥४॥
तं णिसुणेवि केण अप्फालिउ । एम देव मइँ सव्वु णिहालिउ ॥५॥
भरहेसरहों वप्पु जो सुव्वइ । महि-वल्लहु भणेवि जो थुव्वइ ॥६॥
केवल-णाणु तासु उप्पण्णउ । अट्ठ-महागुणड्ढि-संपण्णउ' ॥७॥
तं णिसुणेवि मरट्टें मेल्लिउ । स-वलु स-बन्धुवग्गु संचल्लिउ ॥८॥
तं समसरणु पइट्ठु तुरन्तउ । 'जय देवाहिदेव' पभणन्तउ ॥९॥

[८] रोमांचसे अत्यन्त पुलकित शरीर इन्द्र ऐरावतके कन्धेसे उतर पड़ा और उसने अपने परिवारके साथ स्तुति प्रारम्भ की "हे, अजर-अमर लोकके स्वामी, आपकी जय हो, आदिपुराणके परमेश्वर जिन, आपकी जय हो। दयारूपी रत्नके लिए रत्नाकरके समान, आपकी जय हो। अज्ञानतमके समूहके लिए दिवाकरके समान, आपकी जय हो, भव्यजनरूपी कुमुदोंको प्रतिबोधित करनेवाले आपकी जय हो, कल्याण गुण-स्थान और ज्ञानपर आरोहण करनेवाले आपकी जय हो, हे बृहस्पति, त्रिलोकपितामह, आपकी जय हो, संसाररूपी अटवी के लिए दावानलकी तरह आपकी जय हो, कामदेवका मथन करनेवाले महायु, आपकी जय हो, कलिकी क्रोधरूपी ज्वाला शान्त करनेके लिए पावसकी तरह, आपकी जय हो, कषायरूपी मेघोंके लिए प्रलयपवनकी तरह, आपकी जय हो, मानरूपी पर्वतके लिए इन्द्रवज्रके समान, आपकी जय हो, इन्द्रियरूपी गजसमूहके लिए सिंहके समान, आपकी जय हो, त्रिभुवन-शोभारूपी रामाका आलिंगन करनेवाले, आपकी जय हो, कर्म-रूपी शत्रुओंका अहंकार चूर-चूर करनेवाले आपकी जय हो, निष्फल अपेक्षाहीन और निरजन, आपकी जय हो ॥१–९॥

घत्ता—तुम्हारा शासन दुःखका नाश करनेवाला है, इस समय यह उन्नतिके शिखरपर है, इसके प्रभावशील होनेपर जग भवचक्रमें नहीं पड़ेगा ॥१०॥

[९] वह सेवा, वह देवागमन, वह जिनवर, वह समव-सरण, (इन सबको) उपवनमें अवतरित होते हुए देखकर, महान् आश्चर्य हुआ, ऋषभसेन नामक राजाको, जो पुरिम-ताल पुरका प्रधान राणा था। उस देवागमको देखकर उसने कहा, "शकटामुख, उद्यानमें कौन ठहरा है ? इतना बड़ा प्रभुत्व किसका है, कि जिससे विमानोंके कारण आकाश झुक गया

घत्ता

तेए तेँण पइसन्तेँण सुरह मि विब्भमु लाइउ ।
'ए वेसेँण उद्देसेँण कि मयरद्धउ आइउ' ॥१०॥

[१०]

पेक्खेँवि त देवागमणु सो जिणु तं जि समोसरणु ।
भव-भय-सएँहिँ समल्लइउ रिसहमेणु पहु पव्वइउ ॥१॥
तेण समाणु परम गम्भेसर । दिक्खइँ ठिय चउरासी णरवर ॥२॥
चउ-कल्लाण-विहूइ-सणाहहोँ । गणहर ते जि हूय जग-णाहहोँ ॥३॥
अवर वि जे जे भावे लइया । चउरासी सहास पव्वइया ॥४॥
एयारह-गुणठाण-समिद्धहुँ । तिण्णि लक्ख सावयहुँ पसिद्धहुँ ॥५॥
अज्जिय-गणहोँ सङ्ख के बुज्झिय । देव वि दुक्किय-कम्म-मलुज्झिय ॥६॥
थिय चउपासे परम-जिणिन्दहोँ । ण तारा-गह पुण्णिम-चन्दहोँ ॥७॥
वइरइँ परिसेसवि थिय वणयर । महिस तुरङ्गम केसरि कुञ्जर ॥८॥

घत्ता

अहि णउल वि थिय सयल वि एक्कहिँ उवसम-भावेँण ।
किय-सेवहोँ पुरएवहोँ केवल-णाण-पहावेँण ॥९॥

[११]

ताम विणिग्गय दिव्व झुणि कहइ तिलोअहोँ परम-मुणि ।
वन्ध-विमोक्ख-कालयलइँ धम्माहम्म-महाफलइँ ॥१॥
पुग्गल-जीवाजीव-पउत्तिउ । आसव-सवर-णिज्जर-गुत्तिउ ॥२॥
सजम-णियम-लेस-नय-माणइँ । तव-तीलोयवास-गुणठाणइँ ॥३॥
सम्मद्दसण-णाण-चरित्तइँ । सग्ग-मोक्ख-सन्सार-णिमित्तइँ ॥४॥

है।" यह सुनकर किसीने कहा, "हे देव, मैने सब कुछ देख लिया है, जो भरतेश्वरके पिता सुने जाते है, और जिनकी महीवल्लभ कहकर स्तुति की जाती है, उन्हे केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है, वह आठ महान् गुणो और ऋद्धियोसे सम्पूर्ण है।" यह सुनकर, और अभिमानसे मुक्त होकर राजा ऋषभसेन सेना और बन्धुवर्गके साथ चला। वह शीघ्र उस समवसरण में, देवाधिदेवकी जय बोलता हुआ पहुँच गया ॥१-९॥

घत्ता—तेजके साथ प्रवेश करते हुए उस राजाने देवोंको भी विभ्रममे डाल दिया, कि इस वेशमें कामदेव किस संकल्पसे यहाँ आया है ? ॥१०॥

[१०] वह देवागमन, वह जिन और वह समवसरण देखकर ससारके सैकडों भयोंसे आकुल ऋषभसेन राजाने संन्यास ग्रहण कर लिया। उसके साथ, अत्यन्त गर्वीले चौरासी राजाओंने दीक्षा ले ली, जो चार कल्याणोंकी विभूतिसे युक्त जगके स्वामी परम जिनके गणधर बने। और भी अपने-अपने भावके अनुसार चौरासी हजार नरवर प्रव्रजित हुए, जो ग्यारह गुणस्थानो से समृद्ध थे, तीन लाख प्रसिद्ध श्रावक, आर्यिकागणकी संख्या कौन जान सकता है, पापकर्मके मलसे रहित देवता भी, परम जिनेन्द्रके चारों ओर इस प्रकार स्थित थे, जैसे पूर्णचन्द्रके आसपास तारा और नक्षत्र हो। वनचर भी अपना वैर भूलकर स्थित थे, महिष, तुरंग, सिंह और गज ॥१-८॥

घत्ता—साँप और नेवला सभी उपशम भाव धारण कर एक जगह स्थित हो गये, कृतसेव पुरदेव ऋषभ जिनके केवलज्ञानके प्रभावसे ॥९॥

[११] इतनेमें दिव्यध्वनि निकलनी शुरू हुई। त्रिलोकके महामुनि कहते है, "बन्धन-मोक्ष, काल-बल, धर्म-अधर्मका

णव पयत्थ सज्झाय-ज्झाणइँ । सुर-णर-उच्छेहाउ-पमाणइँ ॥५॥
सायर-पल्ल-पुव्व-कोडीयउ । लोयविहाय-कम्मपयडीयउ ॥६॥
कालइँ खेत्त-भाव-परदव्वइँ । वारह अङ्गइँ चउदह पुव्वइँ ॥७॥
णरय-तिरय-मणुअत्त-सुरत्तइँ । कुलयर-हलहर-चक्कहरत्तइँ ॥८॥
तित्थयरत्तणाइँ इन्दत्तइँ । सिद्धत्तणइ मि कहइ समत्तइँ ॥९॥

घत्ता

किं वहुवेँण आलावेँण तिहुअणेँ सयलेँ गविट्ठउ ।
णउ एक्कु वि तिल-मेत्तु वि त जि जिणेण ण दिट्ठउ ॥१०॥

[१२]

धम्मक्खाणु सयलु सुणेँवि चञ्चलु जीविउ मणेँ मुणेँवि ।
भव-भव-भय-सय-गय-मणहोँ उवसमु जाउ सव्व-जणहोँ ॥१॥
केण वि पञ्चाणुव्वय लइया । लोउ करेवि के वि पव्वइया ॥२॥
केहि मि गुणवयाइँ अणुसरियइँ । केहि मि सिक्खावयइँ पधरियइँ ॥३॥
भउणाणत्थमियइँ अवरेक्कहिँ । अण्णेँहि किय णिवित्ति अण्णेक्कहिँ ॥४
जो ज मग्गइ त तहोँ देइ । हत्थु भडारउ णउ खञ्चेइ ॥५॥
अमर वि गय सम्मत्तु लएप्पिणु । णिय णिय-लिय-वाहणहिँ चडेप्पिणु ॥
जिण-धवलहोँ वि धवलु सिंहासणु । पण्णारस-विसट्ट-थेरासणु ॥७॥
उब्भिय सेय छत्त सिय-चामरु । दिव्व भास भामण्डलु सेहरु ॥८॥

घत्ता

तिहुअण-पहु हय-वम्महु केवल-किरण-दिवायरु ।
तहोँ थाणहोँ उज्जाणहोँ गउ तं गङ्गा-सायरु ॥९॥

महाफल, पुद्गल जीव और अजीवकी प्रवृत्तियाँ, आश्रव संवर-निर्जरा और गुप्तियाँ, संयम-नियम-लेश्या-व्रत-दान-तप-शील-उपवास, गुणस्थान-सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चरित्र, स्वर्ग-मोक्ष और संसारके कारण, नौ प्रशस्त सत् ध्यान, देवों और मनुष्योंकी मृत्यु और आयुका प्रभाव। सागर पल्य पूर्व और कोड़ाकोड़ी। लोकविभाग कर्मप्रकृतियाँ। काल-क्षेत्र-भाव-परद्रव्य। बारह अंग और चौदह पूर्व, नरक, तिर्यंच, मनुष्यत्व और देवत्व, कुलकर, बलदेव और चक्रवर्ती। तीर्थंकरत्व और इन्द्रत्व और सिद्धत्वका वह संक्षेपसे कथन करते है॥१-९॥

घत्ता—बहुत कहनेसे क्या ? उन्होंने त्रिभुवनकी खोज कर ली थी, तिलके बराबर भी ऐसा नही था कि जिसे जिन भगवान्ने न देखा हो॥१०॥

[१२] समस्त धर्माख्यान सुनकर और जीवनको मनमें चंचल समझकर, भवभवके सैकड़ों भयोंसे भीतमन सबको उपशमभाव प्राप्त हुआ। किसीने पाँच अणुव्रत लिये, कोई केश लोंच करके प्रव्रजित हो गया, किन्हींने गुणव्रतोंका अनुसरण किया, किसीने शिक्षाव्रत लिये, दूसरोंने मौन और अनर्थदण्ड व्रत ग्रहण लिया, दूसरोंने दूसरोंसे निवृत्ति ले ली, जो-जो माँगता, वह उसे वह-वह देते। आदरणीय जिनने अपना हाथ नही खींचा। देव भी सम्यक्त्व ग्रहण करके चले गये अपने-अपने निकायोंके लिए विमानोंपर आरूढ होकर। जिन धवल का सिंहासन भी धवल था। पन्द्रह कमलोंपर उनका स्थिर आसन था। सफेद तीन छत्र लगे हुए थे, सफेद चामर, दिव्य-ध्वनि और भामण्डल॥१-८॥

घत्ता—कामका नाश करनेवाले, त्रिभुवनके स्वामी और केवलज्ञान दिवाकर परम जिन उस उद्यानसे गंगासागरकी ओर गये॥९॥

[१३]

तहिँ अवसरेँ भरहेसरहोँ　　सयल-पुहइ-परमेसरहोँ ।
पर-चक्केहि मि णविय कम　　जाय रिद्धि सुर-रिद्धि-सम ॥१॥
मालूर-पवर-पीवर-थणहँ ।　　छण्णवइ सहास वरङ्गणहँ ॥२॥
तहोँ दह-पञ्चासउ णन्दणहुँ ।　　चउरासी लक्खइँ सन्दणहुँ ॥३॥
चउरासी लक्खइँ गयवरहुँ ।　　अट्ठारह कोडिउ हयवरहुँ ॥४॥
कोडीउ तिण्णि वर-धेणुवहुँ ।　　बत्तीस सहास णराहिवहुँ ॥५॥
बत्तीस सहासइँ मण्डलहुँ ।　　कम्मन्तेँ कोडि पवहइ हलहुँ ॥६॥
णव णिहियउ रयणइँ सत्त-सत्त ।　　छक्खण्ड इ मेइणि एक्क-छत्त ॥७॥

घत्ता

जिह वप्पेँण　　साहप्पेँण　　लइउ णाणु त केवलु ।
तिह पुत्तेँण　　जुज्झन्तेँण　　स इँ भु य-वलेँण महीयलु ॥८॥

●

४. चउत्थो संधि

सट्ठिहुँ वरिस-सहासहिँ पुण्ण-जयासहिँ भरहु अउज्झ पईसरइ ।
णव-णिसियर-धारउ कलह-पियारउ चक्क-रयणु ण पईसरइ ॥१॥

[१]

पइसरइ ण पट्टणेँ चक्क-रयणु ।　　जिह अबुहब्भन्तरेँ सुकइ-वयणु ॥१॥
जिह बम्भयारि-मुहेँ काम-सत्थु ।　　जिह गोट्ठङ्गणेँ मणि-रयण-वत्थु ॥२॥
जिह वारि-णिवन्धणेँ हत्थि-जूहु ।　　जिह दुज्जण-जणेँ सज्जण-समूहु ॥३॥

[१३] उसी अवसरपर समस्त पृथ्वीके महेश्वर भरतेश्वर-को देवोंकी ऋद्धिके समान ऋद्धि प्राप्त हुई, जिसकी परम्परा शत्रुराजाओ द्वारा भी नमित थी। बेलफलके समान प्रवर और स्थूल स्तनवाली उसकी छियानवे हजार रानियाँ थी। उनके पाँच हजार पुत्र थे। चौरासी लाख रथ, चौरासी लाख गजवर, अठारह करोड अश्ववर, बत्तीस हजार राजा, बत्तीस हजार मण्डल, खेतीके लिए एक करोड हल, नौ निधियाँ, चौदह रत्न, छह खण्डोकी एकछत्र धरती ॥१-७॥

घत्ता—जिस प्रकार पिताने गौरवके साथ केवलज्ञान प्राप्त किया उसी प्रकार पुत्रने जूझते हुए अपने हाथोसे धरती प्राप्त की ॥८॥

चौथी सन्धि

जयकी आशासे पूर्व साठ हजार वर्षोंके बाद भरत अयोध्यामे प्रवेश करते है। परन्तु नया और पैनी धारवाला कलहप्रिय उसका चक्ररत्न प्रवेश नही करता।

[१] चक्ररत्न नगरमे प्रवेश नही करता, जिस प्रकार अज्ञानीमे सुकविकी वाणी, जिस प्रकार ब्रह्मचारीके मुखसे कामशास्त्र, जिस प्रकार गोठप्रागणमें मणि रत्न और वस्त्र, जिस प्रकार वारके खूँटेमे गजसमूह, जिस प्रकार दुर्जनोके बीच सज्जनसमूह, जिस प्रकार कृपणके घर भिक्षुकसमूह, जिस प्रकार शुक्ल पक्षमे कृष्ण पक्षका चन्द्र, जिस प्रकार

जिह किविण-णिहेलणेँ पणइ-विन्दु । जिह वहुल-पक्खेँ खय-दिवस-चन्दु ॥
जिह कामिणि-जणु माणुसेँ अदव्वेँ । जिह सम्मदंसणु दूर-भव्वेँ ॥५॥
जिह महुअरि-कुलु दुग्गन्धेँ रण्णेँ । जिह गुरु-गरहिउ अण्णाण-कण्णेँ ॥६॥
जिह परम-सोक्खु ससार-धम्मेँ । जिह जीव-दया-वरु पाव-कम्मेँ ॥७॥
पढम-विहत्तिहेँ तप्पुरिसु जेम । ण पईसइ उज्झहेँ चक्कु तेम ॥८॥

घत्ता

त पेक्खेँवि थक्कन्तउ विग्घु करन्तउ णरवइ वेहाविद्धउ ।
'कहहु मन्ति-सामन्तहोँ जस-जय-मन्तहोँ किमहु को वि अणिद्धउ' ॥९॥

[२]

त णिसुणेँवि मन्तिहिँ वुत्तु एम । 'ज चिन्तहि त त सिद्धु देव ॥१॥
छक्खण्ड वसुन्धरि णव णिहाण । चउदह-विसेहिँ रयणेँहिँ समाण ॥२॥
णवणवइ सहास महागराहुँ । वत्तीस सहास देसन्तराहुँ ॥३॥
अवराइ मि सिद्धइँ जाइँ जाइँ । को लक्खेँवि सक्कइ ताइँ ताइँ ॥४॥
पर एक्कु ण सिज्झइ साहिमाणु । सय-पञ्च-सवाय-धणु-प्पमाणु ॥५॥
तित्थङ्कर-णन्दणु तुह कणिट्ठु । अट्ठाणवइहिँ भाइहिँ वरिट्ठु ॥६॥
पोअण-परमेसरु चरम-देहु । अखलिय-मरट्टु जयलच्छि-गेहु ॥७॥
दुव्वार-वइरि-वीरन्त-कालु । णामेण वाहुवलि वल-विसालु ॥८॥

घत्ता

सीहु जेम पक्खरियउ खन्तिएँ धरियउ जइ सो कह वि वियट्टइ ।
तो सहुँ खन्धावारेँ एक्क-पहारेँ पइ मि देव दलवट्टइ ॥९॥

[३]

त वयणु सुणेँवि दट्ठाहरेण । भरहेण भरह-परमेसरेण ॥१॥
पट्ठविय महन्ता तुरिय तासु । 'वुच्चइ करेँ केर णराहिवासु ॥२॥
जइ णउ पडिवण्णु कयावि एम । ता तेम करहु महु मिडइ जेम' ॥३॥

निर्धन मनुष्यमे कामिनी-जन, जिस प्रकार दूरभव्यमें सम्यग्दर्शन, जिस प्रकार दुर्गन्धित वनमें मधुकरी-कुल, जिस प्रकार अज्ञानीके कानमें गुरुकी निन्दा, जिस प्रकार संसारधर्म-में परम सुख, जिस प्रकार पापकर्ममें उत्तम जीवदया, जिस प्रकार प्रथमा विभक्तिमें तत्पुरुप समास प्रवेश नही करती, उसी प्रकार अयोध्यामे चक्ररत्न प्रवेश नही करता ॥१-८॥

घत्ता—विघ्न करते हुए उस स्थिर चक्रको देखकर नरपति भरत क्रोधसे भर उठा और बोला, "यश और जयका रहस्य जाननेवाले हे मन्त्रियो, कहो क्या कोई मेरे लिए असिद्ध (अजेय) बचा है? ॥९॥

[२] यह सुनकर मन्त्रियोंने इस प्रकार कहा, "देव, जो तुम सोचते हो वह तो सिद्ध हो चुका है। छह खण्ड धरती, नौ निधियाँ, चौदह प्रकारके रत्न, निन्यानवे हजार खदानें और बत्तीस हजार देशान्तर। और भी जो-जो चीजे सिद्ध हुई है, उनको कौन दिखा सकता है? परन्तु एक स्वाभिमानी सिद्ध नही हुआ है, वह है साढ़े पाँच सौ धनुष प्रमाण, तीर्थकर-का पुत्र, तुम्हारा छोटा भाई, परन्तु अट्ठानवे भाइयोंमें बड़ा पोदनपुरका राजा, चरम शरीरी, अस्खलितमान और जय-लक्ष्मीका घर, दुर्वार वैरियोंके लिए अन्तकाल, बलमें विशाल, और नामसे बाहुबलि ॥१-८॥

घत्ता—सिंहकी तरह संनद्ध, पर शान्ति धारण करनेवाला, वह यदि कभी आ जाये, तो एक ही प्रहारमें सेनासहित, हे देव, तुम्हें चूर चूर कर दे" ॥९॥

[३] यह सुनकर, भरतके परमेश्वर भरतने ओठ काटते हुए, शीघ्र उसके पास मन्त्री भेजे कि उससे कहो कि "वह राजाकी आज्ञा माने। यदि किसी प्रकार वह यह स्वीकार नही करता तो ऐसा करना जिससे वह हमसे लड़ जाये।" सिखाये

सिक्खविय महन्ता गय तुरन्त । णिवसिद्धे पोयणु-णयरु पत्त ॥४॥
पुज्जेंवि पुच्छिय 'आगमणु काइँ' । तेहि मि कहियइँ वयणाइँ ताइँ ॥५॥
'को तुहुँ को भरहु ण भेउ को वि । पुहवीसरु दीसइ गम्पि तो वि ॥६॥
जिह सायर अट्ठाणवइ इयर । जीवन्ति करें वि तहों तणिय केर ॥७
तिह तुहुँ मि मडप्फरु परिहरेंवि । जिउ रायहों केरी केर लेवि' ॥८॥

घत्ता

तं णिसुणेंवि भय-भीसे वाहुवलीसे भरह-दूअ णिब्भच्छिय ।
'एक्क केर वप्पिक्की पिहिमि गुरुक्की अवर केर ण पडिच्छिय ॥९॥

[४]

पवसन्तें परम-जिणेसरेण । जं किं पि विहज्जेवि दिण्णु तेण ॥१॥
तं अम्हहुँ सासणु सुह-णिहाणु । किउ विप्पिउ णउ केण वि समाणु ॥
सो पिहिमिहें हउँ पोयणहों सामि । णउ देमि ण लेमि ण पासु जामि ॥३
दिट्ठेण तेण फिर कवणु कज्जु । किं तासु पसाएँ करमि रज्जु ॥४॥
किं तहों वलेण हउं दुण्णिवारु । कि तहों वलेण महु पुरिसयारु ॥५॥
किं तहों वलेण पाइक्क-लोउ । कि तहों वलेण सम्पय-विहोउ' ॥६॥
जं गज्जिउ वाहुवलीसरेण । पोयण-पुरवर-परमेसरेण ॥७॥
तं कोवाणल-पज्जलन्तएहिं । णिब्भच्छिउ भरह-महन्तएहिं ॥८॥

घत्ता

'जइ वि तुज्झु इमु मण्डलु वहु-चिन्तिय-फलु आसि समप्पिउ वप्पें ।
गामु सीमु खलु खेत्तु वि सरिसव-मेत्तु वि तो वि ण तहिं विणु कप्पें' ॥९॥

[५]

तं वयणु सुणेवि पलम्व-वाहु । णं चन्दाइच्चहुँ कुविउ राहु ॥१॥
'कहों तणउ रज्जु कहों तणउ भरहु । जं जाणहु तं महु मिलेंवि करहु ॥२॥

गये मन्त्री तुरन्त गये। और आधे निमिषमे पोदनपुरमें पहुँच गये। आदर करके वाहुवलिने पूछा—"किसलिए आगमन किया।" उन्होंने भी वे वचन सुना दिये, "तुम कौन, और भरत कौन ? दोनोंमें कोई भेद नहीं है तो भी जाकर उससे तुम्हें मिलना चाहिए, जिस प्रकार दूसरे अट्ठानवे भाई है, जो उसकी सेवा कर जीते है, उसी प्रकार तुम अभिमान छोड़कर राजाकी सेवा अंगीकार कर जिओ" ॥१–८॥

घत्ता—भयभीषण वाहुबलिने यह सुनकर भरतके दूतोंको अपमानित करते हुए कहा, "एक बापकी आज्ञा, और एक उनकी धरती, दूसरी आज्ञा स्वीकार नही की जा सकती ? ॥९॥

[४] "प्रवास करते हुए परम जिनेश्वरने जो कुछ भी विभाजन करके दिया है, वही हमारा सुखनिधान शासन है। मैने किसीके साथ, कुछ भी बुरा नही किया, मै उसी धरतीका स्वामी हूँ। न मै लेता हूँ न देता हूँ और न उसके पास जाता हूँ। उससे भेट करनेसे कौन काम होगा ? क्या मै उसकी कृपा-से राज्य करता हूँ, क्या उसकी ताकतसे मै दुर्निवार हूँ ? क्या उसकी ताकतसे मेरा पुरुपार्थ है ? क्या उसकी ताकतसे मेरी प्रजा है ? क्या उसकी ताकतसे मै सम्पत्तिका भोग करता हूँ ?" इस प्रकार जब पोदनपुरनरेश बाहुबलि गरजा, तो भरतके मन्त्रियोंका क्रोध भड़क उठा, उन्होंने उसका तिरस्कार किया ॥१–८॥

घत्ता—"यद्यपि यह भूमिमण्डल तुम्हें पिताके द्वारा दिया गया है, परन्तु इसका एकमात्र फल बहुचिन्ता है, विना कर दिये, ग्राम, सीमा, खल और क्षेत्र तो क्या ? सरसोंके बराबर धरती भी तुम्हारी नही है" ॥९॥

[५] यह वचन सुनकर प्रलम्बवाहु वाहुवलि क्रुद्ध हो उठा मानो सूर्य और चन्द्र पर राहु ही कुपित हुआ हो। (वह बोला),

सो एक्कें चक्कें वहइ गव्वु । किर वसिकिउ मइँ महिवीढु सव्वु ॥३॥
णउ जाणइ होसइ केम कज्जु । कहों पासिउ णीसावण्णु रज्जु ॥४॥
परियलइ जेण तहों तणउ दप्पु । त तेहउ कल्लएँ देमि कप्पु ॥५॥
वावल्ल-मल्ल-कणिणय-करालु । मुग्गर-भुसुण्ढि-पट्टिस-विसालु' ॥६॥
त सुणेंवि महन्ता गय तुरन्त । णिविसद्धें भरहहों पासु पत्त ॥७॥
जं जेम चविउ त कहिउ तेम । 'पइँ तिण-सरिसो वि ण गणइ देव ॥८

घत्ता

ण करइ केर तुहारी रिउखय-कारी णिब्भउ माणें महाइउ ।
मेइणि-रवणु समुद्दें वि रण-पिढु मण्डें वि जुज्झ-सज्जु थिउ दाइउ ॥९॥

[६]

त णिसुणेंवि झत्ति पलित्तु राउ । ण जलणु जाल-माला-सहाउ ॥१॥
देवाविउ लहु सण्णाह-तूरु । सण्णज्झइ स-रहसु सुहड-सूरु ॥२॥
आऊरिउ वलु चउरङ्गु ताम । अट्ठारह अक्खोहणिउ जाम ॥३॥
परिचिन्तिय णव णिहि सचलन्ति । जे सन्दण-वेसें परिभमन्ति ॥४॥
महाकालु कालु माणवउ पण्डु । पउमक्खु सङ्खु पिङ्गलु पचण्डु ॥५॥
णइसप्पु रयणु णव णिहिउ एय । ण थिय वहु-भायहिँ पुण्ण-भेय ॥६॥
णव-जोयणाइँ तुङ्गत्तणेण । वारह सप्पासङ्गत्तणेण ॥७॥
अट्ठोयर गम्भीरत्तणेण । सहुँ जक्ख-सहासें रक्खणेण ॥८॥
कों वि वत्थइँ कों वि भोयणइँ देइ । कों वि रयणइँ कों वि पहरणइँ णेइ ॥९॥
कों वि हय गय कों वि ओसहिउ धरइ । विण्णाणाहरणहुँ को वि हरइ ॥१०॥

'किसका राज्य ? किसका भरत ? जैसा समझो वैसा तुम सब मिलकर मेरा कर लो, वह एक चक्रसे ही यह घमण्ड करता है कि मैने समूची धरती (महीपीठ) अधीन कर ली है। नहीं जानता वह कि इससे क्या काम होगा ? समस्त राज्य, किसके पास रहा ? मै उसे कल ऐसा कर दूँगा कि जिससे उसका सारा दर्प चूर-चूर हो जायेगा ? वह क्या वावल्ल मल्ल और कर्णिकसे भयंकर तथा मुद्गर भुसुण्ढि और पट्टिशसे विशाल होगा।" यह सुनकर मन्त्री शीघ्र गये और आधे पलमे भरतके पास पहुँचे। जैसा उसने कहा था वैसा उन्होंने सब बता दिया कि हे देव, वह तुम्हें तिनकेके बराबर भी नही समझता ॥१-८॥

घत्ता—शत्रुओंका नाश करनेवाली वह तुम्हारी आज्ञा नही मानता। महनीय वह मानमें परिपूर्ण है। मेदिनीरमण वह सौतेला भाई बलपूर्वक रणपीठ रचकर युद्धके लिए तैयार बैठा है ॥९॥

[६] यह सुनकर राजा तुरत आगबबूला हो गया, मानो ज्वालामालासे सहित आग ही हो ? उसने शीघ्र प्रस्थानकी भेरी बजवा दी, और सुभटशूर वह शीघ्र वेगसे तैयार होने लगा, इतनेमे चतुरंग सेना उमड पडी, तब तक अठारह अक्षौहिणी सेना भी आ गयी। चिन्तन करते ही नवनिधियाँ चलने लगी, जो स्यन्दनके रूपमें परिभ्रमण कर रही थी। महाकाल, काल, माणवक, पण्ड, पद्माक्ष, शंख, पिंगल, प्रचण्ड, नैसर्प ये नौ रत्न और निधियाँ भी ये ही थी, मानो पुण्यका रहस्य ही नौ भागोंमे विभक्त होकर स्थित हो गया हो। ऊँचाई में नौ योजन, लम्बाई-चौड़ाईमें बारह योजन, गम्भीरतामें आठ। जिसके एक हजार यक्ष रक्षक है ? कोई वस्त्र, कोई भोजन देती है, कोई रत्न देती है और कोई प्रहरण (अस्त्र) लाती है। कोई अश्व और गज, कोई औषधि लाकर रखती है।

घत्ता

चम्म-चक्क-सेणावइ हय-गय-गहवइ छत्त-दण्ड-णेमित्तिय ।
कागणि मणि-त्थवइ थिय खग्ग-पुरोहिय ते वि चउद्दह चिन्तिय ॥११॥

[७]

गउ भरहु पयाणउ देवि जाम । हेरिऍहिँ कणिट्ठहों कहिउ ताम ॥१॥
'सहसा णीसरु सण्णहेँवि देव । दीसइ पडिवक्खु समुद्दु जेम' ॥२॥
त सुणेँ वि स-रोसु पलम्ब-वाहु । सण्णज्झइ पोयण-णयर-णाहु ॥३॥
पडु पडह समाहय दिण्ण सङ्ख । धय दण्ड छत्त उब्भिय असङ्ख ॥४॥
किउ कलयलु लइयइँ पहरणाइँ । कर-पहर-पयट्टइँ वाहणाइँ ॥५॥
णीसरिउ सत्त सङ्खोहणीउ । एक्कएँ सेण्णएँ अक्खोहणीउ ॥६॥
भरहेसर-वाहुवली वि ते वि । आसण्णइँ ढुक्कइँ वलइँ वे वि ॥७॥
। सवडमुह धय धयवडहुँ देवि ॥८॥
हय हयहुँ महा-गय गयवराहुँ । भड भडहुँ महा-रह रहवराहुँ ॥९॥

घत्ता

देवासुर-वल-सरिसइँ वड्ढिय-हरिसइँ कञ्चुय-कवय-विसट्टइँ ।
एक्कमेक्क कोक्कन्तइँ रणेँ हक्कन्तइँ उभय-वलइँ - अब्भिट्टइँ ॥१०॥

[८]

अब्भिट्टइँ वड्ढिय-कलयलाइँ । भरहेसर-वाहुवली-वलाइँ ॥१॥
वाहिय-रह-चोइय-वारणाइँ । अणवरयामेल्लिय-पहरणाइँ ॥२॥
लुअ-जुण्ण-जोत्त-खण्डिय-धुराइँ । दारिय-णियम्ब-कप्पिय-उराइँ ॥३॥
णिव्वट्टिय-भुअ-पाडिय-सिराइँ । धुय-खन्ध-कवन्ध-पणच्चिराइँ ॥४॥
गय-दन्त-छोह-भिण्णुब्भडाइँ । उच्चाइय-पडिपेल्लिय-भडाइँ ॥५॥
पडिहय-विणिवाइय-गयवडाइँ । अच्छोडिय-मोडिय-धयवडाइँ ॥६॥

कोई विज्ञान और आभरण लाती है ॥१-१०॥

घत्ता—चर्म, चक्र, सेनापति, हय, गज, गृहपति, छत्र, दण्ड, नैमित्तिक, कागनी, मणि, स्थपति, खड्ग और पुरोहित इन चौदह रत्नोंका भी उसने चिन्तन किया ॥११॥

[७] जैसे ही कूच करके भरत गया, वैसे ही सन्देश-वाहकोंने छोटे भाईसे कहा, "हे देव, शीघ्र तैयार होकर निकलिए। प्रतिपक्ष समुद्रकी तरह दिखाई दे रहा है।" यह सुनकर पोदनपुरनरेश बाहुबलि क्रोधके साथ तैयार होने लगा। पटपटह बजा दिये गये। शंख फूँक दिये गये, असंख्य ध्वज दण्ड और छत्र उठा लिये गये, कोलाहल होने लगा, शस्त्र ले लिये गये, सेनाएँ हाथोंसे प्रहार करने लगीं, क्षुब्ध कर देने-वाली सात सेनाएँ निकलीं, एकमे एक अक्षौहिणी सेना थी। भरतेश्वर और बाहुबलि, दोनो ही, निकट पहुँचे, दोनो सेनाएँ भी। आमने-सामने ध्वजपटोंपर ध्वज देकर। घोड़ोंसे घोड़े, महागजोंसे महागज, योद्धासे योद्धा, महारथोंसे महारथ ॥१-९॥

घत्ता—बढ रहा है हर्ष जिनमे, कंचुक और कवचसे विशिष्ट ऐसी दोनों सेनाएँ, युद्धमे हाँक देती हुई, एक-दूसरे को ललकारती हुई, देवासुर सेनाओकी तरह एक-दूसरेसे भिड़ गयीं ॥१०॥

[८] भरतेश्वर और बाहुबलिकी सेनाएँ भिड गयीं, कोलाहल होने लगा, रथ हाँक दिये गये। हाथी प्रेरित किये जाने लगे। लगातार अस्त्र छोड़े जाने लगे। जीर्ण जोते (रथोंकी) फट गयी, धुरे टुकडे-टुकड़े हो गये, नितम्ब कट गये, उर टुकडे-टुकड़े हो गये, भुजाएँ कट गयीं, सिर गिरने लगे, कन्धे काँपने लगे, कबन्ध नाचने लगे। गजदन्तोंके प्रहारसे योद्धा छिन्न-भिन्न हो गये, भटोंमे धक्का-मुक्की होने लगी। प्रतिपक्षके प्रहारसे गजघटा धरतीपर गिरने लगी। ध्वजपट गिरने

मुसुमूरिय-चूरिय- हवराइँ ।　　दलवट्टिय-लोट्टिय-रहयवराइँ ॥७॥
रुहिरोल्लइँ सरेँहि विहावियाइँ ।　ण वे वि कुसुम्भेँहि रावियाइँ ॥८॥

घत्ता

पेक्खेँवि वलइँ घुलन्तइँ महिहि पडन्तइँ मन्तिहि धरिय म भण्डहोँ ।
किं वहिएण वराएं　भड-सघाएँ　दिट्ठि-जुज्झु वरि मण्डहोँ ॥९॥

[९]

पहिलउ जुज्झेवउ दिट्ठि-जुज्झु ।　जल-जुज्झु पडीवउ मल्ल-जुज्झु ॥१॥
जो तिण्णि मि जुज्झइँ जिणइ अज्जु । तहोँ णिहि तहोँ रयणइँ तासु रज्जु॥२॥
त णिसुणेँ वि दुक्खु णिवारियाइँ ।　साहणइँ वे वि ओसारियाइँ ॥३॥
लहु दिट्ठि-जुज्झु पारद्धु तेहिँ ।　जिण-णन्द-सुणन्दा-णन्दणेहिँ ॥४॥
अवलोइउ भरहे पढमु भाइ ।　कइलासेँ कञ्चण-सइलु णाइँ ॥५॥
असिय-सियायम्व विहाइ दिट्ठि ।　ण कुवलय-कमल-रविन्द-विट्ठि ॥६॥
पुणु जोइउ वाहुवलीसरेण ।　सरेँ कुमुय-सण्डु ण दिणयरेण ॥७॥
अवरामुह-हेट्ठामुह-मुहाइँ ।　ण वर-वहु-वयण-सरोरुहाइँ ॥८॥

घत्ता

उवरिल्लियएँ विसालएँ भिउडि-करालएँ हेट्ठिम दिट्ठि परज्जिय ।
ण णव-जोव्वणइत्ती　चञ्चल-चित्ती　कुलवहु　इज्जएँ　तज्जिय ॥९॥

[१०]

ज जिणेँ वि ण सक्किउ दिट्ठि-जुज्झु । पारद्धु खणद्धे सलिल-जुज्झु ॥१॥
जलेँ पइट्ठ पिहिमि-पोयण-णरिन्द ।　ण माणस-सरवरेँ सुर-गइन्द ॥२॥
एत्थन्तरेँ महि-परमेसरेण ।　आडोहेँ वि सलिलु समच्छरेण ॥३॥
पमुक्कु अलक्कु सहोयरासु ।　ण वेल समुद्दें महिहरासु ॥४॥
छुडु वाहुवलिहेँ वच्छयलु पत्त ।　णिब्भच्छिय असइ व पुणु णियत्त ॥५॥

और मुड़ने लगे। महारथ चकनाचूर किये जाने लगे, हयवर चूर होकर लोटने लगे। तीरोंसे छिन्न-भिन्न और रक्तरंजित, दोनों सेनाएँ मानो कुसुम्भीरंगसे रंग गयीं ॥१–८॥

घत्ता—सेनाओंको नष्ट होते और धरतीपर गिरते हुए देखकर मन्त्रियोंने रोका कि मत लड़ो, बेचारे योद्धाओंके वधसे क्या? अच्छा है यदि दृष्टि-युद्ध करो ॥९॥

[९] पहले दृष्टियुद्ध किया जाये, फिर जलयुद्ध और मल्ल-युद्ध। जो तीनों युद्ध आज जीत लेता है, तो उसकी निधियाँ, उसके रत्न और उसीका राज्य। यह सुनकर, दोनों सेनाएँ बड़ी कठिनाईसे हटायी गयीं। उन्होंने शीघ्र ही दृष्टियुद्ध प्रारम्भ किया, (जिननन्दा और सुनन्दाके पुत्रोंने)। पहले भरतने अपने भाईको देखा, मानो कैलासने सुमेरु पर्वतको देखा हो। उसकी काली, सफेद और लाल दृष्टि ऐसी लग रही थी मानो कुवलय कमल और अरविन्दोंकी वर्षा हो। उसके बाद बाहु-बलिने देखा, मानो सरोवरमें कुमुद-समूहको दिनकरने देखा हो। उनके ऊपर-नीचे मुख ऐसे जान पड़ते थे मानो उत्तम वधुओंके मुखकमल हों ॥१-८॥

घत्ता—भौंहोंसे भयंकर ऊपरकी विशाल दृष्टिसे नीचेकी दृष्टि पराजित हो गयी, मानो नवयौवनवाली चंचल चित्त कुलवधू सासके द्वारा डाँट दी गयी हो ॥९॥

[१०] जब भरत दृष्टि-युद्ध न जीत सका, तब क्षणार्धमें जलयुद्ध प्रारम्भ कर दिया गया। पृथ्वीका राजा भरत और पोदनपुरका राजा बाहुबलि दोनों जलमें घुसे, मानो मानस सरोवरमें ऐरावत गज घुसे हों। इसी बीच, धरतीके स्वामीने ईर्ष्याके साथ पानीको हिलाया और भाई पर धारा छोड़ी, मानो महागिरि पर्वत शिखर पर छोड़ी गयी हो। वह धारा शीघ्र ही बाहुबलिके वक्षस्थल पर पहुँची, और जननी की की

परथिय(?) उरेँ तोय तुसार-धवल । ण णहेँ तारा-णिउरुम्व वहल ॥६॥
पुणु पच्छएँ वाहुवलीसरेण । आमेल्लिय सलिल-झलक्क तेण ॥७॥
उद्धाइय चल-णिम्मल-तरङ्ग । णं संचारिम आयास गङ्ग ॥८॥

घत्ता

ओहट्टिउ भरहेसरु थिउ मुह-कायरु गरुअ-रहल्लएँ लइयउ ।
सुरयारुहण-वियक्कएँ विरह-झलक्कएँ मग्गु व दुप्पव्वइयउ ॥९॥

[११]

ज जिणेँवि ण सक्किउ सलिल-जुज्झु । पारद्धु पडीवउ मल्ल-जुज्झु ॥१॥
आवील-विकच्छउ वल-महल्ल । अक्खाडएँ णाइँ पइट्ठ मल्ल ॥२॥
ओवग्गिय पुणु किय वाहु-सद्द ण भिडिय सुवन्त-तियन्त सद्द ॥३॥
वहु-वन्धहिं दुक्कर-कत्तरीहि । विण्णाणहिँ करणहिं भामरीहिँ ॥४॥
म्वहुँ भरहे सुइरु करेवि वामु । पुणु पच्छएँ दरिसिउ णियय-थामु ॥५॥
उच्चाइउ उभय-करेँहिँ णरिन्दु । सक्केण व जम्मणेँ जिण-वरिन्दु ॥६॥
एत्थन्तरेँ वाहुवलीसरासु । आमेल्लिउ देवेँहि कुसुम-वासु ॥७॥
किउ कलयलु साहणेँ विजउ घुट्ठु । णरणाहु विलक्खीहूउ सट्ठु ॥८॥

घत्ता

चक्क-रयणु परिचिन्तउ उप्परि घत्तिउ चरम-देहु तेँ वञ्चिउ ।
पसरिय-कर-णिउरुम्वेँ दिणयर-विम्वेँ णाइँ मेरु परिअञ्चिउ ॥९॥

[१२]

ज मुक्कु चक्कु चक्केसरेण । त चिन्तिउ वाहुवलीसरेण ॥१॥
'किं पहु अप्फालमि महिहिँ अज्जु । ण ण धिगत्थु परिहरमि रज्जु ॥२॥
रज्जहोँ कारणेँ किज्जइ अजुत्तु । भाएवउ भाएरु वप्पु पुत्तु ॥३॥

तरह अपमानित होकर शीघ्र ही लौट आयी। उसके वक्षस्थल पर जलके तुषार धवल कण ऐसे मालूम हो रहे थे मानो आकाशमें प्रचुर तारा समूह हो। फिर बादमे बाहुबलीश्वरने जलकी धारा छोड़ी, मानो चंचल निर्मल तरंग ही हो, मानो आकाशगंगा ही संचारित कर दी गयी हो ॥१-८॥

घत्ता—भरतेश्वर हट गया। भारी लहरसे आक्रान्त वह अपना कायरमुख लेकर रह गया, उसी प्रकार जिस प्रकार, कामकी पीड़ासे व्यथित, विरहकी ज्वालासे भग्न खोटा संन्यासी ॥९॥

[११] जब भरत जलयुद्ध नही जीत सका तो उसने शीघ्र ही मल्लयुद्ध प्रारम्भ किया। कसकर लंगोट पहने हुए दोनों ही बलमे महान् थे, अखाड़े में जैसे मल्लोंने प्रवेश किया हो, ताल ठोकते हुए उन्होंने आक्रमण किया, मानो सुवन्त तिङन्त शब्द आपसमे भिड गये हों। बाहुबलिने वहुबन्ध, ढुक्कुर, कर्तरी, विज्ञान करण और भामरीके द्वारा, भरतके साथ खूब देर तक व्यायाम कर, फिर बादमें अपनी शक्तिका प्रदर्शन किया। दोनो हाथोंसे नरेन्द्रको उठा लिया जैसे इन्द्रने जन्मके समय जिन-वरको उठा लिया था। इसके अनन्तर देवोंने बाहुबलीश्वरके ऊपर कुसुम वृष्टि की। सेनामे कोलाहल होने लगा। विजयकी घोषणा कर दी गयी। नरनाथ अत्यन्त व्याकुल हो उठा ॥१-८॥

घत्ता—भरतने रत्नका चिन्तन किया और उसे बाहुबलिके ऊपर छोडा, चरम शरीरी वह, उससे बच गये, (ऐसा लग रहा था), जैसे अपनी प्रसरित किरण समूहसे युक्त दिनकरने मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा की हो ॥९॥

[१२] जब चक्रेश्वरने चक्र छोड़ा, तब बाहुबलीश्वरने सोचा कि मै प्रभुको आज धरती पर गिरा दूँ, नही नही, मुझे धिक्कार है, मै राज्य छोड देता हूँ। राज्यके लिए अनुचित किया जाता

कि आए साहमि परम-मोक्खु । जहिँ लब्भइ अचलु अणन्तु सोक्खु ॥४॥
परिचिन्तेँवि सुइरु मणेण एम । पुणु थविउ णराहिउ डिम्भु जेम ॥५॥
'महु तणिय पिहिमि तहुँ भुञ्जेँ माय । सोमप्पहु केर करेइ राय' ॥६॥
सुणिसल्लु करेँवि जिणु गुरु भणेवि । थिउ पञ्च मुट्ठि सिरेँ लोउ देवि ॥७॥
ओलम्बिय-करयलु एक्कु वरिसु । अविओलु अचलुगिरि-मेरु सरिसु ॥८॥

घत्ता

वेढिउ सुट्ठु विसालेँहिँ वेल्ली-जालेँहिँ अहि-विच्छिय-वम्मीयहिँ ।
खणु वि ण मुक्कु भडारउ मयण-वियारउ ण ससारहोँ भीयहिँ ॥९॥

[१२]

एत्थन्तरेँ केवल-णाण-वाहु । कइलासेँ परिट्ठिउ रिसहणाहु ॥१॥
तइलोक्क-पियामहु जग-जणेरु । समसरणु वि स-गणु स-पाडिहेरु ॥२॥
थोवेँहिँ दिवसेँहिँ भरहेसरो वि । तहोँ वन्दण-हत्तिएँ आउ सो वि ॥३॥
थोत्तुग्गीरिय गुरु-पुरउ भाइ । परलोय-मूले इहलोउ णाइँ ॥४॥
वन्देप्पिणु दसविह-धम्म-पालु । पुणु पुच्छिउ तिहुवण-सामिसालु ॥५॥
'वाहुवलि भडारा सुह-णिहाणु । के कज्जें अज्जु ण होइ णाणु' ॥६॥
त णिसुणेँवि परम-जिणेसरेण । वज्जरिउ दिव्व-भासन्तरेण ॥७॥
'अज्ज वि ईसीसि कसाउ तासु । ज खेत्तेँ तुहारएँ किउ णिवासु ॥८॥

घत्ता

जइ भरहहोँ जि समप्पिउ तो कि चप्पिउ मइँ चलणेँहिँ महि-मण्डलु ।
एण कसाएं लइयउ सो पव्वइयउ तेण ण पावइ केवलु' ॥९॥

है, भाई, बाप और पुत्र को मार दिया जाता है। इससे क्या, मैं मोक्षकी साधना करूँगा? जहाँ अनन्त और अचल सुख प्राप्त होता है। बहुत देर तक मनमें यह विचार करनेके बाद बाहुबलिने नराधिपको बच्चेकी भाँति रख दिया और कहा, "हे भाई, तुम मेरी धरतीका भी उपभोग करो, हे राजन्! सोमप्रभ भी आपकी सेवा करेगा।" इस प्रकार उन्हें अच्छी तरह निःशल्य कर, जिनगुरु कहकर, पाँच मुष्ठियोंसे केश लोंच करके वह स्थित हो गये, एक वर्ष तक अवलम्बित कर, सुमेरु पर्वतकी तरह अकम्पित और अविचल ॥१-८॥

घत्ता—बड़ी-बड़ी लताओं, साँपों, बिच्छुओं और वामियोंने उन्हें अच्छी तरह घेर लिया, मानो संसारकी भीतियोंने ही, कामको नष्ट करनेवाले, परम आदरणीय बाहुबलिको एक क्षणके लिए न छोड़ा हो ॥९॥

[१३] इसके अनन्तर केवलज्ञान है बाहु जिनका, ऐसे ऋषभनाथ कैलास पर्वत पर प्रतिष्ठित हुए। त्रिलोकके पितामह और जगत्पिता का, समवशरण, गण और प्रातिहार्योंके साथ। थोड़े ही दिनोंके बाद, भरतेश्वर भी उनकी वन्दनाभक्ति करनेके लिए आया। गुरुके सम्मुख स्तोत्र पढता हुआ ऐसा शोभित हो रहा था, मानो परलोकके मूलमें इहलोक हो। दस प्रकारके धर्मका पालन करनेवाले उनकी वन्दना कर, फिर उसने त्रिभुवन स्वामि-श्रेष्ठसे पूछा, "हे आदरणीय, शुभनिधान बाहुबलिको किस कारण आज भी केवलज्ञान नहीं हो रहा है?" यह, सुनकर परमेश्वरने दिव्यभाषामें कहा—"आज भी ईषत् ईर्ष्या कषाय उनके मनमें है कि जो उन्होंने तुम्हारी धरती पर निवास कर रखा है ॥१-८॥

घत्ता—जब मैंने अपनी धरती भरतको समर्पित कर दी, तब मैंने अपने पैरोंसे उसकी धरती क्यों चाप रखी है? उनमें यह

[१४]

तं वयणु सुणेँवि गउ भरहु तेत्थु । वाहुवलि-भडारउ अचलु जेत्थु ॥१॥
सव्वङ्गु पडिउ चलणेहिँ तासु । 'तउ तणिय पिहिमि हउँ तुम्ह दासु'॥२
विण्णवइ खमावइ एम जाम । चउ घाइ-कम्म गय खयहोँ ताम ॥३॥
उप्पण्णउ केवल-णाणु विमलु । थिउ देहु खणद्धे दुद्ध-धवलु ॥४॥
पउमासणु मूसणु सेय-चमरु । भा-मण्डलु एक्कु जेँ छत्तु पवरु ॥५॥
अत्थक्कएँ आइउ सुर-णिकाउ । तित्थयर-पुत्तु केवलिउ जाउ ॥६॥
थोवहिँ दिवसहिँ तिहुअण-जणारि। णासिय घाइय-कम्म वि चयारि ॥७॥
अट्ठविह-कम्म-वन्धण-विमुक्कु । सिद्धउ सिद्धालउ णवर ढुक्कु ॥८॥

घत्ता

रिसहु वि गउ णिव्वाणहोँ साणय-थाणहोँ भरहु वि णिव्वुइ पत्तउ ।
अक्ककित्ति थिउ उज्झहेँ दणु दुग्गेज्झहेँ रज्जु स इ भु ञ्जन्तउ ॥९॥

●

५. पञ्चमो संधि

अक्खइ गोत्तम-सामि तिहुअण-लद्ध-पससहुँ ।
सुणि सेणिय उप्पत्ति रक्खस-वाणर-वंसहुँ ॥१॥

कपाय है, इसीलिए प्रव्रज्या लेनेके वाद भी वे केवलज्ञान नहीं पा सके ॥९॥

[१४] यह वचन सुनकर भरत वहाँ गया जहाँ आदरणीय वाहुवलि अचल स्थित थे। उनके चरणोंमे सर्वांग गिरकर, उन्होने कहा, "धरती तुम्हारी है, मै तुम्हारा दास हूँ।" जबतक भरत यह निवेदन करता है और क्षमा माँगता है तवतक वाहुवलिके चार घातिया कर्म नष्ट हो गये। उन्हें विमल केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। आधे क्षणमें ही उनकी देह दुग्धधवल हो गयी। पद्मासन अलंकार श्वेतचमर एक भामण्डल और प्रवर छत्र उत्पन्न हो गये। सहसा देवसमूह वहाँ आ गया क्योंकि तीर्थकरके पुत्र वाहुवलि केवली हुए थे। थोड़े ही दिनोमे त्रिभुवनके शत्रुने चार घातिया कर्मका नाश कर दिया। और इस प्रकार, आठ कर्मोंके वन्धनसे विमुक्त होकर सिद्ध हो गये और सिद्धालयमें जा पहुँचे ॥१-८॥

घत्ता—ऋषभनाथ भी शाश्वत स्थान निर्वाण चले गये। भरतेश्वरको भी वैराग्य हो गया। दनुके लिए दुर्ग्राह्य अयोध्या नगरीमें अर्ककीर्ति प्रतिष्ठित हुआ। यह स्वयं राज्यका भोग करने लगा ॥९॥

●

पाँचवीं सन्धि

गौतम स्वामी कहते है, "श्रेणिक, तीनों लोकोंसे प्रशंसा पानेवाले राक्षस एवं वानर वंशकी उत्पत्ति सुनो।"

[१]

तहिँ जेँ अउज्झहिँ वहवेँ कालेँ । उच्छण्णे णरवर-तरु-जालेँ ॥१॥
विमलेक्खुक्क-वसेँ उप्पण्णउ । धरणीधरु सुरूव-सपण्णउ ॥२॥
तासु पुत्तु णामे तियसञ्जउ । पुणु जियसत्तु रणङ्गणेँ दुज्जउ ॥३॥
तासु विजय महएवि मणोहर । परिणिय थिर-मालूर-पओहर ॥४॥
ताहेँ गब्भेँ भव-भय-खय-गारउ । उप्पज्जइ सुउ अजिय-भडारउ ॥५॥
रिसहु जेम वसुहार-णिमित्तउ । रिसहु जेम मेरुहिँ अहिसित्तउ ॥६॥
रिसहु जेम थिउ वालक्कीलएँ । रिसहु जेम परिणाविउ लीलएँ ॥७॥
रिसहु जेम रज्जु इ भुञ्जन्तेँ । एक्क-दिवसेँ णन्दणवणु जन्ते ॥८॥

घत्ता

पवणुद्धुउ सरु दिट्ठ पप्फुल्लिय-सयवत्तउ ।
णाइँ विलासिणि-लोउ उब्भिय-करु णच्चन्तउ ॥९॥

[२]

सो जि महासरु तहिँ जेँ वणालएँ । दिट्ठ जिणाहिवेण वेत्तालएँ ॥१॥
मउलिय-दलु विच्छाय-सरोरुहु । ण दुज्जण-जणु ओहुल्लिय-मुहु ॥२॥
त णिएवि गउ परम-विसायहोँ । 'लइ एह जि गइ जीवहोँ जायहोँ ॥३॥
जो जीवन्तु दिट्ठु पुव्वण्हएँ । सो अङ्गार पुञ्जु अवरण्हएँ ॥४॥
जो णरवर-लक्खेँहि पणविज्जइ । सो पहु मुउउ अवारे णिज्जइ ॥५॥
जिह रुञ्झाएँ एउ पङ्कय-वणु । तिह जराएँ घाइज्जइ जोव्वणु ॥६॥
जीविउ जमेण सरीरु हुआसे । सत्तइँ काले रिद्धि विणासे' ॥७॥
चिन्तइ एम भडारउ जावँहिं । लोयन्तियहिँ विवोहिउ तावँहिं ॥८॥

[१] बहुत समय बीत जानेपर अयोध्यामें राजाओंकी वंश-परम्पराका वृक्ष उच्छिन्न हो गया। तब विमल इक्ष्वाकुवंशमें सौन्दर्यसे सम्पूर्ण धरणीधर नामका राजा हुआ। उसके दो पुत्र हुए, एक नामसे त्रिरथंजय और दूसरा जितशत्रु, जो युद्धप्रांगणमे अजेय थे। उसकी विजया नामकी सुन्दर स्थूल बेलफलके समान स्तनोवाली पत्नी थी। उसके गर्भसे भवभयका नाश करनेवाले आदरणीय अजित जिन उत्पन्न होंगे। ऋषभनाथकी तरह जो रत्नवृष्टिके निमित्त थे। उन्हींके समान सुमेरु पर्वतपर अभिषिक्त हुए। ऋषभकी भाँति बालक्रीड़ामे स्थित थे, ऋषभके समान ही उन्होने लीलापूर्वक विवाह किया। ऋषभके समान उन्होने स्वयं राज्यका उपभोग किया, एक दिन नन्दनवनके लिए जाते हुए ॥८॥

घत्ता—हवासे चंचल एक सरोवर देखा, जिसमें कमल खिले हुए थे, वह ऐसा लग रहा था मानो विलासिनी-लोक ही हाथ ऊँचे किये हुए नाच रहा हो ॥९॥

[२] उसी सरोवरको उसी वनालयमे, जब जिनाधिपने सायं-काल देखा तो उसके कमल कुम्हला चुके थे, उसके दल मुकुलित हो गये थे, जैसे अपना मुख नीचा किये हुए दुर्जनजन ही हो। यह देखकर उन्हें बहुत दुःख हुआ—"लो लो प्रत्येक जन्म लेनेवाले जीवकी यही दशा होगी। पूर्वाह्नमे जो जीवित दीख पड़ता है, वह अपराह्नमें राखका ढेर रह जाता है, जिस नरश्रेष्ठको लाखों लोग प्रणाम करते है, वही प्रभु मरनेपर स्मशानमें ले जाया जाता है। जिस प्रकार सन्ध्यासे यह कमलवन, उसी प्रकार जरासे यौवन नष्ट होता है। यमसे जीव, आगसे शरीर, समयसे शक्ति, विनाशसे ऋद्धि नाशको प्राप्त होती है। जब आदरणीय अजित जिन यह सोच ही रहे थे कि लौकान्तिक देवोंने आकर उन्हे प्रतिबोधित किया ॥८॥

घत्ता

विद्धी काम-सरेहिँ एक्कु वि पउ ण पयट्टइ ।
णाइँ सयम्वर-माल दिट्ठि णिवहोँ आवट्टइ ॥९॥

[५]

केण वि कहिउ गम्पि सहसक्खहोँ । 'कोऊहलु किं एउ ण लक्खहोँ ॥१॥
एक्कु अणङ्ग-समाणु जुवाणउ । णउ जाणहुँ कि पिहिमिहेँ राणउ ॥२॥
त पेक्खेँवि सस तुम्हहँ केरी । काम-गहेण हूअ विवरेरी' ॥३॥
त णिसुणेवि राउ रोमञ्चिउ । अब्भन्तरेँ आणन्दु पणच्चिउ ॥४॥
'णेमित्तियहिँ आसि ज वुत्तउ । एँउ त सयरागमणु णिरुत्तउ' ॥५॥
मणेँ परिचिन्तेँवि पप्फुल्लाणणु । गउ तुरन्तु तहिँ दससयलोयणु ॥६॥
तँ चउसट्ठि-पुरिसलक्खण-धरु । जाणेँवि सयरु सयल-चक्केसरु ॥७॥
सिरेँ करयल करेवि जोक्कारिउ । दिण्ण कण्ण पुणु पुरेँ पइसारिउ ॥८॥

घत्ता

लीलएँ भवणु पइट्ठु विज्जाहर-परिवेढिउ ।
तूसेँवि दिण्णउ तेण उत्तर-दाहिण-सेढिउ ॥९॥

[६]

तिलकेस लएप्पिणु गउ सयरु । पइसरिउ अउज्झाउरि-णयरु ॥१॥
सहसक्खु वि जणण-वइरु सरेँवि । विज्जाहर-साहणु मेलवेँवि ॥२॥
गउ उप्परि तासु पुण्णघणहोँ । जें जीविउ हरिउ सुलोयणहोँ ॥३॥
रहणेउरचक्कवाल-णयरेँ । विणिवाइउ पुण्णमेहु समरेँ ॥४॥
जो तोयदवाहणु तासु सुउ । सो रणमुहेँ कह वि कह वि ण मुउ ॥५
गउ हस-विमाणेँ तुट्ठ-मणु । जहिँ अजिय-जिणिन्द-समोसरणु ॥६॥
मम्भीस दिण्ण अमरेसरेँण । स-वइर-वित्तन्तु कहिउ णरेँण ॥७॥

सरोवरपर पहुँचती है कि इतनेमें उसे पृथ्वीश्वर सगर दिखाई देता है ॥१–८॥

घत्ता—वह कामबाणोंसे आहत हो जाती है और एक भी पग नही चल पाती। वह राजाको इस प्रकार देखती है जैसे स्वयंवरमाला ही डाल दी हो ॥९॥

[५] किसीने जाकर सहस्रनयनसे कहा, "क्या आपने यह कुतूहल नही देखा, एक कामदेवके समान युवक है, नही मालूम किस देशका राजा है, उसे देखकर तुम्हारी बहन कामग्रहसे पीड़ित हो उठी है" यह सुनकर सहस्रनयन पुलकित हो गया, और भीतर ही भीतर आनन्दसे नाच उठा, 'ज्योतिपियोने जो कहा था, निश्चय ही यह उसी राजा सगरका आगमन है।' यह सोचकर उसका चेहरा खिल गया। वह तुरन्त वहाँ गया, जहाँ सगर था। उसे चौसठ लक्षणोंसे युक्त पूर्ण चक्रवर्ती राजा सगर जानकर सिरपर हाथ ले जाकर, सहस्रनयनने जयकार किया। उसे कन्या देकर नगरमे प्रवेश कराया ॥१–८॥

घत्ता—विद्याधरोंसे घिरे हुए उसने भवनमे लीलापूर्वक प्रवेश किया। सन्तुष्ट होकर उसने उत्तर-दक्षिण श्रेणी उसे प्रदान की ॥९॥

[६] सगर तिलककेशाको लेकर चला गया। उसने अयोध्या नगरीमे प्रवेश किया। सहस्रनयनने भी अपने पिताके वैरकी याद कर, विद्याधर सेनाको इकट्ठी कर, उस पूर्णघनके ऊपर आक्रमण किया, जिसने उसके पिता सुलोचनके प्राणोका अपहरण किया था। रथनूपुरचक्रवालपुरमे युद्धमे पूर्वमेघ मारा गया। उसका पुत्र जो तोयदवाहन था, वह युद्धके वीच किसी प्रकार नही मरा। वह सन्तुष्ट मन अपने हंसविमानमे वैठकर वहाँ गया, जहाँ अजित जिनेन्द्रका समवसरण था। इन्द्रने उसे अभय वचन दिया। उसने शत्रुसहित अपना सारा

जे रिउ अणुपच्छऍ लग्ग तहों। गय पासु पडीवा णिय-णिवहों ॥८॥

घत्ता

तोयदवाहणु देव पाण लएविणु णट्ठउ।
जिम सिद्धालऍ सिद्धु तिम समसरणें पइट्ठउ ॥९॥

[७]

त णिसुणेंवि पहु अत्ति पलित्तउ। ण खउ-हारु हुआसणें घित्तउ ॥१॥
'मरु मरु जइ वि जाइ पायालहों। विसहर-भवण-मूल-घण-जालहों॥२॥
पइसइ जइ वि सरणु सुर-सेवहुँ। दसविह-भावणवासिय-देवहुँ ॥३॥
पइसइ जइ वि सरणु थिर-थाणहुँ। अट्ठ विहहुँ विन्तर-गिव्वाणहुँ ॥४॥
पइसइ जइ वि सरणु दुव्वारहुँ। जोइस-देवहुँ पञ्च-पयारहुँ ॥५॥
कप्पामरहुँ जइ वि अहमिन्दहुँ। वरुण-पवण-वइसवण-सुरिन्दहुँ ॥६॥
मरइ तो वि महु तोयदवाहणु' पइज करेंवि गउ दससयलोयणु ॥७॥
पेक्खेवि माणत्थम्भु जिणिन्दहों। मच्छरु माणु वि गलिउ णरिन्दहों॥८॥
सो वि गम्पि समसरणु पइट्ठउ। जिणु पणवेप्पिणु पुरउ णिविट्ठउ ॥९॥
बिहि मि भवन्तराइ वज्जरियइँ। बिहि मि जणण-वइरइँ परिहरियइँ।१०

घत्ता

भीमें सुभीमेंहिं ताम अहिणव-गहिय-पसाहणु।
पुव्व-भवन्तर णेहें अवरुण्डिउ घणवाहणु ॥११॥

[८]

पभणइ भीमु भीम-भडभञ्जणु। 'तुहुँ महु अण्ण-भवन्तरें णन्दणु ॥१॥
जिहि चिरु तिह एवहि मि पियारउ'। चुम्बिउ पुणु वि पुणु वि सयवारउ॥२॥
'लइ कामुक-विमाणु अवियारें। लइ रक्खसिय विज्ज सहुँ हारें ॥३॥
अण्णु वि रयणायर-परियञ्चिय। दुप्पइसार सुरेहि मि वञ्चिय ॥४॥

वृत्तान्त उसे बताया। उसके पीछे जो दुश्मन लगे हुए थे, वे लौटकर अपने राजाके पास गये ॥१-८॥

घत्ता—उन्होंने कहा—"देव, तोयदवाहन अपने प्राण लेकर भाग गया, वह समवसरणसे उसी प्रकार चला गया है जिस प्रकार सिद्धालयमें सिद्ध चले जाते है" ॥९॥

[७] यह सुनकर राजा सहस्रनयन क्रोधसे जल उठा, मानो आगमे तृणसमूह डाल दिया गया हो। "मर-मर, वह यदि पातालमें भी जाता है जो विपधरभवनके मूल और मेघजालसे युक्त है। यदि वह इन्द्रकी सेवा करनेवाले दस प्रकारसे भवनवासी देवोकी शरणमे प्रवेश करता है, यदि वह स्थिर स्थानवाले व्यन्तर देवोंकी शरणमें जाता है, यदि वह दुर्वार पॉच प्रकारके ज्योतिपदेवोंकी शरणमे जाता है, कल्पवासी देव अहमेन्द्र, वरुण, पवन, वैश्रवण और इन्द्रकी शरणमे जाता है; तो भी वह मुझसे मरेगा, यह प्रतिज्ञा करके सहस्रनयन वहॉसे कूच करता है। जिनेन्द्रका मानस्तम्भ देखकर, राजाका मान मत्सर गल गया। उसने भी जाकर, समवसरणमें प्रवेश किया, जिनभगवान्को प्रणाम कर सामने बैठ गया। वहॉ दोनोंके जन्मान्तर बताये गये, दोनोसे पिताका वैर छुडवाया गया ॥१-१०॥

घत्ता—तव अभिनव प्रसाधनसे युक्त तोयदवाहनका भीम सुभीमने पूर्वजन्मके स्नेहके कारण आलिंगन किया ॥११॥

[८] भयंकर योद्धाओका भंजन करनेवाले भीमने कहा, "तुम जन्मान्तरसे मेरे पुत्र थे। जिस प्रकार उस समय, उसी प्रकार इस समय भी तुम मुझे प्यारे हो।" उसने उसे वार-वार सौ वार चूमा। विना किसी विचारके यह कामुक विमान लो, और हारके साथ, यह-राक्षसविद्या भी, और समुद्रसे घिरी हुई, जिसमें प्रवेश करना कठिन है, जो देवताओकी पहुॅचसे

तीस परम जोयण विस्थिण्णी । लङ्का-णयरि तुज्झु मइँ दिण्णी ॥५॥
अण्णु वि एक्क-वार छज्जोयण । लइ पायाललङ्क घणवाहण' ॥६॥
भीम-महाभीमहुँ आएसें । दिण्णु पयाणउ मणें परिओसें ॥७॥
विमलकित्ति-विमलामल-मन्तिहिँ । परिमिउ अवरेहि मि सामन्तेहिँ ॥८॥

घत्ता

लङ्काउरिहि पइट्ठु अविचलु रज्जें परिट्ठिउ ।
रक्खस-वसहों णाइँ पहिलउ कन्दु समुट्ठिउ ॥९॥

[९]

बहवें कालें बल-सम्पत्तिएँ । अजिय-जिणहों गउ वन्दण-हत्तिएँ ॥१॥
त समसरणु पईसइ जावँहिँ । सयरु वि तहिँ जे पराइउ तावँहिँ ॥२॥
पुच्छिउ णाहु पिहिमि-परिपाले । 'कइ होसन्ति भवन्तें कालें ॥३॥
तुम्हे जेहा वय-गुण-वन्ता । कइ तित्थयर देव अइकन्ता ॥४॥
त णिसुणेंवि कन्दप्प-वियारउ । मागह-भासएँ कहइ भडारउ ॥५॥
'मइँ जेहउ केवल-सपण्णउ । एक्कु जि रिसहु देउ उप्पण्णउ ॥६॥
पइँ जेहउ छक्खण्ड-पहाणउ । भरह-णराहिउ एक्कु जि राणउ ॥७॥
पइँ विणु दस होसन्ति णरेसर । मइँ विणु बावीस वि तित्थङ्कर ॥८॥
णव बलएव णव जि णारायण । हर एयारह णव जि दसाणण ॥९॥
अण्णु वि एक्कुणसट्ठि पुराणइँ । जिण-सासणें होसन्ति पहाणइँ' ॥१०॥

घत्ता

तोयदवाहणु ताम भावें पुलउ वहन्तउ ।
दस-उत्तरें सएण भरहु जेम णिक्खन्तउ ॥११॥

[१०]

णिय-णन्दणहों णिहय-पडिवक्खहों । लङ्का-णयरि दिण्ण महरक्खहों ॥१॥
बहवें कालें सासय-थाणहों । अजिय भडारउ गउ णिव्वाणहों ॥२॥
सयरहों सयल पिहिमि भुञ्जन्तहों । रयण-णिहाणइँ परिपालन्तहों ॥३॥

वंचित है, ऐसी तीस परमयोजन विस्तारवाली लंकानगरी, मैंने तुम्हें दी। हे तोयदवाहन, एक और भी एक द्वार और छह योजनवाली पाताललंका लो।" इस प्रकार भीम और महाभीमके आदेशसे मनमे सन्तुष्ट होकर उसने प्रस्थान किया। विमल-कीर्ति और विमलवाहन मन्त्रियों तथा दूसरे सामन्तोसे घिरे हुए ॥१-८॥

घत्ता—तोयदवाहनने लंकापुरीमें प्रवेश किया, और अविचल रूपसे राज्यमे इस प्रकार प्रतिष्ठित हो गया जैसे राक्षस-वंशका पहला अंकुर फूटा हो ॥९॥

[९] बहुत दिनो बाद सेना और शक्तिसे सम्पन्न होकर वह अजितनाथकी वन्दना भक्ति करनेके लिए गया। जैसे ही वह समवसरणमें प्रवेश करता है वैसे ही सगर वहाँ आता है। वह भगवान्से पूछता है, "हे स्वामी, आनेवाले समयमें, आपके समान वय गुणवाले अतिक्रान्त कितने तीर्थंकर होंगे ?" यह सुनकर कामका विदारण करनेवाले आदरणीय परम जिन मागध-भाषामें कहते है, "मेरे समान—केवलज्ञानसे सम्पूर्ण एक ही ऋषभ भट्टारक हुए है, तुम्हारे समान छह खण्ड धरती का स्वामी नराधिप भरत, एक ही हुआ है। तुम्हे छोडकर दस राजा और होंगे, मेरे बिना बाईस तीर्थंकर और होंगे। नौ बलदेव और नौ नारायण, ग्यारह शिव, और नौ प्रतिनारायण। और भी उनसठ, पुराणपुरुष जिनशासनमें होंगे ॥१-१०॥

घत्ता—तब तोयदवाहन भावविभोर हो उठा और एक सौ दस लोगोंके साथ भरतकी तरह दीक्षित हो गया ॥११॥

[१०] प्रतिपक्षका नाश करनेवाले अपने पुत्र महारक्षको उसने लंकानगरी दे दी। बहुत समय होनेके बाद आदरणीय अजित जिन शाश्वत स्थान—निर्वाण चले गये। रत्नो और निधियोका परिपालन, और समस्त धरतीका उपभोग करते हुए

सट्ठि सहास हूय वर-पुत्तहुँ । सयल-कला-विण्णाण-णिउत्तहुँ ॥४॥
एक्क दिवसेँ जिण-भवण-णिवासहोँ । वन्दण-हत्तिएँ गय कइलासहोँ ॥५॥
भरह-कियइँ मणि-कञ्चण-माणइँ । चउवीस वि वन्देप्पिणु थाणइँ ॥६॥
भणइ भईरहि सुट्ठु वियक्खणु । करहुँ कि पि जिण-भवणहुँ रक्खणु ॥७॥
कड्ढेवि गङ्ग भमाडहुँ पासेँहिँ । त जि समत्थिउ भाइ-सहासेहिँ ॥८॥

घत्ता

दण्ड-रयणु परिचिन्तेँवि खोणि खणन्तु भमाडिउ ।
पायालइरिहिँ णाइँ वियड-उरत्थलु फाडिउ ॥९॥

[११]

तक्खणेँ खोहु जाउ अहि-लोयहोँ । धरणिन्दहोँ सहास-फड-डोयहोँ ॥१॥
आसीविस-दिट्ठिएँ णिक्खत्तिय । सयल वि छारहोँ पुञ्जु पवत्तिय ॥२॥
कह वि कह वि ण वि दिट्ठिहिँ पडिया। भीम-भईरहि वे उव्वरिया ॥३॥
दुम्मण दीण-वयण परियत्ता । लहु सक्केय-णयरि संपत्ता ॥४॥
मन्तिहिँ कहिउ 'कहवि तिह भिन्दहोँ । जिह उड्डन्ति ण पाण णरिन्दहोँ'॥५॥
ताम सहा-मण्डउ मण्डिज्जइ । आसणु आसणेण पीडिज्जइ ॥६॥
मेहलु मेहलेण आलग्गे । हारे हारु मउडु मउडग्गे ॥७॥
सयर-णरिन्दासण-सकासइँ । वइसणाहुँ वाणवइ सहासइँ ॥८॥

घत्ता

णावइ आउल-चित्तु सव्वत्थाणु विहावइ ।
सट्ठि सहासहुँ मज्झेँ एक्कु वि पुत्तु ण आवइ ॥९॥

[१२]

भीम-भईरहि ताम पइट्ठा । णिय-णिय-आसणेँ गम्पि णिविट्ठा॥१॥
पुच्छिय पुणु परिपालिय-रज्जें । 'इयर ण पइसरन्ति कि कज्जें ॥२॥
तेहिँ विणासणाइँ विच्छायइँ । तामरसाइँ व णिद्धुयगायइँ ॥३॥

राजा सगरके साठ हजार पुत्र हुए, जो समस्त कलाओं और विज्ञानमे निपुण थे। एक दिन वे कैलासके जिनमन्दिरोंके दर्शन करनेके लिए गये। भरतके द्वारा बनवाये गये मणि और स्वर्ण-मय चौबीस मन्दिरोंकी वन्दना कर अत्यन्त विचक्षण भगीरथ कहता है कि जिनमन्दिरोंकी रक्षाके लिए कुछ करना चाहता हूँ। गंगाको निकालकर मन्दिरोके चारो ओर घुमा दिया जाये, इसका दूसरे हजारों भाइयोंने समर्थन किया ॥१-८॥

घत्ता—उन्होने दण्डरत्नका चिन्तन कर, धरती खोदते हुए घुमा दिया, जैसे उसने पातालगिरिका विकट उरस्थल फाड़ दिया ॥९॥

[११] नागलोकमें उसी समय क्षोभ उत्पन्न हो गया। धरणेन्द्रके हजारो फन डोल उठे। उसने अपनी विषैली दृष्टिसे देखा उससे सब कुछ राखका ढोर हो गया। भीम और भगीरथ किसी प्रकार उसकी दृष्टिमें नही पड़े इसलिए ये दोनों बच गये। दुर्मन दीनमुख वे लौटे और शीघ्र ही साकेत नगर पहुँचे। तब मन्त्रियोंने कहा, "किसी प्रकार ऐसे रहस्यका उद्‌घाटन करो जिससे राजाके प्राण-पखेरू न उड़े।" एक ऐसा सभा मण्डप बनाया जाये जिसमे आसनसे आसन सटे हो, और मेखलासे मेखला लगी हो, हारसे हार, तथा मुकुटसे मुकुट। सगर राजा-के आसनके समान बैठनेके लिए बानवे हजार आसन बनाये जाये ॥१-८॥

घत्ता—व्याकुल चित्त राजा सब स्थानको देखता है कि साठ हजार पुत्रोमे-से एक भी पुत्र नही आया है ॥९॥

[१२] इतनेमे भीम और भगीरथने प्रवेश किया। वे अपने-अपने आसनपर जाकर बैठ गये। तब राज्यका पालन करनेवाले भगीरथने पूछा, "किस कारणसे दूसरे पुत्र नही आये? उनके बिना ये आसन शोभाहीन है, और है निर्धूत-

तं णिसुणेवि वयणु तहों मन्तिहिँ । जाणाविउ पच्छण्ण-पउत्तिहिँ ॥४॥
'हे णरवइ णिय-कुलहों पईवा । गय दियहा किं एन्ति पडीवा ॥५॥
जलवाहिणि-पवाह णिव्वूडा । परियत्तन्ति काइँ ते मूढा ॥६॥
घण-घट्टियइँ विज्जु-विप्फुरियइँ । सुविणय-वालभाव-सचरियइँ ॥७॥
जलवुव्वुव-तरङ्ग-सुरचावइँ । कइ दीसन्ति विणासु ण भावइ ॥८॥

घत्ता

भरह-वाहुवलि-रिसह काल-भुअङ्गें गिलिया ।
कउ दीसन्ति पडीवा उज्झहिँ एक्कहिं मिलिया ॥९॥

[१२]

ज णिदरिसु समासएँ दिण्णउ । त चक्कवइहेँ हियवउ भिण्णउ ॥१॥
'तेण जें ते अत्थाणु ण ढुक्का । फुडु महु केरउ पेसणु चुक्का ॥२॥
लद्धावसरेँ हिँ ज अणुहुन्तउ । मइरहि-भीमहिँ कहिउ णिरुत्तउ ॥३॥
तं णिसुणेवि राउ मुच्छगउ । पडिउ महद्दुमुव्व पवणाहउ ॥४॥
तहि मि कालेँ सामिय-सम्माणेँहिँ । भिच्चहिँ जेम ण मेल्लिउ पाणेँहिँ ॥५॥
दुक्खु दुक्खु दूरुज्झिय-वेयणु । उट्ठिउ सव्वङ्गागय-चेयणु ॥६॥
'किं सोए किं खन्धावारे । वरि पावज्ज लेमि अवियारे ॥७॥
आयएँ लच्छिएँ वहु जुज्झाविय । पाहुणया इव वहु वोलाविय ॥८॥

घत्ता

जो जो को वि जुवाणु तासु तासु कुलउत्ती ।
मेइणि छेन्छइ जेम कवणे णरेँण ण भुत्ती' ॥९॥

शरीर कमलोके समान।" राजाके यह वचन सुनकर मन्त्रियोंने प्रच्छन्न उक्तियोंसे बताते हुए कहा, "हे राजन्, अपने कुलके प्रदीप वे, और दिन, जाकर क्या वापस आते हैं? नदीके जो प्रवाह वह चुके है, मूर्ख उनके वापस आनेकी आशा क्यो करते है? मेघोंका घर्षण, विद्युत्का स्फुरण, स्वप्न और बालभावकी हलचल, जलबुद्बुद, तरंग और इन्द्रधनुप कितनी देर दिखते है, क्या इनका विनाश नही होता? ॥१-८॥

घत्ता—भरत बाहुबलि और ऋपभ काल रूपी नाग द्वारा निगल लिये गये। क्या वे एक साथ मिलकर अव अयोध्यामे दिखाई देंगे ॥९॥

[१३] मन्त्रियोंने संक्षेपमें जो उदाहरण दिया उससे चक्रवर्तीका हृदय विदीर्ण हो गया। वह सोचता है, कि जिस कारणसे वे यहाँ-दरबारमे नही आ सके उससे स्पष्ट है कि मेरा शासन समाप्त हो चुका है। अवसर मिलने पर, भीम और भगीरथने जो कुछ अनुभव किया था वह सब कह दिया। यह सुनकर राजा मूर्छित हो गया, जैसे पवनसे आहत होकर महावृक्ष धरती पर गिर पड़ा हो। उस अवसर पर उसके प्राणोंने, स्वामीके द्वारा सम्मानित अनुचरोकी भाँति, उसे नही छोड़ा। बडी कठिनाईसे उसकी वेदना दूर हुई। पूरे शरीरमें चेतना आनेपर वह उठा। (वह सोचने लगा)—शोक और सेनासे क्या? मै अविकार भावसे प्रव्रज्या लेता हूँ? इस लक्ष्मीने बहुतोंको लड़वाया है, और पाहुणय (काल या अतिथि) की तरह यह बहुतोंके पास गयी है? ॥१-८॥

घत्ता—जो-जो कोई युवक है, उसी उसी की यह कुलपुत्री है, यह धरती वेश्याकी तरह, किस-किसके द्वारा नहीं भोगी गयी? ॥९॥

[१४]

पभणिउ भीमु 'होहि दिढु रज्जहों । हउँ पुणु जामि थामि णिय-कज्जहों' ॥१
तेण वि वुत्तु 'णाहि' वउ भञ्जमि । छेन्छइ पइँ जि कहिय णउ भुञ्जमि ॥२
चत्तु भीमु मइरहि हक्कारिउ । दिण्ण पिहिमि वइसणेँ वइसारिउ ॥३॥
अप्पुणु भरहु जेम णिक्खन्तउ । तउ करेवि पुणु णिव्वुइ पत्तउ ॥४॥
ता एत्तहेँ विणिहय-पडिवक्खहों । रज्जु करन्तहों तहों महरक्खहों ॥५॥
देवरक्खु उप्पण्णउ णन्दणु । णरवइ एक्क-दिवसेँ गउ उववणु ॥६॥
कीलण-वाॅहिहेँ परिमिउ णारिहिँ । ण्हाइ गइन्दु व सहुँ गणियारिहिँ ॥७॥
णिवडिय तासु दिट्ठि तहिँ अवसरे । जहिँ मुउ महुयरु कमलब्भन्तरेँ ॥८॥

घत्ता

चिन्तिउ 'जिह धुअगाउ रस-लम्पडु अच्छन्तउ ।
तिह कामाउर सव्वु कामिणि-वयणासत्तउ' ॥९॥

[१५]

णिय-मणेँ जाइ विसायहों जावेँहिँ । सवण-सङ्घु सपाइउ तावेँहिँ ॥१॥
सयल वि रिसि तियाल-जोगेसर । महकइ गमय वाइ वाईसर ॥२॥
सयल वि वन्धु-सत्तु-समभावा । तिण-कञ्चण-परिहरण-सहावा ॥३॥
सयल वि जल्ल-मलङ्किय-देहा । धीरत्तणेँण महीहर-जेहा ॥४॥
सयल वि णिय-तव-तेए दिणयर । गम्भीरत्तणेण रयणायर ॥५॥
सयल वि घोर-वीर-तव-तत्ता । सयल वि सयल-सङ्ग-परिचत्ता ॥६॥
सयल वि कम्म-वन्ध-विद्धंसण । सयल वि सयल-जीव-सम्भीसण ॥७॥
सयल वि परमागम-परियाणा । काय-किलेसेक्केक्क-पहाणा ॥८॥

[१४] उन्होंने भीमसे कहा, "तुम राज्यमें दृढ होओ मै अब अपने कामके लिए जाता हूँ।" तब उसने कहा कि मै भी परम्परा भग्न नही करूँगा, आपने इसे वेश्या कहा है, मै इसका भोग नही करूँगा ? सगरने भीमको छोड दिया, और भगीरथ-को बुलाया, उसे धरती दी, और आसन पर बैठाया, और स्वयं भरतके समान प्रव्रजित हो गया। तप करके उसने निर्वाण प्राप्त किया। यहाँ पर प्रतिपक्षका नाश करनेवाले और राज्य करते हुए उस महारक्षके देवरक्ष पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा एक दिन उपवनमे गया। स्त्रियोसे घिरा हुआ वह जब क्रीड़ावापिकामे नहा रहा था (जैसे हाथी अपनी हथिनियोंके साथ नहा रहा हो) कि उस समय उसकी दृष्टि, कमलके भीतरके मरे हुए भ्रमर पर पड़ी ॥१-८॥

घत्ता—उसने सोचा, "जिस प्रकार रसलम्पट यह भ्रमर निश्चेष्ट है उसी प्रकार कामिनीके मुखसे आसक्त सभी कामीजनों की यही स्थिति होती है" ॥९॥

[१५] जैसे ही उसे अपने मनमें विषाद हुआ, वैसे ही वहाँ एक श्रमण संघ आया। उसमें सभी ऋषि त्रिकाल योगेश्वर थे। महाकवि व्याख्याता वादी और वागीश्वर थे। सभी शत्रु और मित्रमें समभाव रखनेवाले, और तृण और स्वर्णको समान रूपसे छोडनेवाले, सभी सूखे पसीने और मलसे युक्त शरीरवाले, और धैर्यमे महीधरके समान थे। सभी अपने तपके तेजसे दिनकरकी तरह थे और गम्भीरतामे समुद्रकी तरह। सभी धीर-वीर तपसे तपे हुए थे और समस्त परिग्रहको छोड़नेवाले थे। सभी कर्मबन्धका विध्वस करनेवाले और सभी, सभी जीवों को अभयवचन देनेवाले थे। सभी परमागमोंके जानकार और कायक्लेशमें एकसे एक बढकर थे ॥१-८॥

घत्ता

सयल वि चरम-सरीर सयल वि उज्जुय-चित्ता ।
ण परिणणहॅं पयट्ट सिद्धि-वहुय वरइत्ता ॥९॥

[१६]

तो एत्थन्तरेँ पहु आणन्दिउ । सो रिसि सइँ घु तुरन्तें वन्दिउ ॥१॥
पभणिउ विण्णवेवि सुयसायर । भो भो भव्वम्भोय-दिवायर ॥२॥
भव-संसार-महण्णव-णासिय । करेँ पसाउ पव्वज्जहेँ सामिय' ॥३॥
जम्पइ साहु 'साहु लङ्केसर । पइँ जीवेवउ अट्ठ जेँ वासर ॥४॥
ज जाणहि तं करहि तुरन्तउ' । णिविसद्धेण सो वि णिक्खन्तउ ॥५॥
अट्ठ दिवस सल्लेहण भावेँवि । अट्ठ दिवस दाणइँ देवावेँवि ॥६॥
अट्ठ दिवस पुज्जउ णीसारेँवि । अट्ठ दिवस पडिमउ अहिसारेँवि ॥७॥
अट्ठ दिवस आराहण वाएँवि । गउ मोक्खहोँ परमप्पउ झाएँवि ॥८॥

घत्ता

तहोँ महरक्खहोँ पुत्तु देवरक्खु वलवन्तउ ।
थिउ अमराहिउ जेम लङ्क स इ भु ञ्जन्तउ ॥९॥

●

६ छट्ठो संधि

चउसट्ठिहिँ सिंहासणेँहिँ अइकन्तेँहि आणन्तएँ भित्तिएँ ।
पुणु उप्पण्णु कित्तिधवलु धवलिउ जेण भुअणु णिउ-कित्तिएँ ॥१॥

यथा प्रथमस्तोयदवाहन । तोयदवाहनस्यापत्य महरक्ष । महरक्षस्यापत्य देवरक्ष. । देवरक्षस्यापत्य रक्ष. । रक्षस्यापत्यमादित्य. । आदित्य-

घत्ता—"सभी चरमशरीरी, सभी सरल चित्त मानो सिद्धरूपी वधूसे विवाह करनेके लिए वर ही निकल पड़े हों ॥९॥

[१६] इसके अनन्तर राजा आनन्दित हो उठा। उसने तुरन्त उसे ऋषि संघकी वन्दना की। उसने प्रणाम करते हुए कहा, "भव्यरूपी कमलोंके लिए दिवाकर और भवसंसारके महासमुद्रका नाश करनेवाले हे स्वामी, कृपाकर मुझे प्रव्रज्या दीजिए"। साधु बोले, "हे लंकेश्वर ! बहुत अच्छा, तुम आठ दिन और जीनेवाले हो, इसलिए जो ठीक समझो वह तुरन्त कर लो"। वह भी आधे पलमें ही प्रव्रजित हो गया। आठों दिन उसने संलेखनाका ध्यान तथा दान दिलवाया, आठों दिन पूजा निकलवायी, आठों दिन प्रतिमाका अभिषेक किया, आठों दिन आराधना पढी और इस प्रकार परमपदका ध्यान कर वह मोक्षको प्राप्त हुआ ॥१-८॥

घत्ता— उस महारक्षका बलवान् पुत्र देवरक्ष गद्दीपर बैठा और इन्द्रके समान लंकाका स्वयं उपभोग करने लगा ॥९॥

●

छठी सन्धि

अनन्त परम्परामें चौसठ सिंहासन बीत जानेके बाद कीर्तिधवल उत्पन्न हुआ, जिसने अपनी कीर्तिसे भुवनको धवल कर दिया। जैसे पहला तोयदवाहन, तोयदवाहनका पुत्र महारक्ष। महारक्षका पुत्र देवरक्ष। देवरक्षका पुत्र रक्ष। रक्षका पुत्र आदित्य। आदित्यका पुत्र आदित्यरक्ष। आदित्यरक्षका

[१]

सुर-कीलएँ रज्जु करन्ताहो । लङ्काउरि परिपालन्ताहो ॥१॥
एक्कहिँ दिणेँ विज्जाहर-पवरु । लच्छी-महीएविहेँ भाइ-णरु ॥२॥
सिरिकण्ठ-णामु णिव-मेहुणउ । रयणउरहोँ आइउ पाहुणउ ॥३॥
स-कलत्तु स-मन्ति-सामन्त-वलु । तहोँ अहिमुहु आउ कित्तिधवलु ॥४॥
स-पणामु समाइच्छिउ करेँवि । पुणु थिउ एक्कासणेँ वइसरेँवि ॥५॥
एत्थन्तरेँ हय-गय-रह-चडिउ । अत्थक्कए पारक्कउ पडिउ ॥६॥
मायार वि वारइँ रुद्धाइँ । दिट्ठइँ छत्त-द्धय-चिन्धाइँ ॥७॥
णिसुयइँ रण-तूरइँ वज्जियइँ । हय-हिंसिय-गयवर-गज्जियइँ ॥८॥
दुव्वार-वइरि-सय-रोक्कियइँ । पच्चारिय-खारिय-कोक्कियइँ ॥९॥

घत्ता

त पेक्खेविणु वइरि-वलु कित्तिधवलु सिरिकण्ठें धीरिउ ।
'ताव ण जिणवरु जय भणमि जाव ण रणेँ विवक्खु सर-सीरिउ' ॥१०॥

[२]

सिरिकण्ठहोँ जोएँवि मुह-कमलु । कमलाएँ पवुत्तु कित्तिधवलु ॥१॥
'किं ण मुणहि धण-कञ्चण पउरु । विज्जाहर-सेढिहिँ मेहउरु ॥२॥
तहिँ पुप्फोत्तर-विज्जाहिवइ । तहोँ तणिय दुहिय हउँ कमलमइ ॥३॥
छुडु छुडु उच्चेल्लेँ वि णीसरिय । चमरहरिहि णारिहिँ परियरिय ॥४॥
तहि अवसरेँ धवल-विसालाइँ । वन्देप्पिणु मेरु-जिणालाइँ ॥५॥
स-विमाणु एन्तु णहेँ णियवि सइँ । घत्तिय णयणुप्पल-माल मइँ ॥६॥
तइयहुँ जें जाउ पाणिग्गहणु । एवहिँ णिक्कारणेँ काइँ रणु ॥७॥
मा णिय-णिय-सेण्णइँ णिट्ठवहोँ । तहोँ पासु महन्ता पट्ठवहोँ' ॥८॥

[१] देव क्रीड़ाके साथ राज्य करते और लंकाका परिपालन करते हुए एक दिन कीर्तिधवलके पास महादेवी लक्ष्मीका भाई विद्याधर, श्रीकण्ठ नामका, राजाका साला, रथनूपुर नगरसे अतिथि बनकर आया, अपनी स्त्री मन्त्री सामन्त और सेनाके साथ। कीर्तिधवल उसके सामने आया तो उसने प्रणामपूर्वक उसका समादर किया और दोनो एक आसन पर बैठ गये। इतने में अश्व, गज और रथो पर आरूढ, अचानक शत्रु आ गया। उसने चारों द्वार अवरुद्ध कर लिये। छत्र ध्वज और चिह्न दिखाई देने लगे। बजते हुए युद्धके तूर्य सुनाई दे रहे थे। अश्व हिनहिना रहे थे और गज चिग्घाड़ रहे थे। दुर्वार सैकड़ों वैरी रुद्ध थे, उलाहना देते, चिढ़े हुए और पुकारते हुए ॥१-९॥

घत्ता—उस शत्रुसेनाको देखकर श्रीकण्ठने कीर्तिधवलको धीरज बँधाया, कि जब तक मै युद्धमें विपक्षको तीरोंसे छिन्न-भिन्न नही कर दूँगा, तब तक जिनवरकी जय नही बोलूँगा ॥१०॥

[२] श्रीकण्ठका मुखकमल देखकर, उसकी पत्नी कमलाने कीर्तिधवलसे कहा, "क्या आप नही जानते कि विद्याधर श्रेणी-में धन और स्वर्णसे भरपूर मेघपुर नगर है। उसमे पुष्पोत्तर नामक विद्यापति राजा है। मै उसीकी कमलावती नामकी कन्या हूँ। एक दिन मै सहसा घूमने के लिए चमरधारिणी स्त्रियोके साथ निकली। उस अवसर, सुमेरु पर्वतके धवल और विशाल जिनमन्दिरोकी वन्दनाके लिए, विमान सहित आते हुए देखकर, मैने नेत्ररूपी कमलकी माला डाल दी। और उसी समय मेरा पाणिग्रहण हो गया। अब बिना किसी कारण युद्ध क्यो? अपनी-अपनी सेनाओको नष्ट न करे, उसके पास मन्त्रियोको भेजा जाय" १-८॥

घत्ता

णिसुणेंवि त तेहउ वयणु पेसिय दूय पवाइय तेत्तहें ।
उत्तर-वारें परिट्ठियउ पुप्फोत्तरु विज्जाहरु जेत्तहें ॥९॥

[३]

विण्णाण-विणय-णयवन्तएँहि । विज्जाहरु वुत्तु महन्तएँहिं ॥१॥
'परमेसर एत्थु अ-खन्ति कउ । सव्वउ कण्णउ पर-भायणउ ॥२॥
सरियउ णीसरेवि महीहरहों । ढोयन्ति सलिलु रयणायरहों ॥३॥
मोत्तिय-मालउ सिरें कुञ्जरहों । उवसोह देन्ति अण्णहों णरहों ॥४॥
धाराउ लेवि जलु जलहरहों । सिञ्चन्ति अङ्गु णव-तरुवरहों ॥५॥
उप्पज्जवि मज्झें महा-सरहों । णलिणिउ वियसन्ति दिवायरहों ॥६
सिरिकण्ठ-कुमारहों दोसु कउ । तउ दुहियएँ लइउ सयम्वरउ' ॥७॥
त णिसुणेंवि णरवइ लज्जियउ । थिउ माण-मडप्फर-वज्जियउ ॥८॥

घत्ता

'कण्णा दाणु कहिं (?) तणउ जइ ण दिण्णु तो तुडिहि चडावइ ।
होइ सहावें मइलणिय छेय-कालें दीवय-सिह णावइ' ॥९॥

[४]

गउ एम भणेवि णराहिवइ । सिरिकण्ठें परिणिय पउमवइ ॥१॥
वहु-दिवसेंहिं उम्माहय-जणणु । णिय-सालउ पेक्खेवि गमण-मणु ॥२
सब्भावें भणइ कित्तिधवलु । 'जिह दूरीहोइ ण मुह-कमलु ॥३॥
तिह अच्छहुँ मज्जण पाण-पिय । किं विहिं ण पहुच्चइ एह सिय ॥४॥
महु अत्थि अणेय दीव पवर । हरि-हणुरुह-हंस-सुवेल-धर ॥५॥
कम्म-कञ्चण-कच्छुअ-मणि-रयण । छोहार-चीर-वाहण-जवण ॥६॥
वव्वर-वज्जर-गोरा वि सिरि । तोयावलि-सञ्झागार-गिरि ॥७॥
वेलन्धर-सिंहल-चीणवर । रस-रोहण-जोहण-किक्कुधर ॥८॥

घत्ता—उसके इन वचनोको सुनकर दूत भेजे गये, जो वहाँ पहुँच गये कि जहाँ उत्तर द्वारपर पुष्पोत्तर विद्याधर था ॥९॥

[३] विज्ञान विनय और नीतिवान् मन्त्रियोने पुष्पोत्तर विद्याधरसे कहा, "हे परमेश्वर, इतना अशान्तिभाव क्यो? सब कन्याएँ दूसरेकी भाजन होती है। नदियाँ पहाड़ोसे निकलकर पानी समुद्रमे ढोकर ले जाती है। हाथीके सिरसे मोतियोकी माला बनती है, परन्तु शोभा बढाती है दूसरे मनुष्यों की। धाराएँ मेघोसे जल ग्रहण कर नव तरुवरोके अंगोको सीचती है। महासरोवरके मध्यमे उत्पन्न होकर भी कमलिनियाँ खिलती है दिवाकरसे। इसमे श्रीकण्ठ कुमारका क्या दोष? तुम्हारी कन्याने स्वयं उसका वरण किया है?" यह सुनकर पुष्पोत्तर लज्जासे गड़ गया। उसका मान और अहंकार दूर हो गया ॥१-८॥

घत्ता—कन्यादान किसके लिए? यदि वह न दी जाय तो कलंक लगा देती है। क्षयकालकी दीपशिखाकी भाँति कन्या स्वभावसे मलिन होती है ॥९॥

[४] इस प्रकार कहकर नराधिपति चला गया, श्रीकण्ठने कमलावतीसे विवाह कर लिया। बहुत दिनोके बाद पिताके लिए व्याकुल अपने सालेको जानेके लिए इच्छुक, देखकर कीर्तिधवल सद्भावसे कहता है, "तुम मेरे प्राणप्रिय अपने आदमी हो, इसलिए इस प्रकार रहो जिससे तुम्हारा मुख-कमल दूर न हो, क्या तुम्हें इतनी सम्पदा पर्याप्त नही है? मेरे पास अनेक बड़े-बड़े द्वीप है, हरि, हणुरुह, हंस, सुवेल, धर, कुश, कंचन, कचुक, मणिरत्न, छोहार, चीर, वाहन, वन, वव्वर, वज्जरगिरि, श्री, तोयावलि, सन्ध्याकार गिरि, वेलन्धर, सिंहल, चीणवर, रस, रोहण, जोहण और किष्कधर ॥१-८॥

घत्ता

भार-मरक्खम-भीम-तड एय महारा दीव विचित्ता ।
णिव्वाडेप्पिणु धम्मु जिह जं भावइ तं गेण्हहि मित्ता' ॥९॥

[५]

सिरिकण्ठहों ताम मन्ति कहइ । 'किं वहवें वाणर-दीउ लइ ॥१॥
जहिँ किक्कु-महीहरु हेम-इलु । विप्फुरिय-महामणि-फलिह-सिलु ॥२
पवलङ्कुरु इन्दणील-गुहिलु । ससिकन्त-णीर-णिज्झर-वहलु ॥३॥
मुत्ताहल-जल-तुसार-टरिसु । जहिँ देसु वि तासु जें अणुसरिसु ॥४॥
अहिणव-कुसुमइँ पक्कइँ फलइँ । कर गेज्झइँ पण्णइँ फोप्फलइँ ॥५॥
जहिँ दक्ख रसालउ दीहियउ । गुलियउ अमरेहि मि ईहि [य] उ ॥६
जहिँ णाणा-कुसुम-करम्बियइँ । सीयलइँ जलइँ अलि-चुम्बियइँ ॥७॥
जहिँ धण्णइँ फल-सदरिसियइँ । धरणिहें अङ्गाइँ व हरिसियइँ' ॥८॥

घत्ता

तं णिसुणेंवि तोसिय-मणेंण देवागमणहों अणुहरमाणउ ।
माहव-मासहों पढम-दिणें तहिँ सिरिकण्ठे दिण्णु पयाणउ ॥९॥

[६]

लङ्घेप्पिणु लवण-समुद्द-जलु । तं वाणर-दीउ पइट्ठु वलु ॥१॥
जहिँ कुहिणिउ रविकन्त-प्पहउ । सिहि-सङ्कएँ उवरि ण देइ पउ ॥२॥
जहिँ वाविउ वउलामोइयउ । सुर-सङ्कएँ णरेण ण जोइयउ ॥३॥
जहिँ जलइँ णाहिँ विणु पङ्कएँहिँ । पङ्कयइँ णाहिँ विणु छप्पएँहिँ ॥४॥
जहिँ वणइँ णाहिँ विणु अम्बएँहिँ । अम्बा वि णाहिँ विणु गोच्छएँहिँ ॥
गोच्छा वि णाहिँ विणु कोइलेंहिँ । कोइलउ णाहिँ विणु कलयलेंहिँ ॥६
जहिँ फलइँ णाहिँ विणु तरुवरेंहि । तरुवर वि णाहि विणु लयहरेंहिँ ॥७॥
'लयहरइँ णाहिँ णिक्कुसुमियइँ । जहिँ महुयर-विन्दइँ ण भमियइँ ॥८

घत्ता—भारभर क्षम, भीमतट, ये मेरे विचित्र द्वीप है। 'धर्म' की तरह, इनमें से एक चुनकर, हे मित्र, जो अच्छा लगे वह ले लो ॥९॥

[५] तब श्रीकण्ठका मन्त्री कहता है, 'बहुत कहनेसे क्या, बानर द्वीप ले लीजिए, जिसमे किष्क पहाड़ और स्वर्णभूमि है, जिसमें चमकती हुई महामणियोंकी बड़ी-बड़ी चट्टाने है। प्रवालों और इन्द्रनीलसे व्याप्त है, जिसमे चन्द्रकान्त मणियोसे निर्झर बहते है, जिसमें मुक्ताफल जलकणोकी तरह दिखाई देते है, जिसमे देश, एक दूसरेके समान है? अभिनव कुसुम, पके हुए फल, करग्राह्य है पत्ते जिनके, ऐसे सुपाड़ीके वृक्ष। जहाँ मीठी द्राक्षा लताएँ है, जो देवोके द्वारा चाही गयी है। जहाँ शीतल, तरह-तरहके फूलोंसे मिश्रित और भौरोंसे चुम्बित जल है। जहाँ दानोंको प्रदर्शित कर रहे धान्य ऐसे लगते है जैसे धरतीके हर्षित अग हों ॥१–८॥

घत्ता—यह सुनकर श्रीकण्ठका मन सन्तुष्ट हो गया। उसने चैत्र माहके पहले दिन उस द्वीपके लिए प्रस्थान किया, उसका यह प्रस्थान देवताओंके समान था ॥९॥

[६] लवणसमुद्रका जल पार करते ही उसकी सेनाने बानर द्वीपमे प्रवेश किया। उसकी पगडण्डियाँ सूर्यकान्तमणिसे आलोकित है, आगकी आशंकासे कोई उसपर पैर नही रखता। जहाँ बगुलोंसे आमोदित वावड़ीको देवोंकी आशंकासे मनुष्य नही देखते, जिसमे बिना कमलोके जल नही है, और कमल भी बिना भ्रमरोके नहीं है, जहाँ बिना आम्रवृक्षोके वन नहीं है, आम्रवृक्ष भी विना मंजरियोके नही है। मजरियाँ भी विना कोयलोके नही है, कोयले भी 'कलकल' ध्वनिके विना नही है, जहाँ फल पेड़ोके बिना नही है, पेड़ भी लताओके विना नही है, लताएँ भी विना फूलोके नही है, और फूल भी ऐसे नही है

घत्ता

साहउ णउ विणु वाणरेँहिँ णउ वाणर जाहँ ण वुक्कारो ।
ताइँ णियन्तउ तहिँ जेँ थिउ विज्जालउ सिरिकण्ठ-कुमारो ॥९॥

[७]

पहु तेहिँ समाणु खेड्डु करेवि । अवरेहिँ धरावेँवि सइँ धरेँवि ॥१॥
गउ किक्कु-महीहरहो (?) सिहरु । चउदह-जोयण-पमाणु णयरु ॥२॥
किउ सहसा सव्वु सुवण्णमउ । णामेण किक्कुपुरु अण्णमउ ॥३॥
जहिँ चन्दकन्ति-मणि-चन्दियउ । ससि भणेँवि अ-दियहेँ जेँ वन्दियउ ॥
जहिँ सूरकन्ति-मणि विप्फुरिय । रवि भणेँवि जलाइँ मुअन्ति ठिय॥५॥
जहिँ णीलाउलि-भू-भङ्गुरइँ । मोत्तियतोरण- उदन्तुरइँ ॥६॥
विद्दुमदुवार-रत्ताहरइँ । अवरोप्परु विहसन्ति व घरइँ ॥७॥
उप्पण्णु ताम कोड्डावणउ । सिरिकण्ठहोँ वज्जकण्ठु तणउ ॥८॥

घत्ता

एक्क-दिवसेँ देवागमणु णिएँवि जन्तु णन्दीसर-दीवहोँ ।
वन्दण-हत्तिएँ सो वि गउ परम-जिणहोँ तइलोक्क-पईवहोँ ॥९॥

[८]

स-पसाहणु स-परिवारु स-धउ । मणुसुत्तर-महिहरु जाम गउ ॥१॥
पडिकूलिउ ताम गमणु णरहोँ । सिद्धालउ णाइँ कु-मुणिवरहोँ ॥२॥
मइँ अण्ण-भवन्तरेँ काइँ किउ । जे सुर गय महु जि विमाणु थिउ ॥३॥
वरि घोर-वीर-तउ हउँ करमि । णन्दीसरक्खु जेँ पइसरमि' ॥४॥
गउ एम भणेँवि णिय-पट्टणहोँ । सत्ताणु समप्पेँवि णन्दणहोँ ॥५॥
णीसरु जाउ णिविसन्तरेँण । जिह वज्जकण्ठु कालन्तरेँण ॥६॥

जिनमें भ्रमर न गूँज रहे हो ।।१-८।।

घत्ता—शाखाएँ विना बन्दरोंके नही है, वानर भी ऐसे नही जो बोल न रहे हो। उन्हें देखता हुआ विद्याधर श्रीकण्ठ वही बस गया ।।१।।

[७] श्रीकण्ठ उनके साथ क्रीड़ा करने लगा। उन्हें दूसरों-से पकड़वाता, और स्वयं पकडता। वह किष्क महीधरकी चोटीपर गया। और उसपर चौदह योजन विस्तारका नगर बनाया। समूचा स्वर्णमय और अन्नमय था, उसका नाम किष्कपुर रखा गया। जिसमे चन्द्रकान्त मणिकी चाँदनीको चन्द्रमा समझकर लोग असमयमें ही वन्दना करने लगते। जहाँ सूर्यकान्त मणिकी कान्तिको सूर्य समझकर दीपक ज्वालाएँ छोडने लगते, जहाँ नीले मणियोकी कतारोसे भगुर भौहोंवाले, मोतियोके तोरणोंसे दाँत निकाले हुए और विद्रुमद्वाररूपी रक्तिम अधरोवाले घर ऐसे मालूम होते है जैसे एक-दूसरेपर हँस रहे है। तब इसी बीच श्रीकण्ठका मनोरंजन करनेवाला वज्रकण्ठ नामका पुत्र हुआ ।।१-८।।

घत्ता—एक दिन नन्दीश्वर द्वीपको जाते हुए देवागमनको देखकर त्रिलोक प्रदीप परमजिनकी वन्दना भक्तिके लिए वह भी गया ।।९।।

[८] अपनी सेना, परिवार और ध्वजके साथ जैसे ही वह मानुषोत्तर पर्वतपर गया, वैसे ही उसका गमन प्रतिरुद्ध हो गया, वैसे ही, जैसे खोटे मुनिके लिए सिद्धालय रुद्ध हो जाता है। वह सोचता है, "मैने जन्मान्तरमे क्या किया था कि जिससे दूसरे देवता चले गये, परन्तु मेरा विमान रुक गया। अच्छा, मैं भी घोर वीर तप करूँगा जिससे नन्दीश्वर द्वीपमें प्रवेश पा सकूँ।" यह सोचकर वह अपने नगरको लौट गया, राज्यपरम्परा अपने पुत्रको सौपकर आधे पलमे प्रव्रजित हो

तिह इन्दाउहु तिह इन्दमइ । तिह मेरु स-मन्दरु पवणगइ ॥७॥
तिह रविपहु एम सुहासणइँ । ववगयइँ अट्ठ सीहासणइँ ॥८॥

घत्ता

णवमउ णामेँ अमरपहु वासुपुज्ज-सेयस-जिणिन्दहुँ ।
अन्तरेँ विहि मि परिट्ठियउ छण-पुव्वण्हु जेम रवि-चन्दहुँ ॥९॥

[९]

परिणन्तहोँ लङ्काहिव-दुहिय । तहोँ पङ्गणेँ केण वि कइ लिहिय ॥१॥
दीहर-लङ्गूलारत्त-मुह । कमु दिन्ति व धावन्ति व समुह ॥२॥
त पेक्खेँवि साहामय-णिवहु । भइयएँ मुच्छाविय राय-वहु ॥३॥
एत्थन्तरेँ कुविउ णराहिवइ । 'त मारहु लिहिया जेण कइ' ॥४॥
पणवेप्पिणु मन्तिहिं उवसमिउ । 'कइ-णिवहु ण केण वि अइकमिउ ॥५॥
एयहुँ जि पसाएं राय-सिय । तउ पेसणयारी जेम तिय ॥६॥
एयहुँ जेँ पसाएं रणेँ अजउ । जगेँ वाणर-वसु पसिद्धि-गउ ॥७॥
सिरिकण्ठहोँ लग्गेँ वि कइ-सयइँ । एयइँ जेँ तुम्ह कुल-देवयइँ ॥८॥

घत्ता

त णिसुणेँवि परितुट्ठएँण अइकमिय (?) णमिय मरिसाविय ।
णिम्मल-कुलहोँ कलङ्कु जिह मउडेँ चिन्धेँ धएँ छत्तेँ लिहाविय ॥९॥

[१०]

ते वाणर-वसु पसिद्धि-गउ । विण्णि वि सेढिउँ वसिकरेँवि थिउ ॥१॥
उप्पण्णु कइद्धउ तासु सुउ । कइधयहोँ वि पडिवलु पवर-भुउ ॥२॥
पडिवलहोँ वि णयणाणन्दु पुणु । पुणु खयराणन्दु विसाल-गुणु ॥३॥
पुणु गिरिणन्दणु पुणु उवहिरउ । तहोँ परम-मित्तु पडिपक्ख-खउ ॥४॥
तडिकेसि-णामु लङ्काहिवइ । विज्जाहर-सामिउ गयणगइ ॥५॥
एक्कहि दिणेँ उववणु णीसरिउ । पुणु वुड्ढण-वाविहेँ पइसरिउ ॥६॥

गया। जिस प्रकार वज्रकण्ठ, इन्द्रायुध, इन्द्रमूर्ति, मेरु, समन्दर, पवनगति और रविप्रभु, इस प्रकार आठ सुखद सिंहासन बीत गये ॥१-८॥

घत्ता—नौवाँ अमरप्रभ, वासुपूज्य और श्रेयान्स जिनेन्द्रके बीचमे ऐसे ही प्रतिष्ठित था, जैसे सूर्य और चन्द्रमा, दोनोके मध्य पूर्णिमाका पूर्वाह्न ॥९॥ 'अ

[९] लंका नरेशकी कन्यासे विवाह करते समय उसके ऑगनमे किसीने बन्दरोके चित्र बना दिये। लम्बी पूँछ और लाल-लाल मुँहवाले जैसे छलांग भरकर सामने दौड़ते हुए। वानरोके उस चित्रसमूहको देखकर मारे डरके, राजवधू मूर्च्छित हो गयी। इससे राजा क्रुद्ध हो गया। (उसने कहा), "उसे मार डालो जिसने ये बन्दर लिखे"। तब मन्त्रियोंने उसे शान्त किया कि वानरसमूहका अतिक्रमण आजतक किसीने नही किया। इन्हींके प्रसादसे यह राज्यश्री, तुम्हारी आज्ञाकारी स्त्रीके समान है। इन्हीके प्रसादसे तुम युद्धमे अजेय हो। और इन्हीके कारण वानरवंश दुनियामे प्रसिद्ध हुआ। श्रीकण्ठके समयसे लेकर ये सैकड़ो वानर तुम्हारे कुलदेवता रहे है ॥१-८॥

घत्ता—यह सुनकर सन्तुष्ट मन अमरप्रभने उनसे क्षमा माँगी और प्रणाम किया, तथा अपने पवित्र कुलके चिह्नके रूपमे उन्हें पताकाओ, ध्वज और छत्रोंपर अंकित करवाया ॥९॥

[१०] उसीसे यह वानरवंश प्रसिद्ध हुआ। और वह दोनों श्रेणियोको जीतकर रहने लगा। उसका पुत्र कपिध्वज उत्पन्न हुआ, कपिध्वजका प्रवर भुज प्रतिवल, फिर प्रतिबलका नयनानन्द, फिर विशालगुण खेचरानन्द, फिर गिरिनन्दन, फिर उदधिरथ, उसका परममित्र, शत्रुपक्षका क्षय करनेवाला, तडित्केश लंकानरेश था। विद्याधरोका स्वामी, और आकाशगामी वह एक उपवनमे गया और स्नान करनेकी बावड़ीमें

माणुवि ताम तहोँ तक्खणेँण । घण-मिहरहि फाडिय सयडेँण ॥७॥
तेण वि णारायहिँ विद्धु कइ । गउ तउ तड तरुवर-मूलेँ जइ ॥८॥

घत्ता

रुद्द-णमोक्कारहोँ फलेँण उवहिकुमार देउ उप्पण्णउ ।
णियय-भवन्तरु सम्भरेँवि विज्जुकेसु तउ तउ अवइण्णउ ॥९॥

[११]

तडिकेसु णिएँवि विहाइयउ । 'हउँ एण हयासेँ घाइयउ ॥१॥
अज्जु वि मणेँ मच्छरु समुव्वहइ । जउ पेक्खइ तउ कइवर वहइ ॥२॥
केत्तडउ वहेसइ खुद्दु खलु । उप्पायमि माया-पमय-वलु' ॥३॥
तो एम भणेँवि सालामियइँ । गिरिवर-सकासइँ णिम्मियइँ ॥४॥
रत्तमुहइँ पुच्छ-पईहरइँ । बुप्पार-घोर-घग्घर-सरइँ ॥५॥
आणत्तइँ उप्परि धाइयइँ । जलेँ थलेँ आयासेँ ण माइयइँ ॥६॥
अण्णइँ उम्मूलिय-तरुवरइँ । अण्णइँ संचालिय-महिहरइँ ॥७॥
अण्णइँ उग्गामिय-पहरणइँ । अण्णइँ लंगूल-पईहरइँ ॥८॥

घत्ता

अण्णइँ हुयवह हत्थाइँ अण्णइँ पुणु अण्णेँहिँ उप्पाएँहिँ ।
रूवइँ कालहोँ केराइँ आवेँ वि थियइँ णाइँ बहु-भाएँहिँ ॥९॥

[१२]

अण्णहि कोक्किउ लङ्काहिवइ । 'तिह पहरु पाव जिह णिहउ कइ' ॥१॥
त णिसुणेँवि णरवइ कम्पियउ । 'किं कहि मि पवङ्गमु जम्पियउ' ॥२॥
कि कहि मि कइन्दहोँ पहरणइँ । आयइँ लहुआइँ ण कारणइँ ॥३॥
चिन्तेवि महाभय-पत्थएँण । वोल्लाविय पणविय-सत्थएँण ॥४॥
'के तुम्हइँ काइँ अ-खन्ति किय । कज्जेण केण सण्णहेँवि थिय' ॥५॥

घुसा। इतनेमें उसकी महादेवीके स्तनके अग्रभागको तत्काल एक वानरने फाड डाला। उसने भी तीरोंसे वानरको छेद दिया। कपि तरुवरके मूलमें वहाँ गया, जहाँ एक मुनिवर थे ॥१-८॥

घत्ता—वह वानर णमोकार मन्त्र पानेके फलके कारण स्वर्गमें उदधिकुमार देव हुआ। अपने जन्मान्तरको याद कर जहाँ तडित्केश था वहाँ वह देव अवतीर्ण हुआ ॥९॥

[११] तडित्केशको देखते ही वह क्रोधसे भर उठा, "मैं इसी हताशके द्वारा मारा गया। आज भी इसके मनमें शल्य है, और जहाँ देखता है, वहीं वानरोंको मार देता है। यह क्षुद्र नीच कितने बन्दर मारेगा, मैं 'मायावी वानर सेना' उत्पन्न करता हूँ।" यह सोचकर उसने पहाड़के समान बड़े-बड़े वानरो-की रचना की। लालमुख और लम्बी पूँछवाले वे बुक्कार और घग्घरके घोर शब्द कर रहे थे। आज्ञापित वे ऊपर दौड रहे थे, जल, थल और नभ कहीं भी नहीं समा रहे थे। कुछने बड़े-बड़े पेड़ उखाड लिये, कुछने महीधर संचालित कर दिये, कुछने हथियार ले लिये और कइयोंने अपनी लम्बी पूँछे उठा लीं ॥१-८॥

घत्ता—कुछ हाथमें आग लिये हुए थे, दूसरे, दूसरे-दूसरे साधनोंसे युक्त थे। ऐसा जान पडता था, मानो कालके रूप ही अनेक भागोंमें आकर स्थित हों ॥९॥

[१२] एकने जाकर लंकानरेशको ललकारा, "हे पाप, उसी प्रकार प्रहार कर जिस प्रकार कपिको मारा था।" यह सुनकर राजा काँप गया कि कहीं वानर भी बोलते हैं? क्या कहीं वानरोंके भी हथियार होते हैं? यहाँ कोई मामूली कारण नहीं है? महाभयसे आक्रान्त और अपना मस्तक झुकाते हुए उसने कपिसे कहा, "आप लोग कौन हैं? यह अशान्ति क्यों मचा रखी है? किस कारण आप तैयार होकर यहाँ स्थित हैं?"

तं णिसुणेंवि चविउ पमय-णिवहु । 'किं पुव्व-वइरु वीसरिउ पहु ॥६॥
जइयहुं जल कीलएँ आइयउ । महएवि कज्जें कइ घाइयउ ॥७॥
रिसि-पञ्चणमोक्कारहुं वलेंण । सुरवरु उप्पण्णु तेण फलेंण ॥८॥

घत्ता

वइरु तुहारउ सभरेंवि सो हउं एक्कु जि थिउ वहु-भाएँ हिं ।
सेरउ अच्छहि काइं रणें जिम अब्भिडु जिम पडु महु पाएँ हिं ॥९॥

[१३]

त णिसुणेंवि णमिउ णराहिवइ । अमरेण वि दरिसिय अमर-गइ ॥१॥
णिउ विज्जुकेसु करें धरेंवि तहिं । णिवसइ महरिसि चउणाणि जहिं ॥२॥
पयाहिण करेंवि गुरु-भत्ति किय । वन्देप्पिणु विण्णि मि पुरउ थिय ॥३॥
सव्वङ्गिउ सुरवरु हरिसियउ । 'एँहु जम्मु एण महु दरिसियउ ॥४॥
अज्जु वि लक्खिज्जइ पायडउ । महु केरउ एउ सरीरडउ' ॥५॥
त पेक्खेंवि तडिकेसु वि डरिउ । ण पवण-छित्तु तरु थरहरिउ ॥६॥
पुणु पुच्छिउ महरिसि 'धम्मु कहें । परिभमहुं जेण णउ णरय-पहें' ॥७॥
त णिसुणेंवि चवइ चारु चरिउ । 'महु अत्थि अण्णु परमायरिउ ॥८॥
सो कहइ धम्मु सव्वत्तिहरु । पइसहुं जि जिणालउ सन्तिहरु' ॥९॥
परिओसे तिण्णि वि उच्चलिय । वाहुवलि-भरह-रिसह व मिलिय॥१०॥

घत्ता

दिट्ठु महारिसि चेइ-हरें णरवइ-उवहिकुमार-मुणिन्देंहिं ।
परम-जिणिन्दु समोसरणें ण धरणिन्द-सुरिन्द-णरिन्देंहिं ॥११॥

[१४]

पणवेप्पिणु पुच्छिउ परम-रिसि । 'दरिसावि भडारा धम्म-दिसि' ॥१॥
परमेसरु जम्पइ जइ-पवरु । तइ-काल-वुद्धि चउ-णाण-धरु ॥२॥
'धम्मेण जाण-जम्पाण-धय । धम्मेण भिच्च रह-तुरय-गय ॥३॥

यह सुनकर वानरसमूह बोला, "क्या राजा तुम पुराना वैर भूल गये कि जब तुम जलक्रीड़ाके लिए आये थे और महादेवीके कारण तुमने कपिको मारा था। ऋषिके पचणमोकार मन्त्रके प्रभावसे मै सुरवर उत्पन्न हुआ ॥१-८॥

घत्ता—तुम्हारे वैरकी याद कर, यहाँ मै एक होकर भी अनेक भागोंमे स्थित हूँ। अब तुम युद्धमे शान्त क्यो हो? या तो लड़ो या फिर मेरे पैरोंमे गिरो" ॥९॥

[१३] यह सुनकर राजा नत हो गया। अमरने भी अपनी अमरगति दिखायी। वह तडित्केशको हाथ पकड़कर वहाँ ले गया जहाँ चार ज्ञानके धारक महामुनि थे। प्रदक्षिणा देकर गुरुभक्ति की और वन्दना करके दोनो सामने बैठ गये। देवका अंग-अंग हर्पित हो उठा। (वह बोला), "यह जन्म इन्होंने हमे दिखाया, आज भी मेरा यह प्राकृत शरीर देखा जा सकता है।" उसे देखकर तडित्केश भी डर गया मानो हवाके झोंकेसे तरुवर ही काँप उठा हो? फिर उसने महामुनिसे कहा, "धर्म बताइए, जिससे मै नरकपथमे भ्रमण न करूँ।" यह सुनकर सुन्दर चरित मुनि कहते है, "मेरे एक दूसरे परम आचार्य है, वह सब प्रकारकी पीड़ा दूर करनेवाला धर्म बताते है, हम शान्ति जिनालयमे प्रवेश करे।" परितोपके साथ तीनो चले जैसे भरत, बाहुबलि और ऋषभ मिल गये हो ॥१-१०॥

घत्ता—नरपति उदधिकुमार और मुनीन्द्रने चैत्यगृहमें परमाचार्यको देखा, मानो समवशरणमे परमजिनेन्द्र को धरणेन्द्र देवेन्द्र और नरेन्द्रने देखा हो ॥११॥

[१४] प्रणाम कर उन्होंने परमऋपिसे पूछा, "आदरणीय, धर्मकी दिशाका उपदेश दे।" परमेश्वर, जो मुनिप्रवर त्रिकाल बुद्धि और चार ज्ञानके धारी है, कहते है, "धर्मसे यान, जंपाव (?) और ध्वज होते है, धर्मसे मृत्यु, रथ, तुरंग और गज मिलते है,

धम्मेणाहरण-विलेवणइँ । धम्मेण णियासण-भोयणइँ ॥४॥
धम्मेण कलत्तइँ मणहरइँ । धम्मेण छुहा-पण्डुर-घरइँ ॥५॥
धम्मेण पिण्ड-पीणत्थणउ । चमरइँ पाडन्ति वरङ्गणउ ॥६॥
धम्मेण मणुय-देवत्तणइँ । बलएव-वासुएवत्तणइँ ॥७॥
धम्मेण अरह-सिद्धत्तणइँ । तित्थङ्कर-चक्कहरत्तणइँ ॥८॥

घत्ता

एक्कें धम्मे होन्तएँण इन्दा देव वि सेव करन्ति ।
धम्म-विहूणहों माणुसहों चण्डाल वि पङ्गणएँ ण ठन्ति' ॥९॥

[१५]

तडिकेसें पुच्छिउ पुणु वि गुरु । 'अण्णहिँ भवेँ को हउँ को व सुरु' ॥१॥
जइ जम्पइ 'णिसुणुत्तर-दिसएँ । जाओ सि आसि कासी विसएँ ॥२॥
तुहुँ साहु एहु धाणुक्कु तहिँ । आइउ तरु-मूलेँ वि थिओ सि जहिँ ॥३॥
णिग्गन्थु णिएँवि उवहासु कउ । ईसीसुप्पण्णु कसाउ तउ ॥४॥
अज्जँ वि काविट्ठ-सग्ग-गमणु । पत्तो सि णवर जोइस-भवणु ॥५॥
तत्थहों वि चवेप्पिणु सुद्धमइ । हूओ सि एत्थ लङ्काहिवइ ॥६॥
धाणुक्किउ हिण्डेँवि भव-गहणेँ । उप्पण्णु पवङ्गमु पमय-वणेँ ॥७॥
पइँ हउ समाहि-मरणेण मुउ । पुणु गम्पिणु उवहि-कुमारु हुउ' ॥८॥

घत्ता

त णिसुणेँवि लङ्केसरेँण रज्जेँ सुकेसु थवेँवि परमत्थे ।
मुएँवि कु-वेस व राय-सिय तव-सिय-वहुय लइय सइँ हत्थे ॥९॥

[१६]

ज विज्जुकेसु णिग्गन्थु थिउ । पञ्चेँहिँ मुट्ठिहिँ सिरेँ लोउ किउ ॥१॥
त कडय-मउड-कुण्डल-धरेँण । सम्मत्तु लइउ दिढु सुरवरेँण ॥२॥
एत्थन्तरेँ किक्क-पुरेसरहों । गउ लेहु कइद्धय-सेहरहों ॥३॥
महि-मण्डलेँ घत्तिउ दिट्ठु किह । णावालउ गङ्गा-वाहु जिह ॥४॥

धर्मसे आभरण और विलेपन, धर्मसे नृपासन और भोजन, धर्मसे सुन्दर स्त्रियाँ, धर्मसे चूनेसे पुते सुन्दर घर, धर्मसे पीन स्तनोंवाली वारांगनाएँ सुन्दर चमर डुलाती है। धर्मसे मनुष्यत्व और देवत्व, बलदेवत्व और वासुदेवत्व। धर्मसे अर्हत् और सिद्ध तीर्थंकरत्व और चक्रवर्तित्व ॥१–८॥

घत्ता—एक धर्मके रहनेपर इन्द्र और देवता सेवा करते है, जबकि धर्महीन आदमीके घरके आँगनमे चाण्डाल तक नही रहते" ॥९॥

[१५] तडित्केशने तब पुनः गुरुसे पूछा, "दूसरे भवमे मै कौन था, और यह देव क्या था ?" यतिवर बताते हैं, "सुनो, उत्तर दिशामें काशीमे तुमने जन्म लिया था। तुम साधु थे, और यही वहाँ धनुर्धारी था। यह तरुमूलमे आया जहाँ कि तुम बैठे हुए थे। निर्ग्रन्थ देखकर उसने तुम्हारा मजाक उडाया, इससे तुम्हे भी थोडी-सी कषाय हो गयी। कापित्थ स्वर्गके गमनका निदान भंग कर, तुम केवल ज्योतिषभवनमे उत्पन्न हुए। वहाँसे आकर, शुद्धमति यह लंकाका नरेश हो। वह धानुष्क भी भवग्रहणमें घूमने-फिरनेके बाद, वानर बना। तुमसे आहत, समाधिमरणसे मरकर स्वर्गमें देव हुआ उदधिकुमारके नामसे" ॥१–८॥

घत्ता—यह सुनकर लंकानरेशने राज्यमें सुकेशको स्थापित कर, वास्तवमे कुवेश और राज्यश्रीको छोडते हुए तपश्रीरूपी वधूका पाणिग्रहण लिया ॥९॥

[१६] जब तडित्केश निर्ग्रन्थ हुआ तो उसने पाँच मुट्ठियों-से केशलोंच किया। कटक, मुकुट और कुण्डल धारण करनेवाले उस उदधिकुमार देवने भी सम्यक्त्व ग्रहण कर लिया। इसके अनन्तर किष्कु नगरके राजा कपिध्वज श्रेष्ठके पास लेखपत्र गया। महीमण्डलमे पडा हुआ वह ऐसा दिखाई दिया जैसे

वह गंगाके प्रवाहकी तरह नावालउ (नामोंकी भरमार, और नावोंका घर) हो। विरक्त कुलकी तरह बन्धनसे मुक्त था। खलकी तरह स्वभावमें वक्र था। वह युवतीजनके समान वर्णको धारण करता है, आचार्यकी तरह चरित और कथा कहता। मानो अक्षर पंक्तियोंके प्रभुसे कहा गया, "तुम सुकेश-का पालन करना। तडित्केशीने तपश्री अपने हाथमें ले ली, हे प्रभु, तुम जैसा ठीक समझो, वह करो" ॥१-८॥

घत्ता—लेख ग्रहण कर उदधिरवने पुत्रको राज्य देकर दीक्षा ग्रहण कर ली। नगरमें प्रतिचन्द्र प्रतिष्ठित हुआ और वानर द्वीपका वह खुद उपभोग करने लगा ॥९॥

•

सातवीं सन्धि

प्रतिचन्द्रके दो पुत्र हुए, प्रवरबाहु किष्किन्ध और अन्धक, मानो ऋषभजिनके दो पुत्र, भरत और बाहुबलि हों।

[१] उन दोनोंने शीघ्र ही शरीर सम्पदा (यौवन) प्राप्त कर ली। उस अवसरपर किसीने यह बात कही—"विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें धन और स्वर्णसे परिपूर्ण आदित्यनगर है। उसमें विद्यामन्दिर नामका राजा है। सुन्दर वेगमती उसकी अग्रमहिषी है। श्रीमाला नामकी उसकी कन्या है, जिसकी आँखें नीलकमलके समान और मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान। वह बाला केलेके अंकुरके समान सुकुमार है। वह कल किसीको माला पहनायेगी।" यह सुनकर किष्किन्ध और अन्धक दोनों प्रबल कपिध्वजियोंने जानेकी तैयारी की। विमान निकाल लिये गये। योद्धा उनमें सवार हुए, आकाशमें चलते हुए उनकी शोभा निराली थी। आधे पलमें दक्षिण श्रेणीमें पहुँच गये जहाँ समस्त विद्याधर इकट्ठे हुए थे ॥१-८॥

घत्ता

किक्किन्धे दिट्ठु धउ राउलउ सु (?) पवणद्धउ ।
हक्कारइ णाइँ करयलु सिरिमालहे तणउ ॥९॥

[२]

णिय-णिय-थाणेहिँ णिबद्ध मञ्च । महकवि-कव्वालाव व सु-सञ्च ॥१॥
आरूढ सव्व मञ्चेसु तेसु चामियर-गत्त-मणि-भूसिएसु ॥२॥
परिभमिर-भमर-झङ्कारिएसु । णिविडायवत्त-अन्धारिएसु ॥३॥
रविकन्त-कन्ति-उज्जालिएसु । आलावणि-सद्द-वमालिएसु ॥४॥
मञ्चेसु तेसु थिय पहु चडेवि । वम्मह-णड णाडिज्जन्ति (?) के वि ॥५॥
भूसन्ति सरीरइँ वारवार । कण्ठाइँ मुअन्ति लयन्ति हार ॥६॥
सुन्दर सच्छाय वि कणय-डोर । अलिय जि धिवन्ति भणेवि थोर ॥७॥
गायन्ति हसन्ति पुणासणत्थ । अङ्गइँ मोडन्ति वलन्ति हत्थ ॥८॥

घत्ता

स-पसाहण सव्व थिय सम्मुह वरइत्त किह ।
'किर होसइ सिद्धि' आयएँ आसएँ समय जिह ॥९॥

[३]

सिरिमाल ताम करिणिहिँ वलग्ग । ण विज्जु महा-घण-कोडि लग्ग ॥१॥
सयलाहरणालङ्करिय-देह । ण णहेँ उम्मिल्लिय चन्द-लेह ॥२॥
अग्गिम-गणियारिहिँ चडिय धाइ । णिसि-पुरउ परिट्ठिय सञ्झ णाइ ॥३॥
दरिसाविउ णर-णिउरुम्बु तीएँ । ण वण-सिरि तरुवर महुयरीएँ ॥४॥
एहु सुन्दरि चन्दाणण-कुमारु । उग्घाउ एहु रणेँ दुण्णिवारु ॥५॥
एहु विजयसीहु रिउपलय-कालु । रहणेउर-पुरवर-सामिसालु ॥६॥
सयल वि णरवर वञ्चन्ति जाइ । अवरागम सम्मादिट्ठि णाइँ ॥७॥

घत्ता—किष्किन्धने देखा कि राज्यकुलका ध्वज हवामें उड़ रहा है, जैसे श्रीमालाका हाथ उसे पुकार रहा हो ॥९॥

[२] अपने-अपने स्थानों पर मंच बने हुए थे जो महाकविके काव्य-वचनकी तरह सुगठित (अच्छी तरह निर्मित) थे। सोनेके गत्तों और मणियोंसे भूपित उन मंचोंपर सब बैठ गये। जिनमें भ्रमण करते हुए भौंरोंकी ध्वनि गूँज रही है, सघन आतपत्रोंसे अन्धकार फैल रहा है, सूर्यकान्तकी किरणोंसे जो आलोकित है, जो वीणाके शब्दोंसे मुखर है, ऐसे मंचोंपर चढ़कर राजा लोग बैठ गये। वामन और नट की तरह कोई अपना अभिनय कर रहे थे। बार-बार अपना शरीर अलकृत करते हुए उतारकर हार धारण करते। कोई सुन्दर अच्छी कान्तिवाली सोनेकी करधनी, यह कहकर कि यह बडी है, झूठमूठ फेक देता, कोई आसनपर बैठे बैठे हँसते और गाते है, अंग मोडते है और हाथ घुमाते है ॥१-८॥

घत्ता—सभी वर प्रसाधन किये हुए सामने ऐसे स्थित थे, जैसे 'सिद्धि होगी' इस आशा से सभी समद (प्रसन्न) हों ॥९॥

[३] तब श्रीमाला हथिनीपर चढ गयी मानो विजली ही महामेघमालासे जा लगी हो। समस्त आभरणों से अलंकृत उसकी देह ऐसी जान पड़ती थी मानो आकाशमे चन्द्रलेखा प्रकाशित हुई हो। एक स्त्रीने राजसमूह उसे इस प्रकार दिखाया, मानो मधुकरी वनश्रीको तरुवर दिखा रही हो। (वह कहती), "हे सुन्दरि, वह कुमार चन्द्रानन है, वह युद्धमे दुर्निवार उद्धत है, वह शत्रुओके लिए प्रलयकाल विजयसिंह है, जो रथनूपुर नगर का श्रेष्ठ स्वामी है। वह सभी नरवरोंको छोडती हुई, उसी प्रकार आगे बढती है जैसे सम्यग् दृष्टि दूसरोके आगमको

पुर उज्जोवन्तिय दीवि जेम । पच्छइ अन्धारु करन्ति तेम ॥८॥
ण सिद्धि कु-मुणिवर परिहरन्ति । दुग्गन्ध रुक्ख ण भमर-पन्ति ॥९॥

घत्ता

गणियारिएँ वाल णिय किक्किन्धहोँ पासु किह ।
सरि-सलिल-रहल्लिएँ (?) कलहंसहोँ कलहंसि जिह ॥१०॥

[४]

किक्किन्धहोँ घल्लिय माल ताएँ । ण मेहेसरहोँ सुलोयणाएँ ॥१॥
आसण्ण परिट्ठिय विमल-देह । ण कणयगिरिहेँ णव-चन्दलेह ॥२॥
विच्छाय जाय सयल वि णरिन्द । ससि-जोण्हएँ विणु ण महिहरिन्द ॥३
ण कु-तवसि परम-गइहेँ चुक्क । ण पङ्कय-सर रवि-कन्ति-मुक्क ॥४॥
एत्थन्तरेँ सिरिमाला-वईहु । कोवग्गि-पलीविउ विजयसीहु ॥५॥
'अब्भन्तरेँ विज्जाहर-वराहुँ । पइसारु दिण्णु कि वज्जराहुँ ॥६॥
उद्दालहोँ वहु वरइत्तु हणहो । वाणर-वस-यरहोँ कन्दु खणहोँ ॥७॥
त वयणु सुणेप्पिणु अन्धएण । हक्कारिउ अमरिस-कुद्धएण ॥८॥

घत्ता

'विज्जाहर तुम्हेँ अम्हेँ कइद्धय कवणु छलु ।
लइ पहरणु पाव जाम ण पाडमि सिर-कमलु' ॥९॥

[५]

त वयणु सुणेप्पिणु विजयसीहु । उत्थरिउ पवर-भुव-फलिह-दीहु ॥१॥
अब्भिट्टु जुज्झु विज्जाहराहँ । सिरिमाला-कारणेँ दुद्धराहँ ॥२॥
साहणइ मि अवरोप्परु भिडन्ति । ण सुकइ-कव्व-वयणइँ वडन्ति ॥३॥
भज्जन्ति खम्भ विहडन्ति मञ्च । दुक्कवि-कव्वालाव व कु-सञ्च ॥४॥
हय गय सुण्णासण सचरन्ति । ण पसुलि-लोयण परिभमन्ति ॥५॥
रणु विज्जाहर-वाणरहुँ जाम । लद्धाहिउ पत्तु सुकेसु ताम ॥६॥

छोड़ देता है। दीपिका जैसे आगे-आगे प्रकाश करती हुई, पीछे अन्धकार छोड़ती जाती है, जैसे सिद्धि खोटे मुनिवरको छोड़ देती है ॥१-९॥

घत्ता—हथिनी बालाको किष्किन्धके पास इस प्रकार ले गयी। जैसे नदीकी लहर कलहंसीको कलहंसके पास ले जाती है ॥१०॥

[४] उसने किष्किन्धको माला पहना दी, मानो सुलोचनाने मेघेश्वरको माला पहना दी हो। विमलदेह वह उसीके पास बैठ गयी, मानो कनकगिरि पर नवचन्द्रलेखा हो। सभी राजा कान्तिहीन हो गये, मानो चन्द्रज्योत्स्नाके बिना महीधरेन्द्र हो, मानो परमगतिसे चूका हुआ खोटा तपस्वी हो, मानो सूर्यकी कान्तिसे रहित कमलोका सरोवर हो। इसी बीच विजयसिंह श्रीमालाके पतिपर क्रोधकी ज्वालासे भड़क उठा, "श्रेष्ठ विद्याधरोके मध्य वानरोंको प्रवेश क्यो दिया गया? वधू छीन लो, और वरको मार डालो, वानरवंशरूपी वृक्ष की जड़ खोद दो।" यह शब्द सुनकर, अमर्षसे भरकर अन्धकने उसे ललकारा ॥१-८॥

घत्ता—तुम विद्याधर हो और हम वानर? यह कौन-सा छल है? ले पाप, आक्रमण कर जबतक मै तेरा सिरकमल नही गिराता ॥९॥

[५] यह वचन सुनकर प्रवल और विकसित बाहुओंवाला विजयसिंह उछल पड़ा। इस प्रकार श्रीमालाके लिए दुर्धर विद्याधरोमें संघर्ष होने लगा। सेनाएँ भी आपसमे उसी प्रकार भिड़ गयी, मानो सुकविके काव्य वचन आपसमें मिल गये हो। शून्य आसनवाले अश्व और गज घूम रहे है, मानो कुकविके अगठित काव्य वचन हो। जिस समय विद्याधरों और वानरोंका युद्ध चल रहा था, असमय लंकानरेश सुकेश वहाँ पहुँचा।

आलग्गु सो वि वणें जिह हुआसु । जसु ढुक्कइ सो सो लेइ णासु ॥७॥
तहिं अवसरें वेहाविद्धएण । रणें विजयसीहु हउ अन्धएण ॥८॥

घत्ता

महि-मण्डलें सीसु दीसइ असिवर-खण्डियउ ।
णावइ सयवत्तु तोडेंवि हसें छण्डियउ ॥९॥

[६]

विणिवाइएँ विजयमइन्दें खुद्दें । किएँ पाराउट्ठएँ वल-समुद्दें ॥१॥
तुट्ठाणणु भणइ सुकेसु एम । 'सिरिमाल लएप्पिणु जाहुँ देव' ॥२॥
ते वयणे गय कण्टइय-गत्त । णिविसद्धे किक्कु-पुरक्खु पत्त ॥३॥
एत्तहें वि दुट्ठ-णिट्ठवण-हेउ । केण वि णिसुणाविउ असणिवेउ ॥४॥
'परमेसर पर-णरवर-सिरीहु । ओलग्गइ पाणें हि विजयसीहु ॥५॥
पडिचन्दहों सुएँण कइद्धएण । आवट्टिउ जम-मुहें अन्धएण' ॥६॥
त वयणु सुणेंवि ण करन्तु खेउ । सण्णहेंवि पधाइउ असणिवेउ ॥७॥
चउरङ्गे विज्जाहर-वलेण । परिवेढिउ पट्टणु तें छलेण ॥८॥

घत्ता

हक्कारिय वे वि 'पावहों पमय-महद्धयहो ।
लइ ढुक्कउ कालु णिग्गहों किक्किन्धन्धयहों' ॥९॥

[७]

पुणु पच्छएँ विप्फुरियाणणेण । हक्कारिय विज्जुलवाहणेण ॥१॥
'अरें भाइ सहारउ णिहउ जेम । दुद्धर-सर-धोरणि धरहों तेम' ॥२॥
तं णिसुणेंवि दूसह-दसणेहिं । पडिचन्द-णरिन्दहों णन्दणेहिं ॥३॥
णिग्गन्तहि जण-णिग्गय-पयावु । किउ पाराउट्टउ सेण्णु सावु ॥४॥
सो असणिवेउ अन्धयहों वलिउ । तडिवाहणेण किक्किन्धु खलिउ ॥५॥
पहरणइँ मुयन्ति सु-दारुणाइँ । खणें अग्गेयइँ खणें वारुणाइँ ॥६॥
खणें पवणत्थइँ खणें थम्भणाइँ । खणें वामोहण-उम्मोहणाइँ ॥७॥

वह वनमें दावानलकी तरह युद्धमे भिड गया, वह जहाँ पहुँचता, वही विनाश मच जाता। उस युद्धमें क्रोधसे भरे हुए अन्धकने विजयसिंहका काम तमाम कर दिया ॥१-८॥

घत्ता—तलवारसे कटा हुआ उसका सिर धरती पर ऐसा दिखाई देता है मानो हंसने कमल तोडकर छोड़ दिया हो ॥९॥

[६] क्षुद्र विजयसिंहके मारे जाने, और सेनारूपी समुद्रका पार पानेके बाद, प्रसन्नमुख सुकेश इस प्रकार कहता है, "हे देव, श्रीमालाको लेकर चलें।" इन शब्दोंसे पुलकित शरीर वे गये और आधे क्षणमें किष्किन्ध नगर जा पहुँचे। यहाँपर भी किसीने दुष्टोंका नाश करनेमें प्रमुख अशनिवेगसे जाकर कहा, "हे परमेश्वर, शत्रुराजाओमें श्रेष्ठ विजयसिंहको, जो प्राणोसे सेवा करता है, प्रतिचन्द्रके पुत्र कपिध्वजी अन्धकने यमके मुँहमे पहुँचा दिया है।" यह वचन सुनकर अशनिवेग बिना किसी खेदके तैयार होकर दौडा और विद्याधरोंकी चतुरंग सेनासे छलपूर्वक उसके नगरको घेर लिया ॥१-८॥

घत्ता—उन दोनोंको ललकारा, "अरे पापी कपिध्वजी किष्किन्ध और अन्धक निकलो, तुम्हारा काल आ पहुँचा है"॥९॥

[७] उसके बाद तमतमाते हुए मुखवाले विद्युद्वाहनने ललकारा, "अरे, जिस प्रकार तुमने मेरे भाईको मारा है उसी प्रकार तुम मेरी दुर्धर तीरोकी बौछार झेलो।" यह सुनकर प्रतिचन्द्रके दुर्दर्शनीय पुत्रोंने निकलकर, जिसका प्रताप लोगोको विदित है, ऐसी समूची सेनाको यहाँसे वहाँ छान मारा। अशनिवेग अन्धककी ओर बढा। विद्युद्वाहनने किष्किन्धको स्खलित किया, वे भयंकर अस्त्रोंसे प्रहार करने लगे। क्षणमें आग्नेय अस्त्र, और क्षणमें वारुणास्त्र। क्षणमें पवनास्त्र, क्षणमें स्तम्भन अस्त्र, क्षणमें व्यामोहन और सम्मोहन। क्षणमें

खणें महियलॆ खणें णहयलें भमन्ति । खणें सन्दणें खणें जें विमाणें थन्ति ॥८

घत्ता

आयामें वि दुक्खु अन्धउ खग्गें कण्ठें हउ ।
णिउ पन्थ तेण जें सो विजयमइन्दु गउ ॥९॥

[८]

एत्तहें वि मिण्डिवालेण पहउ । किक्किन्ध-णराहिउ मुच्छ गउ ॥१॥
अच्छन्तउ परिचिन्तें वि मणेण । आमेल्लिउ विज्जुलवाहणेण ॥२॥
तहिं अवसरें ढुक्कु सुकेसु पासु । रहवरें छुहेवि णिउ णिय-णिवासु ॥३॥
पडिवाइउ चेयण-भाउ लद्धु । उट्ठन्तें पुच्छिउ परम-बन्धु ॥४॥
'कहिं गन्धउ' 'पेसण-चुक्क देव' । णिवडिउ पुणो वि तडि-रुक्खु जेम ॥५॥
पुणु पडिवाइउ पुणु आउ जीउ । हा पइँ विणु सुण्णउ पमय-दीउ ॥६॥
हा भाय सहोयर देहि वाय । हा पइँ विणु मेइणि विहव जाय' ॥७॥

घत्ता

तो भणइ सुकेसु ससउ णाह जिएवाहों ।
सिरें णिक्खएं खग्गें अवसरु कवणु रुएवाहों ॥८॥

[९]

विणु कज्जें वइरिहि अङ्गु देहि । पायाललङ्क पइसरहुँ एहि ॥१॥
जीवन्तहुँ सिज्झइ सव्वु कज्जु । एत्तिउ ण वि हउँ ण वि तुहुँ ण रज्जु॥२
तं णिसुणें वि वाणर-वस-सारु । णीसरिउ स-साहणु स-परिवारु ॥३॥
णासन्तु णिएँ वि हरिसिय-मणेण । रहु वाहिउ विज्जुलवाहणेण ॥४॥
कर धरिउ असणिवेएण पुत्तु । किं उत्तिम-पुरिसहँ एउ जुत्तु ॥५॥
णासन्तु णवन्तु सुवन्तु सत्तु । भुञ्जन्तु ण हम्मइ जलु पियन्तु ॥६॥
जे विजयसीहु हउ भुय-विसालु । सो णिउ कियन्त-दन्तन्तरालु ॥७॥

धरतीपर, क्षणमें आकाशमें घूमते हुए। एक क्षणसे विमानसे, एक क्षणसे स्यन्दन मे ॥१-८॥

घत्ता—बड़ी कठिनाईसे अशनिवेगने खड्गसे अन्धकको कण्ठमे आहत कर, उसे उसी पथपर भेज दिया, जिसपर कि विजयसिंह गया था ॥९॥

[८] यहाँ भी भिन्दपालसे आहत किष्किन्ध राजा मूर्च्छित हो गया। उसे पड़ा हुआ देखकर विद्युद्वाहनने छोड़ दिया। उस अवसरपर सुकेश उसके पास पहुँचा और रथवरमे डालकर उसे नृपभवनमे ले गया। हवा करने पर उसे होश आया। उठते ही उसने अपने भाईको पूछा। किसीने कहा, "अन्धक कहाँ देव, वह तो सेवासे चूक गया।" वह फिर किनारेके पेड़की तरह गिर पड़ा। फिरसे हवा की गयी और उसमे चेतना आयी। वह कहने लगा, "हा, तुम्हारे बिना वानरद्वीप सूना हो गया, हे भाई, हे सहोदर, तुम मुझसे बात करो, हा, तुम्हारे बिना यह धरती विधवा हो गयी ॥१-७॥

घत्ता—तब सुकेश कहता है, "हे स्वामी, जब जीनेमें सन्देह हो और सिर पर तलवार लटक रही हो, तब रोनेका यह कौन-सा अवसर है ॥८॥

[९] बिना कामके तुम शत्रुओंको अपना शरीर दे रहे हो, आओ पाताललोक चले। जीवित रहनेपर सब काम सिद्ध हो जायेंगे। यहाँ तो न मै हूँ, न तुम, और न यह राज्य।" यह सुनकर वानरवंश-शिरोमणि अपनी सेना और परिवारके साथ वहाँसे भाग निकला। उसे भागता हुआ देखकर हर्षितमन विद्युद्वाहनने अपना रथ हाँका। तब अशनिवेगने उसका हाथ पकड़ते हुए कहा, "उत्तम पुरुषके लिए यह ठीक नही है, भागते, प्रणाम करते, सोते, खाते और पानी पीते हुए शत्रुको मारना ठीक नही। जिसने विशालबाहु विजयसिंहको मारा

त णिसुणेँवि तडिवाहणु णियत्तु । लहु देसु पसाहिउ एक्क-छत्तु ॥८॥

घत्ता

णिग्घायहोँ लङ्क अण्णहेँ अण्णइँ पट्टणइँ ।
भुत्तइँ इच्छाएँ सु-कलत्तइँ व स-जोव्वणइँ ॥९॥

[१०]

किक्किन्ध सुकेसहँ पुर हरेवि । अवर वि विज्जाहर वसि करेवि ॥१॥
वहु-दिवसेँहिँ घण-पडलहँ णिएवि । त विजयसीह-दुहु समरेवि ॥२॥
सहसार-कुमारहोँ देवि रज्जु । अप्पुणु साहिउ पर-लोय-कज्जु ॥३॥
वहु काले किक्किन्धाहिवो वि । गउ वन्दण-हत्तिएँ मेरु सो वि ॥४॥
पल्लुट्टु पडीवउ णर-वरिट्ठु । महु पवर-महीहरु ताम दिट्ठु ॥५॥
जोवइ व पईहिय-लोयणेहिँ । हसइ व कमलायर-आणणेहिँ ॥६॥
गायइ व भमर-महुअरि-सरेहिँ । ण्हाइ व णिम्मल-जल-णिज्झरेहिँ ॥७॥
वीसमइ व ललिय-लयाहरेहिँ । पणवइ व फुल्ल-फल-गुरुभरेहिँ ॥८॥

घत्ता

त सेलु णिएवि कोक्कावेँवि णिय पय पउरु ।
किउ पट्टणु तेत्थु किक्किन्धे किक्किन्धपुरु ॥९॥

[११]

महु-महिहरो वि किक्किन्धु वुत्तु । उच्छुरउ ताम उप्पण्णु पुत्तु ॥१॥
अण्णु वि सूररउ कणिट्ठु तासु । वाहुवलि जेम भरहेसरासु ॥२॥
एत्तहेँ वि सुकेसहोँ तिण्णि पुत्त । सिरिमालि-सुमालि-सुमल्लवन्त ॥३॥
पोढत्तणेँ वुच्चइ तेहिँ ताउ । 'किं ण जाहुँ जेत्थु किक्किन्धराउ' ॥४॥

था, वह तो यमकी दाढोके भीतर भेज दिया गया है।" यह सुनकर विद्युद्वाहनने प्रयत्न छोड दिया। शीघ्र ही उसने अपने देशका एकछत्र प्रसाधन सम्हाल लिया ॥१-८॥

घत्ता—निर्घातको लंका और दूसरोको दूसरे-दूसरे नगर दिये जिन्हें वे, यौवनवती स्त्रियोकी तरह भोगने लगे ॥९॥

[१०] किष्किन्ध और सुकेशके नगरोका अपहरण कर, तथा दूसरे विद्याधरोंको अपने अधीन बना, बहुत दिनोके बाद मेघपटलोको देखकर अपने भाई विजयसिंहके दुःखको याद कर, विद्युद्वाहन विरक्त हो गया। कुमार सहस्रारको राज्य देकर उसने अपना परलोकका काम साधा। बहुत समयके अनन्तर किष्किन्धराज भी मेरु पर्वतपर वन्दना-भक्तिके लिए गया। वह नरश्रेष्ठ वापस लौटा, इतनेमे उसे मधु नामक विशाल महीधर दिखाई दिया, जो अपने प्रदीर्घ नेत्रोंसे ऐसा लगता था कि जैसे देख रहा है, कमलाकरोके मुखोंसे ऐसा लगता था कि जैसे हँस रहा है, भ्रमर और मधुकरियोंके स्वरोंसे ऐसा लगता था जैसे गा रहा है, निर्मल पानीके झरनोसे ऐसा लगता था जैसे स्नान कर रहा है, लतागृहोसे ऐसा लगता था जैसे विश्वस्त कर रहा है, फूलो और फलोके गुरुभारसे ऐसा लग रहा हे, मानो प्रणाम कर रहा है ॥१-८॥

घत्ता—उस पर्वतको देखकर उसने अपनी प्रमुख प्रजाको बुलवा लिया। किष्किन्धने वहाँ किष्किन्ध नामका नगर बसाया ॥९॥

[११] तबसे मधुमहीधर भी किष्किन्धके नामसे जाना जाने लगा। उसके ऋक्षरज पुत्र उत्पन्न हुआ। उससे छोटा, दूसरा एक और सूररज हुआ, वैसे ही जैसे भरतेश्वरका छोटा भाई बाहुबलि। यहाँ सुकेशके भी तीन पुत्र हुए, श्रीमालि, सुमालि और माल्यवन्त। प्रौढ युवक होनेपर उन्होने अपने पितासे पूछा,

त सुणेँवि जणेरें वुत्तु एम। थिय दाढुप्पाडिय सप्पु जेम ॥५॥
कहिँ जाहुँ मुएँ वि पायाललङ्क। चउपासिउ वइरिहुँ तणिय सङ्क ॥६॥
वणवाहण-पमुह णिरन्तराइँ। एत्तियइँ जाम रज्जन्तराइँ ॥७॥
अणुहुय लङ्क कामिणि व पवर। महु तणएँ सीसें अवहरिय णवर ॥८॥

घत्ता

त वयणु सुणेवि मालि पलित्तु दवग्गि जिह।
'उद्धद्धएँ रज्जें णिविस वि जिज्जइ ताय किह ॥९॥

[१२]

महुँ कहिय भडारा पइँ जि णित्ति। तिह जीवहि जिह परिभमइ कित्ति ॥१॥
तिह हसु जिह ण हसिज्जइ जणेण। तिह भुञ्ज जिह ण मुच्चहि धणेण ॥२॥
तिह जुज्झु जिह णिव्वुइ जणइ अङ्गु। तिह तजु जिह पुणु वि ण होइ सङ्गु ॥३॥
तिह चउ जिह वुच्चइ साहु साहु। तिह सचरु जिह सयणहँ ण डाहु ॥४॥
तिह सुणु जिह णिवसहि गुरुहुँ पासेँ। तिह मरु जिह णावहि गब्भवासेँ ॥५॥
तिह तउ करेँ जिह परितवइ गत्तु। तिह रज्जु पालेँ जिह णवइ सत्तु ॥६॥
किं जीएँ रिउ आसङ्किएण। किं पुरसें माण-कलङ्किएण ॥७॥
किं दव्वे दाण-विवज्जिएण। किं पुत्तें मइलइ वसु जेण ॥८॥

घत्ता

जइ कल्लएँ ताय लङ्काणयरि ण पइसरमि।
तो णियय-जणेरि इन्दाणी करयलेँ धरमि ॥९॥

[१३]

गय रयणि पयाणउ परएँ दिण्णु। हउ तूरु रसायलु णाइँ भिण्णु ॥१॥
सचल्लिउ साहणु णिरवसेसु। आरूढ के वि णर गयवरेसु ॥२॥
तुरएसु के वि केँ वि सन्दणेसु। सिविएसु के वि पच्चाणणेसु ॥३॥
परिवेढिय लङ्का-णयरि तेहिँ। ण महिहर-कोडि महा-घणेहिँ ॥४॥

"हम वहाँ क्यों न जाये जहाँ किष्किन्धराज है?" यह सुनकर पिता बोला, "हम यहाँ उस साँपकी तरह है, जिसकी दाढ उखाड ली गयी है, पाताल-लंका को छोडकर कहाँ जाये, चारों ओरसे दुश्मनोंकी शंका है? मेघवाहन प्रमुख, राज्यान्तर यहाँ जबतक निरन्तर बने हुए है, जिस लंका नगरीका हमने कामिनी की तरह भोग किया है, वही हमसे छीन ली गयी है" ॥१-८॥

घत्ता—यह वचन सुनकर मालि दावानलकी तरह प्रदीप्त हो उठा, "हे तात, राज्यके छीन लिये जानेपर एक पल भी किस प्रकार जिया जाता है? ॥९॥

[१२] हे आदरणीय, आपने ही यह नीति मुझे बतायी है कि उस प्रकार जीना चाहिए जिससे कीर्ति फैले, उस प्रकार हँसो कि जिससे लोग हँसी न उड़ा सके, इस प्रकार भोग करो कि धन समाप्त न हो, इस प्रकार लड़ो कि शरीरको सन्तोष प्राप्त हो, इस प्रकार त्याग करो कि फिरसे संग्रह न हो, इस प्रकार बोलो कि लोग वाह-वाह कर उठे, ऐसा चलो कि स्वजनोंको डाह न हो, इस प्रकार सुनो जिस प्रकार गुरुके पास रह सको, इस प्रकार मरो कि पुनः गर्भवासमें न आना पड़े। इस प्रकार तप करो कि शरीर तप जाये, इस प्रकार राज्य करो कि शत्रु झुक जाये। शत्रुसे आशंकित होकर जीनेसे क्या? मानसे कलंकित होकर जीनेसे क्या? दानसे रहित धनसे क्या? वंशको कलंकित पुत्रके होनेसे क्या? ॥१-८॥

घत्ता—हे तात, यदि कल मै लंकानगरीमे प्रवेश न करूँ, तो अपनी माँ इन्द्राणीको अपनी हथेली पर रखूँ" ॥९॥

[१३] रात बीत गयी, दिन आ गया। नगाड़े बज उठे, रसातल विदीर्ण हो उठा। समस्त सेना चल पड़ी। वे दोनो भी गजवरपर आरूढ हो गये। कोई अश्वोपर, कोई रथोंपर। कोई शिविकाओंमे। कोई सिंहोंपर। उन्होंने लंकानगरीको

ण पोढ-विलासिणि कामुएहिँ । ण सयवत्तिणि फुल्लन्धुएहिँ ॥५॥
किउ कलयलु रहसाऊरिएहिँ । पडिपहयइँ तूरइँ तूरिएहिँ ॥६॥
खञ्चिएँहिँ सञ्च तालिएँहिँ ताल । चउ-पासिउ उट्ठिय भड-वमाल ॥७॥
धाइउ लङ्काहिउ विप्फुरन्तु । रणेँ पाराउट्ठउ वलु करन्तु ॥८॥

घत्ता

ण मत्त-गइन्दु पञ्चाणणहोँ समावडिउ ।
सरहसु णिग्घाउ गम्पिणु मालिह अब्भिडिउ ॥९॥

[१४]

पहरन्ति परोप्परु तरुवरेहिँ । पुणु पाहाणेँहिँ पुणु गिरिवरेहिँ ॥१॥
पुणु विज्जारूवहिँ भीसणेहिँ । अहि-गरुड-कुम्भि पञ्चाणणेहिँ ॥२॥
पुणु णाराएहिँ भयङ्करेहिँ । भुयइन्दायाम-पईहरहिँ ॥३॥
छिन्दन्ति महारह-छत्त-धयइँ । वइयागरण व वायरण-पयइँ ॥४॥
एत्थन्तरेँ वाहिय-सन्दणेण । दणुवइ-इन्दाणिहेँ णन्दणेण ॥५॥
सयवारउ परिअञ्चेवि गयणेँ । हउ खग्गेँ छुद्द् कियन्त-वयणेँ ॥६॥
णिग्घाउ पडिउ णिग्घाउ जेम । महियलेँ णर णहेँ परितुट्ठ देव ॥७॥
चत्तारि वि धुव-परिहव-कलङ्क । जय-जय-सद्देण पइट्ठ लङ्क ॥८॥

घत्ता

सन्तिहेँ सन्तिहरेँ गम्पिणु वन्दण-हत्ति किय ।
सुविलासिणि जेम लङ्क स इ भुञ्जन्त थिय ॥९॥

घेर लिया जैसे महामेघोंने महीधर श्रेणीको घेर लिया ।। मानो प्रौढ विलासिनीको कामुकोने, मानो कमलिनीको भ्रमरों-ने। वेगसे आपूरित वे कोलाहल करने लगे, तूर्यकोंने नगाड़े वजा दिये। शंखधारियोने शंख और तालवालोने ताल। चारो ओरसे योद्धाओंका कोलाहल उठा। चमकता हुआ लकानरेश दौडा, युद्धमे सेनामें हलचल मचाता हुआ ॥१-८॥

घत्ता—निर्घात हर्षित होकर मालिसे इस प्रकार भिड़ गया जिस प्रकार मत्त गजेन्द्र सिहके सामने आ जाये ॥९॥

[१४] दोनो आपसमें प्रहार करते हैं, तरुवरोंसे, पाषाणोसे, गिरिवरोंसे, भीषण सर्प, गरुड, कुम्भी और सिह आदि नाना विद्यारूपोंसे, भयंकर तीरोंसे, (जो भुजगेन्द्रके आयामकी तरह दीर्घ थे), महारथ छत्र और ध्वजोंको उसी तरह छिन्न-भिन्न कर देते है जिस प्रकार वैयाकरण व्याकरणके पदो को। इसी बीच राक्षस और इन्द्राणीका पुत्र मालिने अपना रथ हाँककर, आकाशमें सौ बार घुमाकर निर्घातको तलवारसे आहत कर, यमके मुखमे डाल दिया। निर्घात आहत होकर निर्घातकी तरह ही धरतीपर गिर पडा, आकाशमे देवता सन्तुष्ट हुए, चारोने पराभवका कलंक धो डाला। उन्होने जय-जय शब्दके साथ लंकानगरीमे प्रवेश किया ॥१-८॥

घत्ता—शान्तिनाथके मन्दिरमें जाकर उन्होंने वन्दना-भक्ति की, और सुविलासिनीकी तरह लंकाका स्वयं उपभोग करते हुए वे वही बस गये ॥९॥

●

अट्ठमो संधि

मालिहँ रज्जु करन्ताहोँ सिद्धइ विज्जाहर-मण्डलइँ ।
सहसा अहिमुहिहूआइँ सायरहोँ जेम सव्वइँ जलइँ ॥१॥

[१]

तहिँ अवसरेँ छुह-पङ्कापण्डुरेँ । दाहिण-सेढिहिँ रहणेउर-पुरेँ ॥१
पिहुल-णियम्बिणि पीण-पओहरि । सहसारहोँ पिय माणस-सुन्दरि ॥
ताहेँ पुत्तु सुर-सिर-सपण्णउ । इन्दु चवेवि इन्दु उप्पण्णउ ॥३॥
भेसइ मन्ति दन्ति अइरावणु । सेणावइ हरिकेसि भयावणु ॥४॥
विज्जाहर जि सव्व किय सुरवर । पवण-कुवेर-वरुण-जम-ससहर ॥५॥
सव्वीस वि सहसइँ पेक्खणयहुँ । णाहिँ पमाणु खुज्ज-वामणयहुँ ॥
गायण जाइं सुरिन्दत्तणयहुँ । णामइँ ताइँ कियइँ अप्पणयहुँ ॥७॥
उव्वसि-रम्भ-तिलोत्तिम-पहुइहिँ । अट्ठायाल-सहस-वर-जुवइहिँ ॥८॥

घत्ता

परिचिन्तिउ विज्जाहरेँण तहोँ जाइँ-जाइँ आखण्डलहोँ ।
ताइँ ताइँ महु चिन्धाइँ लइ हउँ जि इन्दु महि-मण्डलहोँ ॥९

[२]

जुएँ खय-कालेँ णिड्डु(?) णिड्डालिहेँ । जे जे सेव करन्ता मालिहेँ ॥१॥
ते ते मिलिय णराहिव इन्दहोँ । अवर जलोह व अवर-समुद्दहोँ ॥२
कप्पु ण दिन्ति जन्ति सिरिगारहिँ(?)। आण करन्ति वि णाहङ्कारहिँ ॥३॥
केण वि कहिउ गम्पि तहोँ मालिहेँ । 'पहु सकन्ति(?)ण तुम्ह णिड्डालिहेँ(?
इन्दु को वि सहसारहोँ णन्दणु । तासु करन्ति सव्व भिच्चत्तणु' ॥५॥
तं णिसुणेवि सुकेसहोँ पुत्ते । कोव-जलण-जालोलि-पलित्तेँ ॥६॥

आठवीं संधि

मालिके राज्य करनेपर सभी विद्याधर-मण्डल सिद्ध हो गये, उसी प्रकार जिस प्रकार सभी जल समुद्रकी ओर अभिमुख होते है ॥१॥

[१] उस अवसरपर दक्षिण श्रेणीसे चूनेसे पुता हुआ सफेद रथनूपुर नगर था। उसके राजा सहस्रारकी विशाल नितम्बोंवाली, पीन-पयोधरा मानससुन्दरी नामकी पत्नी थी। उसके सुरश्रीसे सम्पूर्ण पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसे इन्द्र कहकर पुकारते थे। उसका मन्त्री बृहस्पति, हाथी ऐरावत, सेनापति भयानक हरिकेश था। उसने पवन-कुवेर-वरुण-यम और चन्द्र सभी विद्याधरो और सुरवरोंको अपना वना लिया। उसके छब्बीस हजार नाटककार थे। कुब्ज और वामनोकी तो कोई गिनती नही थी। इन्द्रकी जितनी गायिकाएँ थीं, उनके अनुसार उसने अपनी गायिकाओके नाम रख लिये, जैसे उर्वशी, रम्भा, तिलोत्तमा इत्यादि अड़तालीस हजार श्रेष्ठ सुन्दर युवतियाँ थी ॥१-८॥

घत्ता—उस विद्याधरने सोचा कि इन्द्रके जो-जो चिह्न ह वे-वे मेरे भी है, लो मै भी पृथ्वीमण्डलका इन्द्र हूँ ॥९॥

[२] जो-जो मालिकी सेवा कर रहे थे उसकी भाग्यश्री कम होनेपर, वे सव राजा इन्द्रसे मिल गये, वैसे ही, जैसे दूसरे-दूसरे जल दूसरे समुद्रमे मिल जाते है। श्रीसम्पन्न होकर भी वे कर नहीं देते। अहंकारी इतने कि आज्ञाका पालन तक नही करते। तव किसीने जाकर मालिसे कहा, "भाग्यहीन समझकर, तुमसे लोग आशंका नही करते। कोई इन्द्र नामका सहस्रारका पुत्र है, सव उसीकी चाकरी कर रहे है।" यह सुनकर सुकेशका पुत्र मालि कोपाग्निकी ज्वालासे भड़क उठा।

देवाविय रण-भेरि भयङ्कर । पर (?) सण्णहें त्ति पराइय किङ्कर ॥७॥
किक्किन्धहों किक्किन्धहों णन्दण । त्तिण्णु पयाणउ वाहिय सन्दण ॥८॥

घत्ता

'गमणु ण सुज्झइ मह मणहों' त मालि सुमालि करें हिं धरइ ।
'पेक्खु देव दुणिमित्ताइँ सिउ कन्दइ वायसु करगरइ ॥९॥

[३]

पेक्खु कुहिणि विग्गहर-छिज्जन्ती । मोक्कल-केस णारि रोवन्ती ॥१॥
पेक्खु फुरन्तउ वामउ लोयणु । पेक्खहि रुहिर-ण्हाणु वस-भोयणु ॥२॥
पेक्खु वसुन्धरि-तलु कम्पन्तउ । घर-देवउल-णिवहु लोट्टन्तउ ॥३॥
पेक्खु अकालें महा-घणु गज्जिउ । णहें णच्चन्तु कवन्धु अलज्जिउ' ॥४॥
त णिसुणेवि वयणु तहों वलियउ । 'वच्छ वच्छ जइ सउणु जि वलियउ॥५
तो किं मरइ सव्वु एँउ अलियउ । दइउ मुएवि अण्णु को वलियउ ॥६॥
छुडु धीरत्तणु होइ मणूसहों । लच्छि कीत्ति ओसरइ ण पासहों' ॥७॥
एम भणेप्पिणु दिण्णु पयाणउ । चलिउ सेण्णु सरहसु स-विमाणउ ॥८॥

घत्ता

हय-गय-रहवर-णरवरहिँ महियलें गयणग्गेँ ण माइयउ ।
दीसइ विज्ञ-महीहरहों मेहउलु णाइँ उद्धाइयउ ॥९॥

[४]

त जमकरणहों अणुहरमाणउ । णिसुणेंवि रक्खहों तणउ पयाणउ॥१॥
उभय-सेढि-सामन्त पणट्ठा । गम्पिणु इन्दहों सरणें पइट्ठा ॥२॥
तहिँ अवसरें बलवन्त महाइय । मालिहें केरा दूअ पराइय ॥३॥
'अहों अहों रहणेउर-पुर-राणा । कप्पु देवि करें सन्धि अयाणा ॥४॥
दुज्जउ लङ्काहिउ समरङ्गणें । छुद्ध जेण णिग्घाउ जमाणणें ॥५॥
राय-लच्छि तइलोक्क-पियारी । दासि जेम जसु पेसणगारी ॥६॥

उसने भयंकर रणभेरी बजवा दी। अनुचर सन्नद्ध होकर पहुँचने लगे। किष्किन्ध और उसका पुत्र दोनोंने रुष्ट होकर प्रस्थान किया ॥१-८॥

घत्ता—उस समय मालि सुमालिका हाथ पकड़कर कहता है, "हे देव, देखिए कैसे दुर्निमित्त हो रहे हैं। सियार चिल्लाता है, कौआ आवाज कर रहा है ॥९॥

[३] नागिनोसे क्षीण होती हुई पगडण्डी, और केश खोलकर रोती हुई स्त्रीको देखिए। देखिए वसुन्धराका तल काँप रहा है, जिसमें घर और देवकुलोका समूह लोट-पोट हो रहा है। देखिए असमयमें महामेघ गरज रहे हैं, आकाशमे नंगे धड नाच रहे है।" यह सुनकर उसका मुख मुड़ा। वह बोला, "वत्स-वत्स, यदि शकुन ही बलवान् है, तो क्या यह झूठ है कि 'सब मरते है'। दैवको छोडकर और कौन बलवान् है। यदि मनुष्य-में थोड़ा धैर्य हो, तो उसके पाससे लक्ष्मी और कीर्ति नही हटती। ऐसा कहकर उसने प्रस्थान किया। विमानों और हर्षके साथ सेना चल पड़ी ॥१-८॥

घत्ता—अश्वगज, रथवर और नरवर धरती और आकाशमें नहीं समाये। ऐसा दिखाई देता जैसे विन्ध्याचल से महामेघ उठे हो ॥९॥

[४] राक्षसके अभियानको यमकरणके समान सुनकर दोनों श्रेणियों के विद्याधर भागकर इन्द्र की शरण में चले गये। इसी अवसरपर मालिके महनीय बलवान् दूत वहाँ आये। उन्होने कहा, "अरे अजान, रथनूपुरके राजा, तुम कर देकर सन्धि कर लो। युद्ध-प्रागणमे लंकानरेश अजेय हैं जिसने निर्घातको यमके मुखमे डाल दिया है, त्रिलोककी प्रिय राजलक्ष्मी,

तेण समाणु विरोहु असुन्दरु'। आएँहिँ वयणेँहिँ कुविउ पुरन्दरु॥७॥
'दूउ भणेवि तेण तुहुँ चुक्कउ। ण तो जम-दन्तन्तर ढुक्कउ॥८॥

घत्ता

को सो लङ्क-पुराहिवइ को तुहुँ किर सन्धि कहो त्तणिय।
जो जीवेसइ विहि मि रणेँ महि णीसावण्ण तहो त्तणिय॥९॥

[५]

गय ते मालि-दूय णिब्भच्छिय। दुव्वयणावमाण-पडिहत्थिय॥१॥
सण्णज्झइ सुरिन्दु सुर-साहणु। कुलिस-पाणि अइरावय-वाहणु॥२॥
सण्णज्झइ तणु-तेइ हुआसणु। धूमद्धउ कुयारि मेसासणु॥३॥
सण्णज्झइ जमु दण्ड-भयङ्करु। महिसारूढु पुरन्दर-किङ्करु॥४॥
सण्णज्झइ णइरिउ मोग्गर-धरु। रिच्छारूढु रणङ्गणेँ दुद्धरु॥५॥
सण्णज्झइ वरुणु वि दुद्दसणु। णागवास-करु करिमयरासणु॥६॥
सण्णज्झइ मिग-गमणु समीरणु। तरुवर-पवरुग्गामिय-पहरणु॥७॥
सण्णज्झइ कुवेरु फुरियाहरु। पुप्फ-विमाणारूढु सत्ति-करु॥८॥
सण्णज्झइ ईसाणु विसासणु। सूल-पाणि पर-बल-संतासणु॥९॥
सण्णज्झइ पञ्चाणण-गामिउ। कुन्त-पाणि ससि ससिपुर-सामिउ॥१०॥

घत्ता

जाइँ वि ढिल्लीहोन्ताइँ ताइ मि रण-रस-पुलउग्गयइँ।
णिएँवि परोप्परु चिन्धाइँ सुहडहुँ कवयइँ फुट्टेँवि गयइँ॥११॥

[६]

ताम परोप्परु वेहाविद्धइँ। पढम भिडन्तइँ अग्गिम-खन्धइँ॥१॥
मुसुमूरिय-उर-सिर-मुह-कन्धर। पच्छिम-माअ-सेस थिय कुञ्जर॥२॥
पुच्छुग्गीरिय पडिपहरन्ति व। 'कहिँगय अग्गिम-साय' भणन्ति व॥३॥
जोह वि असुणिय-जढर-उरत्थल। 'कहिँगय रिउ' पहरन्ति व करयल

जिसकी दासीकी तरह आज्ञाकारिणी है। उसके साथ विरोध करना ठीक नही।" इन शब्दोंसे इन्द्र क्रुद्ध हो गया, 'दूत हो' यह सोचकर तुम्हें छोड़ दिया, नही तो अभी तक यमकी दाढके भीतर चले जाते ॥१-८॥

घत्ता—कौन वह लंकाका अधिपति, कौन तुम, और किससे सन्धि? युद्धमें दोनोंमे-से जो जीवित रहेगा, समस्त धरती उसीकी होगी ॥९॥

[५] दुर्वचन और अपमानसे आहत मालिके दूत अपमानित होकर चले आये। जिसके पास सुरसेना है, हाथमें वज्र है और ऐरावतकी सवारी है ऐसा इन्द्र सन्नद्ध होता है, जिसका शरीर ही अस्त्र है, धूम ध्वज है, जलका शत्रु मेप जिसका आसन है, ऐसा अग्नि सन्नद्ध होता है, दण्डसे भयंकर महिपपर बैठा हुआ इन्द्रका अनुचर यम सन्नद्ध होता है, मुद्गर धारण करने-वाला रीछपर आरूढ रणागणमे कठोर नैऋत्य तैयार होता है, जिसके अधर स्फुरित है, और जो हाथमे शक्ति धारण करता है, ऐसे पुष्प विमानमे आरूढ कुबेर तैयारी करता है। वृषभ जिसका आसन है, जो हाथमे त्रिशूल लिये है, ऐसा शत्रुसेनाको सतानेवाला ईशान सन्नद्ध होता है, सिंहगामी, हाथमे भाला लिये हुए, शशिपुरका स्वामी चन्द्रमा तैयार होता है ॥१-१०॥

घत्ता—जो लोग ढीले-पोले थे, उन्हें भी असमय उत्साहसे रोमाच हो आया, एक-दूसरेके ध्वज-चिह्न देखकर योद्धाओंके कवच तडक गये ॥११॥

[६] तब सबसे पहले क्रोधसे भरी हुई दोनो ओरकी अग्रिम सेनाएँ आपसमें भिड गयी। गजोके वक्ष, सिर, मुख, कन्धे नष्ट हो चुके थे, उनका पिछला भाग शेप रह गया था। फिर भी वे पूँछ उठाकर प्रतिप्रहार कर रहे थे, जैसे यह सोचते हुए कि हमारा अगला भाग कहाँ गया? योद्धा भी अपने पेट और उरस्थलका

सच्चूरिय तुरङ्ग-धय-सारहि । चक्क-सेस थिय णवर महारहि ॥५॥
तहिँ अवसरेँ रहणेउर-सारहोँ । धाइउ मल्लवन्तु सहसारहोँ ॥६॥
सूररएण सोमु रणेँ सारिउ । उच्छुरएण वरुणु हक्कारिउ ॥७॥
जमु किक्किन्धेँ धणउ सुमालिं । पवणु सुकेसेँ सुरवइ मालिं ॥८॥

घत्ता

'एत्तिउ कालु ण बुज्झियउ तुहुँ कवणहुँ इन्दहुँ इन्दु कहेँ ।
रण्डेँहिँ मुण्डेहिँ जिब्भिएँहिँ किं जो सो रम्मइ इन्दवहेँ' ॥९॥

[७]

तं णिसुणेँवि चोइउ अइरावउ । णावइ णिज्झरन्तु कुल-पावउ ॥१॥
मालि-पुरन्दर भिडिय परोप्परु । बिहि मि महाहउ जाउ भयङ्करु ॥२॥
जुज्झइँ सेस-णरेँहिँ परिचत्तइँ । थिय पडिथिरइँ करेप्पिणु णेत्तइँ ॥३॥
इन्दयालु जिह तिह जोइज्जइ । रक्खेँ रक्ख-विज्ज चिन्तिज्जइ ॥४॥
भीम-महाभीमेँहिँ जा दिण्णी । गोत्त-परम्पराएँ अवइण्णी ॥५॥
सा विकराल-वयण उद्धाइय । परिवड्ढिय गयणयलेँण माइय ॥६॥
चिन्तिउ वरुण-पवण-जम-धणएँहिं । 'पत्तु इन्दु चरिएँहिँ अप्पणएँहिं ॥७॥
दूएँ वुत्तु आसि रायङ्गणेँ । दुज्जउ मालि होइ समरङ्गणेँ ॥८॥

घत्ता

तहिँ पत्थावेँ पुरन्दरेँण माहिन्द-विज्ज लहु समरिय ।
वड्ढिय तहेँ वि चउग्गुणिय रवि-कन्तिएँ ससि-कन्ति व हरिय ॥९॥

[८]

तं माहिन्द-विज्ज अवलोएँवि । भणइ सुमालि मालि-मुहु जोएँवि ॥१॥
'तइयहुँ ण किउ महारउ वुत्तउ । एवहि आयउ कालु णिरुत्तउ' ॥२॥

ख्याल न रखते हुए, 'शत्रु कहाँ गया ? यह कहते हुए करतलसे प्रहार करते है, अश्व, ध्वज और सारथि चूर-चूर हो गये। केवल महारथियोंके हाथमें चक्र बाकी बचा। उस अवसरपर, रथनूपुर श्रेष्ठ सहस्रारके ऊपर माल्यवन्त दौड़ा, सूर्यरवने सोमको युद्धमें ललकारा, ऋक्षराजने वरुणको हकारा। किष्किन्ध-ने यमको, सुमालिने धनदको, सुकेशने पवनको, मालिने इन्द्रको ॥१-८॥

घत्ता—(मालि कहता है) "इतने समय तक मै नही समझ सका कि तुम किस इन्द्रके इन्द्र हो, क्या तुम वह इन्द्र हो जो रुण्ड-मुण्डों और जिह्वाओंके द्वारा इन्द्रपथमे रमण करता है ?" ॥९॥

[७] यह सुनकर इन्द्रने ऐरावतको प्रेरित किया, जैसे वह झरता हुआ कुलपर्वत हो। मालि और इन्द्र आपसमे भिड़ गये, दोनोंमें भयंकर महायुद्ध हुआ। शेप योद्धाओने युद्ध छोड दिया, वे अपने नेत्र स्थिर करके रह गये। वे इस प्रकार देखने लगे जैसे इन्द्रजालको देखा जाता है, राक्षसने राक्षस विद्याका चिन्तन किया·जो भीम महाभीम द्वारा दी गयी थी, और जो उसे कुल परम्परा से मिली थी। अपना मुख विकराल बनाये वह दौडी, वह इतनी बढी कि आकाशतलमे नहीं समा सकी। वरुण, पवन, यम और कुबेर सोचमे पड गये, इन्द्रके दूत उसके पास पहुँचे। उन्होने कहा, "दूतने राजसभामे ठीक ही कहा था कि मालि युद्धमे अजेय है ॥१-८॥

घत्ता—उनके प्रस्तावपर इन्द्रने शीघ्र माहेन्द्र विद्याका स्मरण किया, वह सूर्यकान्त और चन्द्रकान्तकी तरह उससे चौगुनी बढती चली गयी ॥९॥

[८] माहेन्द्र विद्याको देखकर सुमालि मालिका मुख देखकर कहता है, "उस समय तुमने हमारा कहना नहीं माना, अब लो

त णिसुणेँवि पलम्ब-भुय-डालेँ । अमरिस-कुद्धएण रणेँ मालें ॥३॥
वायव-वारुण-अग्गेयत्थइँ । मुक्कइँ तिण्णि मि गयइँ णिरत्थइँ ॥४॥
जिह अण्णाण-कण्णेँ जिण-वयणइँ । जिह गोट्ठङ्गणेँ वर-मणि-रयणइँ ॥५॥
जिह उवयार-सयइँ अकुलीणएँ । वयइँ जेम चारित्त-विहीणएँ ॥६॥
गम्पि पहञ्जणु मिलिउ पहञ्जणेँ । वरुणहोँ वरुणु हुवासु हुआसणेँ ॥७॥
हसिउ पुरन्दरेण 'अरेँ माणव । देव-समाण होन्ति किं दाणव' ॥८॥

घत्ता

भणइ मालि 'को देउ तुहुँ वलु पउरु सु सयलु णिरिक्खियउ ।
जं वन्धहि ओहट्टहि वि इन्दयालु पर सिक्खियउ' ॥९॥

[९]

त णिसुणेवि वयणु सुरराएँ । विद्धु णिडालेँ मालि णाराएँ ॥१॥
लहु उप्पाडेँवि चित्तु णरिन्दें । णाइँ वरङ्कुसु मत्त गइन्दें ॥२॥
सहसा रुहिरारुम्बिरु दीसिउ । ण मयगलु सिन्दूर-विहूसिउ ॥३॥
वाम-पाणि वणेँ देवि असन्तिएँ । भिण्णु णिडालेँ सुराहिउ सत्तिएँ ॥४॥
विहलङ्घलु ओणल्लु महीयलेँ । कलयलु घुट्ठु रक्ख-वाणर-वलेँ ॥५॥
मालि सुमालिं साहुक्कारिउ । 'पइँ होन्तएँ णिय-वसु उद्धारिउ' ॥६॥
उट्ठेँवि मुक्कु चक्कु सहसक्खे । एन्तउ धरेँवि ण सक्किउ रक्खे ॥७॥
सिरु पाडेवि रसायलेँ पडियउ । कह वि ण कुम्भ-वीढेँ अब्भिडियउ ॥८॥

घत्ता

वयणु मडफ्फ ण वीसरिउ धाविउ कवन्धु रोसावियउ ।
वे-वारउ अइरावयहोँ कुम्भत्थलेँ असिवरु वाहियउ ॥९॥

इस समय निश्चित रूपसे काल आया है" यह सुनकर, लम्बी है बाँहें जिसकी ऐसे मालिने क्रोधसे भरकर वायव, वारुण और आग्नेय अस्त्र छोड़े। वे तीनों ही व्यर्थ गये, उसी प्रकार, जिस प्रकार अज्ञानीके कानोंमें जिनवचन, जिस प्रकार गोठबस्तीके आँगनमे उत्तम मणिरत्न, जिस प्रकार अकुलीन व्यक्तिमें सेकड़ो उपकार, जिस प्रकार चरित्रहीन व्यक्तिमे व्रत। प्रभंजन प्रभंजन-से, वायु वायुसे और अग्नि अग्निसे जा मिला। इसपर इन्द्र हँसा, "अरे मानव, क्या देवके समान दानव हो सकते है ?॥१-८॥

घत्ता—मालि कहता है, "तुम कौन देव, तुम्हारा प्रबल बल मैंने पूरा देख लिया है, जो तुम बाँधते हो, फिर उसीको हटा लेते हो, तुमने केवल इन्द्रजाल सीखा है ॥९॥

[९] यह वचन सुनकर इन्द्रने तीरसे मालिको मस्तकमे आहत कर दिया। तब नरेन्द्रने शीघ्र उस तीरको निकाल लिया, जैसे महागज श्रेष्ठ अंकुशको निकाल ले। मस्तकमें सहसा रक्त की धारासे लाल वह ऐसा दिखा जैसे सिन्दूरसे विभूषित मैंगल हाथी हो ? जल्दी-जल्दीमें घावपर बायाँ हाथ रखकर मालिने इन्द्रको शक्तिसे ललाटमें आहत कर दिया। वह विह्वल होकर धरतीपर गिर पड़ा। राक्षस और वानरकी सेनाओमे कोलाहल होने लगा। सुमालिने मालिको साधुवाद दिया कि तुम्हारे होनेसे ही अपने वंशका उद्धार हुआ। सहस्राक्षने उठकर शीघ्र चक्र छोडा, आते हुए उसे राक्षस नहीं रोक सका। वह चक्र उसके सिरपर होते हुए धरतीपर जा पड़ा, किसी तरह कछुए की पीठसे जाकर नहीं टकराया ॥१-८॥

घत्ता—मुख अपना घमण्ड नहीं भूला। रोपसे भरा कबन्ध दौड रहा था। दो बार उसने ऐरावतके कुम्भस्थल पर तलवार चलायी ॥९॥

[१०]

ज विणिवाइउ रक्खु रणङ्गणें। विजउ घुट्ठु अमराहिव-साहणें ॥१॥
णट्ठु कइद्धय-वलु भय-भीयउ। गलियाउहु कण्ठ-ट्ठिय-जीयउ ॥२॥
केण वि ताम कहिउ सहसक्खहों। 'पच्छलें लग्गु देव पडिवक्खहों ॥३॥
वहुवारउ णिसियर-कइचिन्धेंहिं। वेयारिय सुकेस-किक्किन्धेंहिं ॥४॥
एय जि विजयसीह खय-गारा। तिह करें जेम ण जन्ति भडारा' ॥५॥
त णिसुणेंवि गउ चोइउ जावेंहिं। ससहरु पुरउ परिट्ठिउ तावेंहिं ॥६॥
'महु आदेसु देहि परमेसर। मारमि हउँ जि णिसायर वाणर ॥७॥
सेण्णु वि घत्तमि जम-मुह-कन्दरें। दसण-सिलायल-जीहा-कक्करें' ॥८॥

घत्ता

इन्दें हत्थुत्थल्लियउ धाइउ ससि सर वरिसन्तु किह।
पच्छलें पवणाहएँ घणहों धाराहरु वासारत्तु जिह ॥९॥

[११]

'मरु मरु वलहों वलहों कि णासहों। धाराहर-मक्कडहों हयासहों ॥१॥
सुरयण-णयणानन्द-जणेरा। कुद्ध पाव त (?) वासव-केरा' ॥२॥
त णिसुणेंवि दूरुज्झिय-सङ्कउ। अहिमुहु मल्लवन्तु पर थक्कउ ॥३॥
गहकल्लोलु णाइँ छण-चन्दहों। णाइँ मइन्दु सहग्गय-विन्दहों ॥४॥
'अरें ससङ्क स-कलङ्क अलज्जिय। महिलाणण वे-पक्ख-विवज्जिय ॥५॥
चन्दु भणेवि जे हासउ दिज्जइ। पइँ वि को वि कि रणें घाइज्जइ' ॥६॥
एम चवेप्पिणु चाव-सणाहउ। भिण्डिवाल-पहरणेंण समाहउ ॥७॥
मुच्छ पराइय पसरिय-वेयणु। दुक्खु दुक्खु किर होइ स-चेयणु ॥८॥

[१०] जैसे ही युद्ध-प्रांगणमें राक्षसका पतन हुआ, वैसे ही इन्द्रकी सेनाने विजयकी घोषणा कर दी। भयभीत वानर सेना नष्ट हो गयी। आयुध गल गये और प्राण कण्ठोंमे आ लगे। तब किसीने जाकर सहस्राक्षसे कहा, "हे देव, शत्रुसेनाके पीछे लगिए, निशाचर और कपिध्वजियों सुकेश और किष्किन्धके द्वारा बहुत बार हम विदीर्ण किये गये। विजयसिंहका नाश करनेवाले यही है। ऐसा करिए, हे आदरणीय, जिससे ये लोग वापस नही जा सके।" यह सुनकर इन्द्र जैसे ही अपना गज प्रेरित करता है, वैसे ही चन्द्र उसके सामने आकर स्थित हो जाता है, "हे देव, मुझे आदेश दीजिए। निशाचरों और वानरोंको मैं मारूँगा। सेनाको भी यममुखरूपी गुफामें फेक दूँगा। जो दाँतरूपी शिलाओं और जिह्वासे कर्कश है ॥१-८॥

घत्ता—इन्द्रने हाथ ऊँचा कर दिया। तीर बरसाता हुआ चन्द्रमा इस प्रकार दौड़ा, जिस प्रकार मेघके पछाऊँ हवासे आहत होनेपर वर्षा ऋतुमे धाराएँ दौड़ती है ॥९॥

[११] वह बोला, "मरो मरो, मुडो मुडो, हताश वर्षा ऋतुके वानरो, क्यो नष्ट होते हो ? सुरजनके नेत्रोंको आनन्द देनेवाली इन्द्र की सेना क्रुद्ध है। हे पाप।" यह सुनकर, अपनी शंका दूर कर माल्यवन्त आकर उसके सम्मुख स्थित हो गया, जैसे पूर्ण चन्द्रके सामने राहु, जैसे महागजसमूहके सामने सिंह हो। वह बोला, "अरे कलंकी वेशर्म चन्द्र, महिलाओकी तरह तेरा मुख है, तू दोनो ही पक्षोसे रहित है। चन्द्र कहकर तेरा मजाक उड़ाया जाता है, क्या तुमसे भी कोई युद्धमे मारा जायेगा।" यह कहकर भिन्दपाल शस्त्रसे चापसहित चन्द्र आहत हो गया। मूर्च्छा आ गयी। वेदना फैलने लगी। धीरे-धीरे कठिनाई से उसे चेतना आयी ॥१-८॥

घत्ता

दूरीहूया ताम रिउ मयलञ्छणु मणेँ अवतसइ किह ।
सिरु सचालइ करु धुणइ सकन्तिहेँ चुक्कु विप्पु जिह ॥९॥

[१२]

ताम महा-रहणेउर-पुरवरु । जय-जय-सद्दें पइसइ सुरवरु ॥१॥
पवण-कुवेर-वरुण-जम-खन्दें हि । णड-फम्फाव-छत्त-कइवन्दें हि ॥२॥
वन्दिण-सयहिं पवड्ढिय-हरिसें हिं। विज्जाहर-किण्णर-किंपुरिसें हि ॥३॥
जोइस-जक्ख-गरुड-गन्धव्वें हि । जय-जय-कारु करन्तें हिं सव्वें हिं ॥४॥
चलणेंहिं गम्पि पडिउ सहसारहों। ण भरहेसरु तिहुअण-सारहों ॥५॥
ससिपुरि महिहें दिण्ण विक्खायहों। धणयहों लङ्क किक्कु जमरायहों ॥६॥
मेह-णयरें वरुणाहिउ ठवियउ । कञ्चणपुरें कुवेरु पट्ठवियउ ॥७॥

घत्ता

अण्णु वि को वि पुरन्दरेंण तहिं अवसरें जो समावियउ ।
मण्डलु एक्केक्कउ पवरु सो सव्वु स इ भुञ्जावियउ ॥८॥

●

[९. णवमो संधि]

एत्थन्तरें रिद्धिहेँ जन्ताहों पायाल-लङ्क भुञ्जन्ताहों ।
उप्पण्णु सुमालिहेँ पुत्तु किह रयणासउ रिसहहों भरहु जिह ॥१॥

[१]

सोलह-आहरणालङ्करिउ । सयमेव मयणु ण अवयरिउ ॥१॥
वहु-दिवसें हिं आउच्छेंवि जणणु । गउ विज्जा-कारणें पुप्फवणु ॥२॥
थिउ अक्खसुत्तु करयलें करेंवि । जिह मह-रिसि परम-झाणु धरेंवि ॥३

घत्ता—तबतक दुश्मन दूर जा चुका था, मृगलांछन अपने मनमें सन्त्रस्त हो उठा। वह सिर चलाता, हाथ धुनता जैसे संक्रान्तिसे चूका ब्राह्मण हो? ॥९॥

[१२] तब सुरवर इन्द्र जय-जय शब्दके साथ महान् रथ-नूपुर नगरसे प्रवेश करता है। जय-जय करते हुए पवन, कुवेर, वरुण, यम, स्कन्ध, नट, वामन, कविवृन्द, हर्षसे भरे हुए सैकडो बन्दीजन, विद्याधर, किन्नर, किंपुरुष, ज्योतिषी, यक्ष, गरुड और गन्धर्वोंके साथ इन्द्र जाकर सहस्रारके चरणोंमे उसी प्रकार पड़ गया जिस प्रकार भरतेश्वर त्रिभुवन-श्रेष्ठ ऋषभनाथके चरणोमे। उसने चन्द्रमा को शशिपुर, विख्यात धनदको लंका, यमको किष्क नगर दिया। वरुणको मेघनगरमे स्थापित किया। कुवेरको कचनपुरमें प्रतिष्ठित किया ॥१-७॥

घत्ता—उस समय जो कोई वहाँ था, इन्द्रने उसका आदर किया। एकसे एक प्रवर मण्डलका उसने सबको स्वयं उपभोग कराया ॥८॥

●

नौवीं सन्धि

इसके अनन्तर, वैभवसे रहते और पाताल लंकाका उपभोग करते हुए सुमालिको रत्नाश्रव नामक पुत्र उसी प्रकार हुआ जिस प्रकार ऋषभको भरत हुए थे ॥१॥

[१] सोलह प्रकारके अलंकारोंसे शोभित वह ऐसा जान पडता जैसे स्वयं कामदेव अवतरित हुआ हो। बहुत दिनो बाद, पितासे पूछकर विद्या सिद्ध करनेके लिए वह पुष्पवनमे गया। उसी अवसरपर गुणोका अनुरागी व्योमबिन्दु वहाँ

तहिँ अवसरँ गुण-अणुराइयउ । सो पोमविन्दु सपाइयउ ॥४॥
रयणासउ लक्खिउ तेण तहिँ । 'इमु पुरिस-रयणु उप्पण्णु कहिँ ॥५॥
लइ सच्चउ हूयउ गुरु-वयणु । ऍहु सो णरु ऍउ त पुप्फवणु' ॥६॥
कइकसि णामेण वुत्त दुहिय । पप्फुल्लिय-पुण्डरीय-मुहिय ॥७॥
ऍहु पुत्ति तुहारउ भत्तारु । माणम्म-सुन्दरिहिँ व सहसारु' ॥८॥

घत्ता

गउ धीय थवेवि णियासवहोँ उप्पण्ण विज्ज रयणासवहोँ ।
थिउ विहि मि मज्झेँ परमेसरिहिँ ण विञ्झु तावि-णम्मय-सरिहिँ ॥९॥

[२]

अवलोइय वहु रयणासवेँण । ण अग्ग-महिमि सइँ वासवेँण ॥१॥
सु-णियम्विणि परिचञ्चलिय-थणि । इन्दीवरच्छि पङ्कय-वयणि ॥२॥
'कसु केरी कहिँ अवइण्ण तुहुँ । तउ दूरेँ दिट्ठि जेँ जणइ सुहु' ॥३॥
तं सुणॅवि स-सङ्क कण्ण चवइ । 'जइ जाणहोँ पोमविन्दु णिवइ ॥४॥
हउँ तासु धीय केण ण वरिय । कइकसि णामेँ विज्जाहरिय ॥५॥
गुरु-वयणेँहिँ आणिय एउ वणु । तउ दिण्णी करेँ पाणिग्गहणु ॥६॥
त णिसुणेँवि सुपुरिस-धवलहरु । उप्पाइउ विज्जाहर-णयरु ॥७॥
कोक्काविउ सयलु वि वन्धुजणु । सहुँ कण्णऍँ किउ पाणिग्गहणु ॥८॥

घत्ता

वहु-कालेँ सुविणउ लक्खियउ अत्थाणेँ णरिन्दहोँ अक्खियउ ।
'फाडेप्पिणु कुम्भइँ कुञ्जरहुँ पञ्चाणणु उवरेँ पइट्ठु महु ॥९॥

[३]

उच्चोलिहेँ चन्दाइच्च थिय । त णिसुणेवि दइए विहसिकिय (?)॥१
''अट्ठङ्ग-णिमित्तइँ जाणऍण । वुच्चइ रयणासव-राणऍण ॥२॥

पहुँचा। उसने वहाँ रत्नाश्रवको देखा। उसे लगा कि ऐसा पुरुषरत्न कहाँ उत्पन्न हुआ? तो गुरुका वचन सच होना चाहता है, यही वह नर है और यही वह पुष्पवन है। तब उसने खिले हुए कमलोंके समान मुखवाली अपनी कैकशी नामकी पुत्रीसे कहा, "हे पुत्री, यह तुम्हारा पति है उसी प्रकार, जिस प्रकार मानस सुन्दरीका सहस्रार" ॥१-८॥

घत्ता—वह कन्या वहीं छोड़कर अपने घर चला गया, इधर रत्नाश्रवको भी विद्या सिद्ध हो गयी। वह दोनों परमेश्वरियोंके बीचमे ऐसे स्थित था, जैसे ताप्ती और नर्मदा नदियोंके बीचमें विन्ध्याचल ॥९॥

[२] वधूको रत्नाश्रवने इस प्रकार देखा, जिस प्रकार इन्द्र अपनी अग्रमहिषीको देखता है। अच्छे नितम्बों और गोल स्तनोंवाली उसकी आँखे इन्दीवरके समान और मुख कमलकी तरह था। (वह पूछता है), "तुम किसकी? और कहाँ उत्पन्न हुई? तुम्हारी दृष्टि दूरसे ही मुझे सुख दे रही है।" यह सुनकर कन्या शकाके स्वरमे कहती है, "यदि जानते है व्योमबिन्दु राजा को। मै उसकी कन्या हूँ, अभी किसीने मेरा वरण नहीं किया है, मै कैकशी नामकी विद्याधरी हूँ। गुरुके वचनसे मुझे इस वनमे लाया गया, तुम्हारे करमे मेरा पाणिग्रहण दे दिया गया है।" यह सुनकर उस पुरुषश्रेष्ठने एक विद्याधर नगर उत्पन्न किया। सब बन्धुजनोंको वहीं बुलवा लिया, और कन्याके साथ विवाह कर लिया ॥१-८॥

घत्ता—बहुत समय बाद उसने सपना देखा, और दरबारमे राजासे कहा, "हाथीका गण्डस्थल फाड़कर एक सिंह उदरमे घुस गया है मेरे ॥९॥

[३] कटिवस्त्र (उच्चोलि?) मे चन्द्र और सूर्य स्थित है।" यह सुनकर प्रिय मुसकरा उठा। अष्टांग निमित्तोंके जानकार

'होसन्ति पुत्त तउ तिण्णि धणेँ। पहिलारउ ताहँ रउद्दु रणेँ ॥३॥
जग-कण्टउ सुरवर-डमर-करु। भरहद्ध-णराहिउ चक्कधरु' ॥४॥
परिओसे कहि मि ण मन्ताहुँ। णव-सुरय-सोक्खु माणन्ताहुँ ॥५॥
उप्पण्णु दसाणणु अतुल-बलु। पारोह-पईहर-भुय-जुयलु ॥६॥
पक्कल-णियम्बु वित्थिण्ण-उरु। ण सग्गहोँ पचविउ को वि सुरु ॥७॥
पुणु भाणुकण्णु पुणु चन्दणहि। पुणु जाउ विहीसणु गुण-उवहि ॥८॥

घत्ता

तो उप्पाडन्तु दन्त गयहुँ करयलु छुहन्तु मुहेँ पण्णयहुँ।
आयएँ लीलएँ रामणु रमइ ण कालु बालु होएँवि भमइ ॥९॥

[४]

खेलन्तु पईसइ भण्डारु। जहिँ तोयदवाहण-तणउ हारु ॥१॥
णव-मुहइँ जासु मणि-जडियाइँ। णव गह परियप्पेँवि घडियाइँ ॥२॥
जो परिपालिज्जइ पण्णएँहि। आसीविस-रोसाउण्णएँहिँ ॥३॥
सामण्णहोँ अण्णहोँ करइ वहु। सो कण्ठउ दुट्ठउ दुच्चिसहु ॥४॥
सहसत्ति लग्गु करेँ दहमुहहोँ। मित्तु सुमित्तहोँ अहिमुहहोँ ॥५॥
परिहिउ णव-मुहइँ समुट्ठियइँ। णं गह-बिम्बइँ सु-परिट्ठियइँ ॥६॥
ण सयवत्तइँ सचारिमइँ। ण कामिणि-वयणइँ कारिमइँ ॥७॥
बोल्लन्ति समउ बोल्लन्तएँण। स-वियारु हसन्ति हसन्तएँण ॥८॥

घत्ता

देक्खेप्पिणु ताइँ दहाणणइँ थिर-तारइँ तरलइँ लोयणइँ।
तेँ दहमुहु दहसिरु जणेँण किउ पच्चाणणु जेम पसिद्धि गउ ॥९॥

राजा रत्नाश्रवने कहा, "हे धन्ये, तुम्हारे तीन पुत्र होंगे ? उनमें पहला, युद्धमें भयंकर, जगके लिए कण्टकस्वरूप, देवताओंसे विग्रहशील और अर्धचक्रवर्ती होगा। नवसुरतिके सुखका उपभोग करते और परितोषसे कहीं न समाते हुए, उन दोनोके, अतुल बल प्रारोहकी तरह लम्बी भुजाओंवाला दशानन उत्पन्न हुआ। पुट्ठोंसे परिपुष्ट और विशाल वक्षःस्थलवाला वह ऐसा लगता कि जैसे स्वर्गसे कोई देव च्युत होकर आया हो। फिर भानुकर्ण, चन्द्रनखा, और फिर गुणसागर विभीपण उत्पन्न हुए ॥१-८॥

घत्ता—तब कभी गजोंके दाँतोंको उखाड़ता हुआ, कभी साँपोके मुखोंको करतलसे छूता हुआ, रावण इन लीलाओंसे क्रीडा करता है, मानो काल ही बालरूप धारणकर घूमता हो॥९॥

[४] खेलता हुआ वह भण्डारमे प्रवेश करता है, जहाँ तोयद-वाहनका हार रखा हुआ था। जिसके मणियोंसे जड़े हुए नौ मुख थे, जो मानो नवग्रहोंकी कल्पना करके बनाये गये थे। वह हार विषैले और क्रोधसे भरे हुए नागोसे रक्षित था। कठोर कान्तिसे युक्त वह दुष्ट कण्ठा, दूसरे सामान्य जनका वध कर देता। परन्तु वह रावणके हाथमे आकर वैसे ही आ लगा, जैसे सुमित्रके सामने आनेपर मित्र उससे मिलता है। उसने उसे पहन लिया, जिसमे उसके दस मुख दिखाई दिये, मानो ग्रह-प्रतिबिम्ब ही प्रतिष्ठित हुए हो, मानो चलते-फिरते कमल हो, मानो कृत्रिम कामिनी-मुख हो, जो बोलते समय बोलने लगते, और हँसते समय हँसने लगते ॥१-८॥

घत्ता—स्थिर तारो और चंचल लोचनोवाले उन दसमुखों-को देखकर लोगोने उसका नाम दसमुख रख दिया, वैसे ही जैसे सिहका नाम पंचानन प्रसिद्ध हो गया ॥९॥

[५]

जं परिहिउ कण्ठउ रावणेंण । किउ वद्धावणउ सु-परियणेण ॥१॥
रयणासउ कइकसि धाइयई । आणन्दे कहि मि ण माइयइं ॥२॥
णिसुणेप्पिणु आइउ उच्छुरउ । किक्किन्धु स-कन्तउ सूररउ ॥३॥
सयलेंहिं णिहालिउ साहरणु । दह-गीउम्मीलिय-दइ-वयणु ॥४॥
परिचिन्तिउ 'णउ सामण्णु णरु । एँहु होइ णिरुत्तउ चक्कहरु ॥५॥
एयहों पासिउ रज्जु वि विउलु । कइ-जाउहाण-वलु रणें अतुलु ॥६॥
एयहों पासिउ सुरवइहें खउ । जम-वरुण-कुवेरहँ णाहिं जउ' ॥७॥

घत्ता

अण्णेक्क-दिवसें गज्जन्तु किह णव-पाउसें जलहर विन्दु जिह ।
णहॅ जन्तउ पेक्खेंवि वइसवणु पुणु पुच्छिअ जणणि 'एहु कवणु' ॥८॥

[६]

त णिसुणेंवि मउलिय-णयणियएँ वज्जरिउ स-गग्गर-वयणियएँ ॥१॥
'कउसिकि जणेरि एयहों तणिय । पहिलारी वहिणि महु त्तणिय ॥२॥
वीसावसु विज्जाहरु जणणु । एँहु भाइ तुहारउ वइसवणु ॥३॥
वइरिहिँ मिलेवि मुह मलिण किय । मायरि व कमागय लङ्क हिय ॥४॥
एयहों उद्दालेंवि जेसि तिय । कइयहुँ माणेसहुँ राय-सिय ॥५॥
रत्तुप्पल-हूआलोयणेंग । णिब्भच्छिय जणणि विहीसणेंण ॥६॥
'वइसवणहों केरी कवण सिय । दहवयणहों णोक्खी का वि किय ॥७॥
पेक्खेसहि दिवसहिँ थोवएँहिँ । आएँहि अम्हारिस-देवएँहिँ ॥८॥

घत्ता

जम-खन्द-कुवेर-पुरन्दरेंहिँ रवि-वरुण-पवण-सिहि-ससहरेंहिँ ।
अणुदिणु दणुवइ-कन्दावणहों घरें सेव करेवी रावणहों ॥९॥

[५] जब रावणने वह कण्ठा पहना, तो परिजनों ने उसे बधाई दी। रत्नाश्रव और केकशी दोनों दौड़े, वे आनन्दसे कही भी फूले नहीं-समा रहे थे। यह सुनकर इच्छुरव आया। किष्किंध, और पत्नी सहित सूर्यरव आया। सबने अलंकारों से सहित उसे देखा कि उसकी दस गरदनोपर दस सिर उगे हुए है। उन्होने सोचा, "यह सामान्य आदमी नही है, यह निश्चय से चक्रवर्ती है। इसके पास विपुल राज्य है और राक्षसोंकी अतुल सेना है, इसके पास इन्द्र का क्षत्र है, यम, वरुण और कुबेर की जीत नही है" ॥१-७॥

घत्ता—एक दिन वह ऐसा गरजा, जैसे नवपावस में मेघ-समूह गरजता है। आकाशमें वैश्रवण को जाते हुए देखकर उसने माँ से पूछा, "यह कौन है" ? ॥८॥

[६] यह सुनकर, अपनी आँखे बन्द करके, गद्गद वाणीमे वह बोली, "इसकी माँ कौशिकी है, जो मेरी बडी बहन है। विद्याधर विश्वावसु इसका पिता है। यह वैश्रवण तुम्हारा भाई (मौसेरा) है। शत्रुओंसे मिलकर इसने अपना मुँह कलंकित कर लिया है, अपनी माताके समान क्रमागत लकानगरीका इसने अपहरण कर लिया है। इसको उखाडकर, मै स्त्रीके समान कब राज्यश्री मानूगी ?" तब रक्तकमलके समान जिसकी आँखे हो गयी है, ऐसे विभीपणने माँको बुरा-भला कहा, "वैश्रवणकी क्या श्री है ? दशाननसे अनोखी श्री किसने की है ? थोड़े ही दिनोमे हमारे दैवके प्रसन्न होनेपर तुम देखोगी ? ॥१-८॥

घत्ता—यम, स्कन्ध, कुबेर, पुरन्दर, रवि, वरुण, पवन, शिखी (अग्नि) और चन्द्रमा, प्रतिदिन राक्षसोको रुलानेवाले रावणके घरमे सेवा करेंगे। ॥९॥

[७]

एक्कहिँ दिणेँ आउच्छेँ वि जणणु । गय तिण्णि वि भीसणु भीम-वणु ॥१॥
जहिँ जक्ख-सहासइँ दारुणइँ । जहि सीह-पयइँ रुहिरारुणइँ ॥२॥
जहि णीसासन्तेँहिँ अजयरेँ हिँ । ढोलन्ति डाल सहुँ तरुवरेँ हिँ ॥३॥
जहि माहारूढइँ विप्पयइँ । अन्दोलण-परम-माव-गयइँ ॥४॥
तहिँ तेहएँ भीसणेँ भीम-वणेँ । थिय विज्जहेँ झाणु धरेंवि मणेँ ॥५॥
जा अट्ठक्खरेँ हि पसिद्धि गय । णामेण सव्व-कामन्न-रुय ॥६॥
सा विहिँ पहरेँ हिँ जेँ पासु अइय । ण गाढालिङ्गण-गय दइय ॥७॥
पुणु झाइय सोळह-अक्खरिय । जय (?)-कोडि-महास-दहुत्तरिय ॥८॥

घत्ता

ते भायर अविचल-झाण-रुइ　दहवयण-विहीसण-माणुसइ ।
वणेँ दिट्ठ जक्ख-सुन्दरिएँ किह जिण-वाणिएँ तिण्णि वि लोय सिहँ ॥९॥

[८]

ज लक्खिएँ रावणु दिट्ठु वणेँ । त वम्मह-वाण पइट्ठ मणेँ ॥१॥
'वोल्लाविउ वोल्लइ किं ण तुहुँ । कि वहिरउ कि तुह णाहिँ मुहु ॥२॥
किं झायहि अक्खसुत्तु विवहि । महु केरउ रूव-सलिलु पिवहि' ॥३॥
दहगीव-पसरु अलहन्तियएँ । स-विलक्खउ खेड्डु करन्तियएँ ॥४॥
वच्छत्थलेँ पहउ सुकोमलेँण । कण्णावयस-णीलुप्पलेँण ॥५॥
अण्णेक्कएँ वुत्तु वरङ्गणएँ । पप्फुल्लिय-तामरसाणणएँ ॥६॥
'तुहुँ जाणहि एहु णरु सउमउ । उप्पाडउ केण वि कट्ठमउ' ॥७॥
पुणु गम्पिणु रण-रस-अड्ढियहोँ । जक्खहोँ वज्जरिउ अणड्ढियहोँ ॥८॥

घत्ता

'कञ्ची-कलाव-केऊर-धर　पइँ तिण-समु मण्णेँवि तिण्णि णर ।
वणेँ विज्जउ आराहन्त थिय　णावइ जग-भवणहोँ खम्भ किय ॥९॥

[७] एक दिन तीनों भाई अपने पितासे पूछकर, भीषण भीम वनमे गये जहाँ हजारो भीषण यक्ष थे, जहाँ खूनसे लाल सिहोंके पदचिह्न थे, जहाँ अजगरोंके साँस लेनेपर बड़े-बड़े पेड़ोके साथ शाखाएँ हिल उठती थीं। जहाँ शाखाओंसे लटके हुए जोर-जोरसे हिलते हुए अनिष्ट नाग है। उस भीषण वनमे विद्याओके लिए, मनसे ध्यान धारण करके बैठ गये। जो आठ अक्षरोवाली सर्वकामनारूप प्रसिद्ध विद्या थी, वह दो प्रहरोमे ही उनके पास आ गयी, मानो दयिता ही प्रगाढ आलिंगनमे आ गयी हो। फिर उन्होंने सोलह अक्षरोवाली विद्याका ध्यान किया, उसका दस हजार करोड दस जाप किया ॥१-८॥

घत्ता—वे तीनो भाई अविचल ध्यानसे रत थे, रावण, विभीपण और भानुकर्ण। वनमे उन्हें एक यक्षसुन्दरीने इस प्रकार देखा जैसे जिनवाणीने तीनों लोकों को देखा हो ॥९॥

[८] जैसे ही यक्षिणीने रावणको वनमे देखा, कामका बाण उसके हृदयमें प्रवेश कर गया। वह उससे कहती है, "बुलाये जाने पर भी तुम क्यो नही बोलते? क्या तुम बहरे हो, या तुम्हारे पास मुख नहीं है, तुम क्या ध्यान कर रहे हो? अक्षसूत्रकी माला क्या फेरते हो, मेरे रूप-जलका पान करो।" परन्तु रावणमें अपनी बातका प्रसार न पाकर वह व्याकुल हो गयी। मनमे खेद करते हुए उसने अपने कोमल कर्णफूलके नीलकमलसे उसे वक्षमें आहत किया। खिले हुए कमलके समान मुखवाली एक और वरागनाने कहा, "क्या तुम इस आदमीको सचमुचका जानती हो, किसीने यह लकड़ीका आदमी बनाया है।" फिर उसने जाकर, रणरससे युक्त अनह्वित यक्षसे कहा ॥१-८॥

घत्ता—"कटिसूत्र और केयूर धारण करनेवाले तुम्हें तृणके बराबर मानते हुए, तीन आदमी विद्याकी आराधना करते हुए ऐसे स्थित है, जैसे विश्वरूपी भवनके लिए खम्भे बना दिये गये हों।"

[९]

त णिसुणेंवि जम्बूदीव-पहु । ण जलिउ जलण जाला-णिवहु ॥१॥
'सो कवणु एत्थु णिक्कम्पिरउ । जगें जीवइ जो महु वाहिरउ' ॥२॥
अहिमुहु पयट्ट तहों आसवहों । सुय दिट्ठ ताम रयणासवहों ॥३॥
'अहों पव्वइयहो अहिणवहों । क झायहों कवणु देउ थुणहों' ॥४॥
जं एक्कु वि उत्तरु दिण्णु ण वि । त पुणु वि समुट्ठिउ कोव-हवि ॥५॥
उवसग्गु घोरु पारम्भियउ । वहुरूवें हिं जक्खु वियम्भियउ ॥६॥
आसीविस-विसहर-अजयरें हिं । सद्दूल-सीह-कुञ्जर-वरें हिं ॥७॥
गय-भूय-पिसाएँ हि रक्खसें हि । गिरि-पवण-हुआसण-पाउसें हिं ॥८॥

घत्ता

दस-दिसि-वहु अन्धारउ करेंवि ओरुम्मेंवि जज्जवि उत्थरें वि ।
गउ णिप्फलु सो उवसग्गु किह गिरि-मत्थएँ वासारत्तु जिह ॥९॥

[१०]

जं चित्तु ण सक्किउ अवहरें वि । थिउ तक्खणें अण्ण माय धरेंवि ॥१॥
दरिसाविउ सयलु वि वन्धुजणु । कलुणउ कन्दन्तु विसण्ण-मणु ॥२॥
कस-घाएँ हिं घाइज्जन्तु वणें । 'णिवडन्तुट्टन्तइँ रणें जें रणें ॥३॥
रयणासवु कइकसि चन्दणहि । हम्मन्तइँ जइ ण अम्हे गणहि ॥४॥
तो सरणु भणेंवि पडिव(?र)क्ख करें रिउ मारइ लग्गइ पुत्त धरें ॥५॥
त पुरिसयारु किं वीसरिउ । णव-वयणु जेण कण्ठउ धरिउ ॥६॥
अहों भाणुकण्ण दरें चारहडि । सिरि भञ्जहि लग्गउ छार-हडि ॥७॥
अहों धरहि विहीसण जत्ताइँ । वणें मेच्छहिँ पिट्टिज्जन्ताइँ ॥८॥

[९] यह सुनकर जम्बूद्वीपका स्वामी वह यक्ष ऐसे जल उठा मानो अग्निज्वालाओंका समूह हो। ऐसा कौन-सा अविचल व्यक्ति है जो मुझसे बाहर रहकर दुनियामें जीवित है ?" उनके स्थानके सामने जाकर उसने रत्नाश्रवके पुत्र रावणको देखा। वह बोला, "अरे नये संन्यासियो, किसका ध्यान करते हो, किस देव की स्तुति कर रहे हो ?" जब उन्होंने एक भी उत्तर नहीं दिया, तो फिर उस यक्षकी क्रोधज्वाला भड़क उठी। उसने भयंकर उपसर्ग करना शुरू कर दिया, वह स्वयं अनेक रूपोंमें फैलने लगा। विषदन्त-विषधर और अजगर, शार्दूल–सिंह और कुंजर, गज-भूत-पिशाच, राक्षस-गिरि-पवन-अग्नि और पावस से ॥१–८॥

घत्ता—उसने दसो दिशाओंमें अन्धकार फैला दिया। रुककर, जीतकर, उछलकर उसने उपसर्ग किया, परन्तु वह वैसे ही व्यर्थ गया, जैसे गिरिराजके ऊपर वर्षाऋतु व्यर्थ जाती है ॥९॥

[१०] जब वह यक्ष उनका चित्त विचलित न कर सका तो उसने तुरन्त दूसरी माया धारण की। उसने उनके सभी बन्धु-जनोको विषवमन और करुण विलाप करते हुए दिखाया। वनमे कोडोंके आघातसे पीटे जाते हुए और क्षण-क्षणमे गिरते-पडते हुए। रत्नाश्रव, कैकशी और चन्द्रनखा पीटी जा रही है, यदि हमे तुम कुछ नही गिनते, तो फिर कहो क्या प्रतिपक्षकी शरणमे जाये ? शत्रु मारता है और पीछे लगा हुआ है, ऐ पुत्र, बचाओ। क्या वह अपना पुरुषार्थ भूल गये, जिससे नौमुखका कण्ठा तुमने धारण किया था। अरे भानुकर्ण, तुम अपना शौर्य धारण करो, इसका सिर तोड दो जिससे वह धूलसे जा मिले। अरे विभीषण, जाते हुए इन्हें पकडो, वनमे ये म्लेच्छके द्वारा पीटे जा रहे है ॥१–८॥

घत्ता

अरे पुत्तहों णउ पडिरक्खु किय जं कालिय पालिय वड्ढविय ।
सो णिप्फलु सयलु किलेसु गउ जिह पावहों धम्मु णिअन्तियउ' ॥९॥

[११]

जं केण वि णउ साहारियउ । तं तिण्णि वि सत्तुसें मारियउ ॥१॥
पुणु तिहि मि जणहुँ दरिसावियउ । सिर-माण-सियालेंहि ग्गावियउ ॥२॥
णवि चल्लिउ सो वि तहों झाणु थिरु । माया-रावणउ करेवि सिरु ॥३॥
अग्गएँ घत्तिउ अचिचल-मणहें । साइहिँ रविकिरण-विहीसणहें ॥४॥
तं णिएँवि सीसु रुहिरारुणउ । तं झाणहों चलिय मणामणउ ॥५॥
णिद्धइँ सुद्दइँ थिर-जोयणइँ । उम्मग्गि पगलिहइँ लोयणइँ ॥६॥
सिर-कमलइँ ताह मि केराइँ । उवणाएँवि दुक्ख-जणेराइँ ॥७॥
रावणहों नम्पि दरिसावियइँ । पउमइँ व णाल-सेहावियइँ ॥८॥

घत्ता

जं एम वि रावणु अचलु थिउ तं देवहिँ साहुक्कारु किउ ।
विज्जहुँ सहासु उप्पण्णु किह तित्थयरहों केवल-णाणु जिह ॥९॥

[१२]

आगया कहकहन्ती महाकालिणी । गयण-सचालिणी भाणु-परिमालिणी॥१
कालि कोमारि वाराहि माहेसरी । वीर-वीरासणी जोगजोगेसरी ॥२॥
सोमणी रयण बम्भाणि इन्दाइणी । अणिम लहिमत्ति पण्णत्ति कब्बाइणी ॥३
डहणि उच्चाटिणी थम्भणी मोहणी । वइरि-विद्धसणी भुवण-संखोहणी ॥४॥
वारुणी पावणी भूमि-गिरि-दारिणी । काम-सुह-दाइणी बन्ध-वह-कारिणी॥५
सव्व-पच्छायणी सव्व-आकरिसिणी। विजय जय जिम्भिणी सव्व-भय-णासणी
सत्ति-सवाहिणी कुडिल अवलोयणी। अग्गि-जल-थम्भणी छिन्दणी भिन्दणी ।
आसुरी रक्खसी वारुणी वरिसणी । दारुणी दुण्णिवारा य दुद्दरिसणी ॥८॥

घत्ता—अरे पुत्रो, तुम प्रतिरक्षा नहीं करते, जो हमने तुम्हें पाला-पोसा और बड़ा किया, वह हमारा सब क्लेश व्यर्थ गया, वैसे ही जैसे पापीमे धर्मका व्याख्यान ॥९॥

[११] जब किसीने भी उन्हें सहारा नहीं दिया, तब उन तीनोको यक्षने मार डाला। फिर उन तीनोंको उसने ऐसा दिखाया कि श्मशानमे शृगालोंके द्वारा वे खाये जा रहे है। इससे भी उनका स्थिर ध्यान विचलित नही हुआ। तब माया-रावणका सिर काटकर, अविचल मन भानुकर्ण और विभीषणके सामने फेक दिया। रुधिरसे लाल उस सिरको देखकर उनका मन थोड़ा-थोडा ध्यानसे विचलित हो गया। उनकी स्निग्ध शुद्ध और स्थिर देखनेवाली ऑखे थोड़ी-थोडी गीली हो गयी। उनके भी दुख उत्पन्न करनेवाले सिररूपी कमलोंको ले जाकर रावणको दिखाया, मानो मृणालसे रहित कमल ही हों ॥१-८॥

घत्ता—जब भी रावण इस प्रकार अचल रहा, तब देवताओंने साधुकार किया। उसे एक हजार विद्याएँ उसी प्रकार सिद्ध हो गयीं, जिस प्रकार तीर्थंकरोको केवलज्ञान उत्पन्न होता है। ॥९॥

[१२] कड़कड़ाती हुई महाकालिनी आयी। गगन संचालिनी, भानु परिमालिनी, काली, कौमारी, वाराही, माहेश्वरी, घोर वीरासनी, योगयोगेश्वरी, सोमनी, रतन ब्राह्मणी, इन्द्रासनी, अणिमा, लघिमा, प्रज्ञप्ति, कात्यायनी, डायनी, उच्चाटनी, स्तम्भिनी, मोहिनी, वैरिनिर्ध्वंसिनी, भुवनसंक्षोभिणी, वारुणी, पावनी, भूमिगिरिदारुणी, कामसुखदायिनी, बन्धवधकारिणी, सर्पभस्मावहिनी, सर्वआकर्षिणी, विजयजयजृम्भिनी, सर्वमद-नाशिनी, शक्तिसंवाहिनी, कुटिलअवलोकिनी, अग्नि-जल स्तम्भिनी, छिन्दनी, भिन्दनी, आसुरी, राक्षसी, वारुणी, वर्षिणी, दारुणी, दुर्निवारा और दुर्दर्शिनी ॥१-८॥

घत्ता

आएहि वर-विज्जेंहि आइयहिं रावणु गुण-गण-अणुराइयहि ।
चउदिसि परिवारिउ सहइ किह मयलञ्छणु छणेँ ताराहुँ जिह ॥९॥

[१३]

सव्वोसह थम्मणी मोहणिय । सविद्धि णहङ्गण-गामिणिय ॥१॥
आयउ पञ्च वि चेवगयउ तहि । थिउ कुम्मयण्णु चल-झाणु जहि ॥२॥
सिद्धत्थ सत्तु-विणिवारिणिय । णिव्विग्घ गयण-सचारिणिय ॥३॥
आयउ चयारि पुणु चल-मणहोँ । आमण्णउ थियउ विहीसणहोँ ॥४॥
एत्थन्तरेँ पुण्ण-मणोरहेँण । बहु-विज्जालङ्किय-विग्गहेँण ॥५॥
णामेण सयपहु णयरु किउ । ण सग्ग-खण्डु अवयरेँ वि थिउ ॥६॥
अण्णु वि उप्पाइउ चेइहरु । मणहरु णामेण सहससिहरु ॥७॥
उत्तुङ्गु सिङ्गु उण्णइ करेँवि । ण वञ्छइ सूर-विम्वु धरेँवि ॥८॥

घत्ता

तं रिद्धि सुणेवि दसाणणहोँ परिओसु पवड्ढिउ परियणहोँ ।
आयइँ कइ-जाउहाण-बलइँ ण मिलेँवि परोप्परु जल-थलइँ ॥९॥

[१४]

ज दिट्ठ सेण्ण सयणहुँ तणिय । परिपुच्छिय पुणु अवलोयणिय ॥१॥
ताएँ वि सवीहिउ दहवयणु । 'एँहु देव तुहारउ वन्धु-जणु' ॥२॥
त णिसुणेँवि णरवइ णीसरिउ । णिय-विज्ज-सहासे परियरिउ ॥३॥
ण कमलिणि-सण्डे पवरु सरु । ण रासि-सहासे दियसयरु ॥४॥
स-विहीसणु कुम्भयण्णु चलिउ । ण दिवस-तेउ सूरहोँ मिलिउ ॥५॥
तिण्णि मि कुमार सचल्ल किर । उच्छलिय ताम फग्गाव-गिर ॥६॥
रयणासवु पत्तु स-वन्धुजणु । त पट्टणु त रावण-भवणु ॥७॥
त सह-मण्डउ मणि-वेयडिउ । त विज्ज-सहासु समावडिउ ॥८॥

घत्ता—रावणके गुण-गणोंमे अनुरक्त, आयी हुई इन विद्याओसे घिरा हुआ रावण वैसे ही शोभित था, जैसे ताराओ-से घिरा हुआ चन्द्रमा । ॥९॥

[१३] सर्वसहा, थम्भणी, मोहिनी, संवृद्धि और आकाश-गामिनी ये पाँच विद्याएँ वहाँ पहुँची, जहाँ चलितध्यान कुम्भकर्ण था। सिद्धार्थ, शत्रु-विनिवारिणी, निर्विघ्ना और गगन-संचारिणी ये चार चवलमन विभीषणके निकट स्थित हो गयी। इसके अनन्तर बहुत-सी विद्याओसे अलंकृत और पुण्य-मनोरथ रावणने स्वयप्रभ नामका नगर बसाया, मानो स्वर्ग-खण्ड ही उतरकर स्थित हो गया हो। उसने एक और चैत्यगृह बनाया, अत्यन्त सुन्दर उसका नाम सहस्रकूट था। उसकी ऊँची शिखरे उन्नति करके मानो सूर्यके बिम्बको पकड़ना चाहती है ॥१-८॥

घत्ता—"रावणके उस वैभवको देखकर परिजनोका सन्तोप बढ गया, वानरो और राक्षसोकी सेनाएँ आकर मिल गयी, मानो जलथल मिल गये हो।" ॥९॥

[१४] अपने लोगोंकी उस सेना को देखकर रावणने अव-लोकिनी विद्यासे पूछा। उसने भी दशाननको बताया, "हे देव, ये तुम्हारे बन्धुजन है।" यह सुनकर राजा बाहर निकला। अपनी हजार विद्याओसे घिरा हुआ वह ऐसा लग रहा था, मानो कमलिनी-समूहसे प्रवर सरोवर, मानो हजार रश्मियो से सूर्य। कुम्भकर्ण भी विभीषणके साथ चला, मानो दिवसका तेज सूर्य-के साथ मिल गया हो। जैसे ही तीनो कुमार चले वैसे ही चारणोंकी वाणी उछली। रत्नाश्रव बन्धुजनोके साथ वहाँ पहुँचा। वह नगर रावण का भवन, मणियोंसे वेष्टित वह सभाभवन आयी हुई हजार विद्याएँ ॥१-८॥

घत्ता

पेक्खेप्पिणु परिओसिय-मणेंण णिय तणय सुमालिहें णन्दणेंण ।
रोमञ्चाणन्द-णेह-जुएँहि चुम्बेवि अवगूढ स इ भु वेंहि ॥९॥

●

[१०. दसमो संधि]

साहिउ छट्टोववासु करेंवि णव-णीलुप्पल-णयणेंण ।
सुन्दरु सु-वसु सु-कलत्तु जिह चन्दहासु दहवयणेंण ॥१॥

[१]

दससिरु विज्जा-दससय-णिवासु । साहेप्पिणु दूसहु चन्दहासु ॥१॥
गउ वन्दण-हत्तिएँ मेरु जाम । संपाइय मय-मारिच्च ताम ॥२॥
मन्दोवरि पवर-कुमारि लेवि । रावणहों जं भवणु पइट्ठु वे वि ॥३॥
चन्दणहि णिहालिय तेहिं तेत्थु । 'परमेसरि गउ दहवयणु केत्थु' ॥४॥
त णिसुणेंवि णयणाणन्दणीएँ । वुच्चइ रयणासव-णन्दणीएँ । ॥५॥
'छुड्डु छुड्डु साहेप्पिणु चन्दहासु । गउ अहिमुहु मेरु-महीहरासु ॥६॥
एत्तिएँ आवइ वइसरहु ताम' । त लेवि णिमित्तु णिविट्ठ जाम ॥७॥
वेत्तालएँ महि कम्पणहॅ लग्ग । सचक्किय असेस वि कउह-मग्ग ॥८॥

घत्ता

खणें अन्धारउ खणें चन्दिणउ खणें धाराहरु वरिसइ ।
विज्जउ जोक्खन्तउ दहवयणु ण माहेन्दु पदरिसइ ॥९॥

घत्ता—देखकर, सन्तुष्ट मन होकर सुमालिके पुत्र रत्नाश्रवने अपने पुत्रोको चूमकर पुलकित बाहुओसे आलिंगनमे भर लिया ॥९॥

दसवीं सन्धि

नवनील कमलके समान नेत्रवाले रावणने छह उपवास कर, सुन्दर तथा सुवंश और सुकलत्रकी तरह चन्द्रहास खड्ग सिद्ध किया।

[१] हजार विद्याओंके निवासस्थान चन्द्रहास खड्ग साधकर, जब वन्दना-भक्ति करनेके लिए सुमेरु पर्वत पर गया, तब मदमारीच आये। प्रवर कुमारी मन्दोदरीको लेकर वे रावणके घरमे प्रविष्ट हुए। वहाँ उन्होंने चन्द्रनखाको देखा और पूछा, "परमेश्वरी, दशानन कहाँ गया है ? यह सुनकर नेत्रोको आनन्द देनेवाली रत्नाश्रवकी कन्याने कहा, "चन्द्रहास खड्ग साधकर अभी-अभी सुमेरु पर्वतकी ओर गये है। तबतक आप यहाँ आकर बैठे।" उसे (मन्दोदरी) को लेकर क्षण-भर वे बैठे ही थे कि सन्ध्या समय धरती काँपने लगी, समस्त दिशामार्ग चलित हो उठे ॥१-८॥

घत्ता—एक पलमे अँधेरा, दूसरे पलमें चाँदनी। पलमे मेघोंकी वर्षा, मानो रावण देखता हुआ माहेन्द्री विद्याका प्रदर्शन कर रहा था ॥९॥

[२]

मम्भीसेँवि मन्दोवरि मएण । चन्दणहि पपुच्छिय मय-गएण ॥१॥
'एउ काइँ भडारिएँ कोउहल्लु । पवियम्भइ रएँ पेम्मु व णवल्लु' ॥२॥
स वि पचविय 'किं ण मुणिउ पयाउ । दहगीव-कुमारहोँ एँहु पहाउ' ॥३॥
त णिसुणेँवि सयल वि पुलइयङ्ग । अवरोप्परु मुहइँ णिएहुँ लग्ग ॥४॥
एत्थन्तरेँ किङ्कर-सय-सहाउ । मय-दूसावासु णियन्तु आउ ॥५॥
'एँहु को आवासिउ समभरेण । पणवेवि कहिउ केण वि णरेण ॥६॥
'विज्जाहर मय-मारिच्च के वि । तुम्हहँ मुहवेक्खा आय वे वि' ॥७॥
त णिसुणेँवि जिणवर-भवणु ढुक्कु । परियञ्चेवि वन्द वि ताण-मुक्कु ॥८॥

घत्ता

सहसत्ति दिट्ठु मन्दोवरिएँ दिट्ठिएँ चल-मउँहालएँ ।
दूरहोँ जेँ समाहउ वच्छयलेँ ण णीलुप्पल-मालएँ ॥९॥

[३]

दीसइ तेण वि सहसत्ति वाल । ण भसलेँ अहिणव-कुसुम-माल ॥१॥
दीसन्ति चलण-णेउर रसन्त । ण महुर-राव बन्दिण पढन्त ॥२॥
दीसइ णियम्बु मेहल-समग्गु । ण कामएव-अत्थाण-मग्गु ॥३॥
दीसइ रोमावलि छुडु चडन्ति । ण कसण-वाल-सप्पिणि ललन्ति ॥४॥
दीसन्ति सिहिण उवसोह देन्त । ण उरयलु भिन्देँवि हत्थि-दन्त ॥५॥
दीसइ पप्फुल्लिय-वयण-कमलु । णीसासामोयासत्त-भसलु ॥६॥
दीसइ सुणासु अणुहुअ-सुअन्धु । ण णयण-जलहोँ किउ सेउ-वन्धु ॥७॥
दीसइ णिडालु सिर-चिहुर-छण्णु । ससि-विम्बु व णव-जलहर-णिमण्णु ॥८

[२] मन्दोदरीको अभय वचन देते हुए, डरकर मयने चन्द्रनखासे पूछा, "यह कौन-सा कुतूहल है, जो अनुरक्तमें नये प्रेमकी तरह फैल रहा है?" उसने उत्तर दिया, "क्या तुम यह प्रताप नहीं जानते? यह दशाननका प्रभाव है?" यह सुनकर सभी पुलकित होकर एक-दूसरेका मुख देखने लगे। इतनेमें सैकड़ों अनुचरोंके साथ, मयके निवासस्थानको देखते हुए रावण आया। उसने पूछा, "यहाँ ठाठ-बाटसे किसे ठहराया गया है?" तब प्रणाम करते हुए किसी एक नरने कहा, "मय और मारीच कई विद्याधर तुमसे मिलनेकी इच्छासे आये हैं।" यह सुनकर वह जिनवर-भवनमें पहुँचा। वहाँ सन्त्राससे मुक्त जिनकी प्रदक्षिणा और वन्दना की ॥१-८॥

घत्ता—फिर सहसा मन्दोदरीने अपनी चंचल भौहोंवाली दृष्टिसे उसे देखा, जैसे वह दूरसे ही नील कमलोंकी मालासे वक्षस्थलमें आहत हो गया हो ॥९॥

[३] उसने भी सहसा बालाको देखा, मानो भ्रमरोंने अभिनव कुसुममालाको देखा हो। मुखर चंचल नूपुर ऐसे लगते थे मानो चारण मधुरस्वरमें पढ़ रहे हैं। मेखलासे रहित नितम्ब ऐसे दिखाई देते हैं मानो कामदेवके आस्थानका मार्ग हो, धीरे-धीरे चढ़ती हुई रोमावली ऐसी दिखाई देती है, मानो काली बाल नागिन शोभित हो, शोभा देनेवाले स्तन ऐसे दिखाई देते हैं, मानो हृदयोंको भेदनेके लिए हाथी दाँत हो। खिला हुआ मुख-कमल ऐसा दिखाई देता है जैसे निःश्वासोंके आमोदसे अनुरक्त भ्रमर उसके पास हो। अनुभूत सुगन्ध उसकी नाक ऐसी मालूम देती है मानो नेत्रोंके जलके लिए सेतुबन्ध बना दिया गया हो। सिरके बालोंसे आच्छन्न ललाट ऐसा दिखाई देता है मानो जैसे चन्द्रबिम्ब नवजलधरमें निमग्न हो ॥१-८॥

घत्ता

परिभमइ दिट्ठि तहों तहिँ जेँ तहिँ अण्णहिँ कहि मि ण थक्कइ ।
रस-लम्पड महुयर-पन्ति जिम केयइ मुएँ वि ण सक्कइ ॥९॥

[४]

दहगीव-कुमारहों लहेँ वि चित्तु । एत्थन्तरेँ मारिच्चेण वुत्तु ॥१॥
'वेयड्ढहों दाहिण-सेढि-पवरु । णामेण देवसगीय-णयरु ॥२॥
तहिँ अम्हइँ मय-मारिच्च भाय । रावण विवाह-कज्जेण आय ॥३॥
लइ तुज्झु जेँ जोग्गउ णारि-रयणु । उट्ठु दुट्ठु देव करेँ पाणि-गहणु ॥४॥
एउ जेँ मुहुत्तु णक्खत्तु वारु । ज जिणु पच्चक्खु तिलोय-सारु ॥५॥
कल्लाण-लच्छि-मङ्गल-णिवासु । सिव-सन्ति-मणोरह-सुह-पयासु'॥६॥
त णिसुणेँवि तुट्ठेँ दहमुहेण । किउ तक्खणेँ पाणिग्गहणु तेण ॥७॥
जय-तूरहिँ धवलहिँ मङ्गलेहिँ । कञ्चण-तोरणेँ हिँ समुज्जलेहिँ ॥८॥

घत्ता

त वहु-वरु णयणाणन्दयरु विसइ सयपहु पट्टणु ।
ण उत्तम-रायहस-मिहुणु पप्फुल्लिय-पङ्कय-व(य)णु ॥९॥

[५]

अवरेक्क-दिवसेँ दिढ-वाहु-दण्डु । विज्जउ जोक्खन्तु महा-पयण्डु ॥१॥
गउ तेत्थु जेत्थु माणुस-वमालु । जलहरधरु णामेँ गिरि विसालु ॥२॥
गन्धव्व-वावि जहिँ जगेँ पयास । गन्धव्व-कुमारिहिँ छह सहास ॥३॥
दिवेँ-दिवेँ जल-कील करन्तु जेत्थु । रयणासव-णन्दणु ढुक्कु तेत्थु ॥४॥
सहसत्ति दिट्ठु परमेसरीहिँ । ण सायर-सयल-महा-सरीहिँ ॥५॥
ण णव-मयलञ्छणु कुमुइणीहिँ । ण वाल-दिवायरु कमलिणीहिँ ॥६॥
सव्वउ रक्खण परिवारियाउ । सव्वउ सव्वालङ्कारियाउ ॥७॥

घत्ता—उसपर उसकी दृष्टि जहाँ भी पड़ती वह वही घूमती रहती। दूसरी जगह वह ठहरती ही नही। उसी प्रकार जिस प्रकार रसलम्पट मधुकर पंक्ति केतकीको नही छोड़ पाती ॥९॥

[४] दशग्रीव कुमार का मन लेकर, इनके अनन्तर, मारीच बोला, "विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी मे देवसंगीत नगर है। वहाँ हम मय मारीच भाई-भाई है। हे रावण, हम विवाह के लिए आये है। इसे ले ले, यह नारीरत्न आपके योग्य है। हे देव, उठिए और पाणिग्रहण कीजिए। यही वह मुहूर्त, नक्षत्र और दिन है। जो जिन की तरह प्रत्यक्ष और त्रिभुवनश्रेष्ठ है। कल्याण, मगल और लक्ष्मी का निवास है। शिव शान्त सुख मनोरथको पूरा करनेवाला।" यह सुनकर सन्तुष्ट मन रावणने तत्काल पाणिग्रहण कर लिया, जयतूर्य, धवल, मंगल गीतों, उज्ज्वल स्वर्ण तोरणोंके साथ ॥१-८॥

घत्ता—तब वधू और वर नेत्रोके लिए आनन्ददायक, स्वयंप्रभ नगरमे प्रवेश करते है, मानो उत्तम राजहंसो का जोड़ा खिले हुए पंकजवनमे प्रवेश कर रहा हो ॥९॥

[५] एक और दिन, महाप्रचण्ड दृढ बाहुवाला रावण विद्याका प्रदर्शन करता हुआ वहाँ गया, जहाँ मनुष्योंके कोलाहलसे व्याप्त मेघरव नामक विशाल पर्वत था। वहाँ दुनियाकी प्रसिद्ध गन्धर्व बावडी थी। उसमे छह हजार गन्धर्व कुमारियाँ प्रतिदिन जलक्रीडा करती थी। रत्नाश्रवका पुत्र वहाँ पहुँचा। उन परमेश्वरियोने उसे अचानक इस प्रकार देखा जैसे समस्त महासरिताओने समुद्रको देखा हो, मानो नव कुमुदिनियोने नव चन्द्रको, मानो कमलिनियोने बाल दिवाकरको। सबकी सब रक्षकोसे घिरी हुई थीं। सभी सब प्रकारके अलकारोसे अलंकृत थी ॥१-७॥

घत्ता

सव्वउ भणन्ति वउ परिहरेँ वि वम्मह-सर-जज्जरियउ।
'पइँ मेल्लेंवि अण्णु ण भत्तारु परिणि णाह मइँ वरियउ' ॥८॥

[६]

एत्थन्तरेँ आरक्खिय-भडेहिँ। लहु गम्पिणु गमण-वियावडेहिँ ॥१॥
जाणाविउ सुन्दर-सुरवरासु। 'मव्वउ कण्णउ एक्कहोँ णरासु ॥२॥
करेँ लग्गउ तेण वि इच्छियाउ। पच्चेल्लिउ सुसमाइच्छियाउ' ॥३॥
तं णिसुणेँवि सुर-सुन्दरु विरुद्धु। उद्धाइउ णाइँ कियन्तु कुद्धु ॥४॥
अण्णु वि कणयाहिउ बुह-पमाणु। तं पेक्खेँवि साहणु अप्पमाणु ॥५॥
विट्टिएँहि वुत्तु 'णउ को वि सरणु। तउ अम्हहँ कारणेँ ढुक्कु मरणु' ॥६॥
रावणेण हसिउ 'किं आयएहिँ। किर काइँ सियालहिँ घाइएहिँ ॥७॥

घत्ता

ओसोवणि विज्जएँ सो चवेँवि बद्धा विसहर-पासेँहिँ।
जिह दूर-भव्व भव-सचिएँहिँ दुक्किय-कम्म-सहासेँहिँ ॥८॥

[७]

आमेल्लेवि पुज्जेवि करेँवि दास। परिणेप्पिणु कण्णहँ छ वि सहास ॥१॥
गउ रावणु णिय पट्टणु पविट्ठु। स-कियत्थु सयल-परियणेण दिट्ठु ॥२
बहु-कालेँ मन्दोयरिहेँ जाय। इन्दइ-घणवाहण बे वि भाय ॥३॥
एत्तहेँ वि कुम्भपुरेँ कुम्भयण्णु। परिणाविउ सिय-सपय पवण्णु ॥४॥
रत्तिन्दिउ लङ्काउरि-पएसु। जगडइ वइसवणहोँ तणउ देसु ॥५॥
गय पय कूवारे कोउ हूउ। पेसिउ वयणालङ्कार-दूउ ॥६॥
दहवयणट्ठाणु पइट्ठु गम्पि। तेहि मि किउ अब्भुत्थाणु किं पि ॥७॥
पभणिउ 'सुमालि-पहु देहि कण्णु। पोत्तउ णिवारि इउ कुम्भयण्णु ॥८॥

घत्ता—कामदेवके तीरोंसे जर्जर सभी अपनी मर्यादा तोड़ती हुई बोली, "तुम्हें छोड़कर दूसरा हमारा पति नही है, विवाह कर लीजिए, हमने स्वय वरण कर लिया है" ॥८॥

[६] इतनेमे जानेके लिए व्याकुल सभी आरक्षक भटोने जाकर देववर सुन्दरको बताया, "सब कन्याएँ एक आदमीके हाथ लग गयी है, उसने भी उन्हे चाहा है, प्रत्युत अच्छी तरह चाहा है।" यह सुनकर सुरसुन्दर विरुद्ध हो उठा, वह क्रुद्ध-कृतान्तकी भाँति दौड़ा, एक और कनक राजा और बुध के साथ। अप्रमाण साधनके साथ उसे देखकर कन्याएँ बोली, "अब कोई शरण नही है, तुम्हारी हम लोगोंके कारण मौत आ पहुँची है।" इसपर रावण हँसा और बोला, "इन आक्रमण करनेवाले सियारोंसे क्या ? ॥१-७॥

घत्ता—उसने अवसर्पिणी विद्यासे कहकर, विषधर पाशोसे उन्हे बँधवा लिया, उसी प्रकार जिस प्रकार भवसचित हजारो दुष्कृत कर्मोंसे दूरभव्य बाँध लिये जाते है ॥८॥

[७] उन्हे छोड़कर सत्कार कर अपने अधीन बनाकर उसने छह हजार कन्याओसे विवाह कर लिया। रावण अपने घर गया। प्रवेश करते हुए कृतार्थ उसे समस्त परिजनोने देखा। बहुत समयके अनन्तर, मन्दोदरीसे दो भाई इन्द्रजीत और मेघवाहन उत्पन्न हुए। यहाँ कुम्भकर्णने भी कुम्भपुरमे प्रवीण श्री सम्पदासे विवाह किया। रात-दिन वह लकापुर प्रदेशके वैश्रवणवाले देशमें झगड़ा करने लगा। प्रजा विलाप करती हुई गयी। राजा क्रुद्ध हो उठा। उसने वचनालंकार दूत भेजा। वह जाकर दशाननके दरबारसे प्रविष्ट हुआ। उसने भी उसके लिए थोड़ा-सा अभ्युत्थान किया। दूत बोला, "सुमालि राजन, कन्या हो

घत्ता

अवराह-मणुहि मि वइसवणु तुम्हहिँ समउ ण जुज्झइ।
टञ्जन्तु वि सवर-पुलिन्दएँहिँ विज्झु जेम ण विरुज्झइ ॥९॥

[८]

पर आएं पेक्खमि विपडिवण्णु। जे णाहिँ णिवारहोँ कुम्भयण्णु ॥१॥
एयहोँ पासिउ तुम्हहँ विणासु। एयहोँ पासिउ आगमणु तासु ॥२॥
एयहोँ पासिउ पायाल-लङ्क। पइसेवउ पुणु वि करेंवि सङ्क ॥३॥
मालि वि जगडन्तउ आसि एम। मुउ पईंवि पईवेँ पयङ्गु जेम ॥४॥
तइयहुँ तुम्हहुँ चित्तन्तु जो उजेँ। एवहिँ दीसइ पडिवउ वि सो जेँ ॥५॥
वरि एँहु जं समप्पिउ कुल-कयन्तु। अच्छउ तहोँ घरेँ णियलइँ वहन्तु'॥६॥
त णिसुणेंवि रोसिउ णिसियरिन्दु। 'कहोँ तणउ घणउ कहोँ तणउ इन्दु'॥७॥
अवलोइउ भीसणु चन्दहासु। पडिवक्ख-पक्ख-खय-काल-वासु ॥८॥
पईँ पढमु करेप्पिणु वलि-विहाणु। पुणु पच्छएँ धणयहोँ मलमि माणु'॥९॥
सिरु णावेंवि वुत्तु विहीसणेण। 'विणिवाइएण दूवेण एण ॥१०॥

घत्ता

परिभमइ अयसु पर-मण्डलहिँ तुम्हहँ एउ ण छज्जइ।
जुज्झन्तउ हरिण-उलेहिँ सहुँ किं पञ्चमुहु ण लज्जइ' ॥११॥

[९]

णीसारिउ दूउ पणट्ठु केम। केसरि-कम-चुक्कु कुरङ्गु जेम ॥१॥
एत्तहेँ वि दसाणणु विप्फुरन्तु। सण्णहेँवि विणिग्गउ जिह कयन्तु॥२॥
णीसरिउ विहीसणु भाणुकण्णु। रयणासउ मउ मारिच्चु अण्णु ॥३॥
णीसरिउ सहोवरु मल्लवन्तु। इन्दइ घणवाहणु सिसु वि होन्तु॥४॥
हउ तूरु पयाणउ दिण्णु जाम। दूएण वि धणयहोँ कहिउ ताम॥५॥

घत्ता—सौ अपराध होने पर भी वैश्रवण तुम्हारे साथ युद्ध नहीं करेगा, उसी प्रकार, जिस प्रकार, शबर पुलिन्दोंके द्वारा जलाये जानेपर भी, विन्ध्याचल उनके विरुद्ध नहीं होता ॥९॥

[८] पर अब इसे मैं आपत्तिजनक समझता हूँ। यदि आप कुम्भकर्ण का निवारण नहीं करते। इसके पास तुम्हारा विनाश है, धनदका आना, इसके हाथमें है। इसके कारण ही, तुम्हे शंकाकर पातालसे प्रवेश करना पडेगा। मालि भी इसी प्रकार झगड़ा किया करता था। वह उसी प्रकार मारा गया, जिस प्रकार प्रदीपमे पतंग। उस समय तुम लोगोंका जो हाल हुआ था, ऐसा लगता है कि इस समय वही वापस होना चाहता है। अच्छा यही है कि उस कुलकृतान्तको मुझे सौप दे, या फिर वह बेड़ियाँ पहनकर अपने घरमें पडा रहे।" यह सुनकर निशाचरेन्द्र कुपित हो उठा, "किसका धनद ? और किसका इन्द्र ?" उसने अपना भीषण चन्द्रहास खड्ग देखा जिससे प्रतिपक्षके पक्षका क्षय करनेके लिए कालका निवास था। वह बोला, "मै पहले तुम्हारा बलिविधान कर, फिर बादमे, धनदका मानमर्दन करूँगा।" तव सिर नवाते हुए, विभीषणने कहा, "इस दूतको मारनेसे क्या ?" ॥१-१०॥

घत्ता—शत्रुमण्डलोमे अयश फैलेगा, तुम्हे यह शोभा नहीं देता, क्या मृगकुलसे लडता हुआ पंचानन लज्जित नही होता ? ॥११॥

[९] निकाला गया दूत ऐसे भागा, जैसे सिंहके पंजेसे चूका कुरंग भागता है। यहाँ दशानन भी, आवेशसे भरकर सन्नद्ध होकर कृतान्तकी तरह निकला। विभीषण और भानुकर्ण भी निकले। रत्नाश्रव, मय-मारीच और दूसरे लोग भी निकले। सहोदर माल्यवन्त भी निकला। इन्द्रजीत और शिशु होते हुए भी मेघवाहन निकला, प्रस्थानके तूर्य बज उठे। तव दूतने भी

'मालिहेँ पासिउ एयहों मरट्टु । उक्खन्धु देवि अण्णु वि पयट्टु' ॥६॥
त वयणु सुणेँवि सण्णहेँवि जक्खु । णीसरिउ णाइँ सइँ दससयक्खु ॥७॥
थिउ उड्डेँवि गिरि-गुञ्जक्खेँ जाम । त जाउहाण-बलु ढुक्कु ताम ॥८॥

घत्ता

हय समर-तूर किय-कलयलइँ अमरिस-रहस-विसट्टइँ ।
वइसवण-दसाणण-साहणइँ विण्णि वि रणेँ अब्भिट्टइँ ॥९॥

[१०]

केण वि सुन्दर सु-रमण सु-लेव । आलिङ्गिय गय-घड वेस जेव ॥१॥
स वि कासु वि उरयलेँ वेज्झु देह । ण विवरिय-सुरए हियउ लेइ ॥२॥
केण वि आवाहिउ मण्डलग्गु । करि-सिरु णिव्वट्टॅवि महिहिँ लग्गु॥३॥
केण वि कासु वि गय-घाउ दिण्णु । किउ स-रहु स-सारहि चुण्णु चुण्णु॥४॥
केण वि कासु वि उरु सरहिँ भरिउ । लक्खिज्जइ ण रोमञ्चु धरिउ ॥५॥
केण वि कासु वि रणेँ मुक्कु चक्कु । थिउ हियएँ धरेँवि ण पिसुण-वक्कु॥६॥
एत्थन्तरेँ धणए ण किउ खेउ । हक्कारिउ आहवेँ कइ कसेउ ॥७॥
'लइ तुज्झु जुज्झु एत्तडउ कालु । ढुक्को सि सीह-दन्तन्तरालु' ॥८॥

घत्ता

त णिसुणेँवि रावणु कुइय-मणु वइसवणहों आलग्गउ ।
करु उब्भेवि गज्जेँवि गुलगुलेँवि ण गयवरहों महग्गउ ॥९॥

[११]

अम्बुहर-लील-सन्दरिसणेण । सर-मण्डउ किउ तहिँ दस-सिरेण॥१॥
णिवारिउ दिणयर-कर-णिहाउ । णिसि दिवसु किं ति सन्देहु जाउ ॥२॥

जाकर धनदसे कहा, "मालिको इतना अहंकार है कि एक तो उसने घेरा डाल दिया है और दूसरेको भी उकसाया है।" यह सुनकर धनद तैयार होकर निकला, मानो स्वयं सहस्रनयन निकला हो। वह उडकर जबतक गुंजागिरिपर डेरा डालता है, तबतक राक्षसोकी सेना वहाँ आ पहुँची ॥१-८॥

घत्ता—युद्धके नगाड़े बज उठे। अमर्ष और हर्षसे विशिष्ट कोलाहल होने लगा। वैश्रवण और रावण दोनोकी सेनाएँ युद्धमे भिड गयी ॥९॥

[१०] किसीने गजघटाका उसी प्रकार आलिंगन कर लिया, जिस प्रकार अच्छा विलासी वेश्याका आलिंगन कर लेता है। गजघटा भी किसीके उरतलसे घात्र कर देती है, मानो विपरीत सुरतिमे हृदय ले रही हो। किसीने तलवारसे आघात किया, और हाथीका सिर कटकर धरतीपर गिर पडा। किसीने किसीपर गदेसे आघात किया और रथ तथा सारथिके साथ चूर्ण-चूर्ण कर दिया। किसीने किसीके वक्षको तीरोसे भर दिया, वह ऐसा दिखाई देता है, मानो उसने रोमांच धारण किया हो। युद्धमे किसीने किसीके ऊपर चक्र छोडा, वह उसके वक्षपर ऐसे स्थित होकर रह गया, मानो दुष्टका वचन हो। इस बीच युद्धमे खिन्न न होते हुए रावणको ललकारा, "ले तुझे लडनेका इतना समय है, तू सिहकी दाढोंके बीचसे अभी ही पहुँचता है" ॥१-८॥

घत्ता—यह सुनकर कुपितमन, रावण वैश्रवणसे ऐसे आ भिडा जैसे अपनी सूँड उठाकर, गरजकर और गुल-गुल आवाज करते हुए महागज दूसरे महागजसे भिड गया हो ॥९॥

[११] अपनी मेघलीलाका प्रदर्शन करते हुए दशाननने तीरोका मण्डप तान दिया, तब दिनकर-अस्त्रसे उसका निवारण कर दिया गया, इससे यह सन्देह होने लगा कि दिन है या

सन्दणेँ हएँ गएँ धय-चिन्धेँ छत्ते । जम्पाणेँ विमाणेँ णरिन्द-गत्तेँ ॥३॥
थरथरहरन्त सर लग्ग केम । धणवन्तएँ माणुसेँ पिसुण जेम ॥४॥
जक्खेण वि हय वाणेहिँ वाण । मुणिवरेण कसाय व दुक्कमाण ॥५॥
धणु पाडिउ पाडिउ छत्त-दण्डु । दहमुह-रहु किउ सय-खण्ड-खण्डु॥६॥
अण्णेण चडेप्पिणु भिडिउ राउ । ण गिरि-सघायहोँ कुलिम्-घाउ ॥७॥
हउ धणउ भिण्डिवालेण उरसेँ ओणल्लु माणु लहसिएँ व दिवसेँ ॥८॥

घत्ता

णिउ णिय-मामन्तेँहिँ वइसवणु विजय दसाणणेँ घुट्ठउ ।
'कहिँ जाहि पाव जीवन्तु महु' कुम्भयण्णु आरुट्ठउ ॥९॥

[१२]

'आए समाणु किर कवणु सत्तु । घाइज्जइ णासन्तो वि सत्तु ॥१॥
ज फिट्टइ जम्म-सयाहँ काणि' । किर जाम पधावइ सूल-पाणि ॥२॥
अवरुडवि धरिउ विहीसणेण । 'किं कायर-णर विद्धसणेण ॥३॥
सो हम्मइ जो पहणइ पुणो वि । कि उरउ म जीवउ णिव्विसो वि॥४॥
णासउ वराउ णिय-पाण लेवि' । थिउ भाणुरुण्णु मच्छरु मुएँवि ॥५॥
एत्थन्तरेँ वइसवणहोँ मणिट्ठु । सु-कलत्तु व पुप्फ-विमाणु दिट्ठु ॥६॥
तहिँ चडिउ णराहिउ मुएँवि सङ्क । पट्ठविय पसाहा के वि लङ्क ॥७॥
अप्पुणु पुणु जो जो को वि चण्डु । तहोँ तहोँ ढुक्कइ जिह काल-दण्डु॥८॥

घत्ता

णिय-वन्धव-ससणेँहिँ परियरिउ दणुवइ दुदम-दमन्तउ ।
आहिण्डइ लीलएँ इन्दु जिह देस-स य भु अन्तउ ॥९॥

●

रात। रथ, गज, अश्व, ध्वजचिह्न, छत्र, जम्पान विमान और राजाओंके शरीरोंसे घर-घर करते हुए तीर ऐसे जा लगे मानो धनवान् आदमीके पीछे चापलूस लोग लगे हो। यक्षेन्द्र धनदने भी तीरोंसे तीरोंको काटा वैसे ही, जैसे मुनिवर आती हुई कषायोंको काट देते हैं। धनुष गिर गये और छत्र तथा दण्ड भी जा पड़े। उसने दशमुखके रथके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। तब वह दूसरे रथपर चढकर राजासे भिडा, मानो वज्रका आघात गिरि समूहसे मिला हो। धनद भिन्दिपाल अस्त्रसे छातीमे आहत हो गया। और दिनका अन्त होनेपर सूर्यकी तरह लुढक गया॥१-८॥

घत्ता—वैश्रवणके सामन्त उसे उठाकर ले गये, दशाननने विजयकी घोषणा कर दी। तब कुम्भकर्ण क्रुद्ध हो उठा, "हे पाप, तू जीते जी कहाँ जाता है" ॥९॥

[१२] "इसके समान कौन क्षत्री है, भागते हुए भी इसका घात किया जाये, जिससे सैकडों वर्षोंका वैर मिट जाये।" यह कहते हुए वज्र हाथमें लेकर कुम्भकर्ण जैसे ही दौडता है, वैसे ही विभीषणने उसे रोक लिया, यह कहकर कि "कायर मनुष्यको मारनेसे क्या?" उसे मारना चाहिए, जो फिरसे प्रहार करता है, क्या साँप निर्विष होकर भी जिन्दा न रहे? वह बेचारा अपने प्राण लेकर नष्ट हो रहा है।" तब कुम्भकर्ण मत्सर छोडकर चुप हो गया। इसके बीच वैश्रवणका सुकलत्रकी तरह मनको अच्छा लगनेवाला पुष्पक-विमान दिखाई दिया। नराधिप रावण शंका छोडकर उसपर चढ गया, कितने ही लोगोंको उसने लंका भेज दिया। वह स्वयं जो-जो भी चण्ड था, उसके पास कालदण्ड की तरह पहुँचा॥१-८॥

घत्ता—दुर्दमनीयोका दमन करता हुआ और अपने बान्धव और स्वजनोसे घिरा हुआ राक्षस रावण, इन्द्रकी तरह लीलापूर्वक घूमने लगा, सैकडों देशोका उपभोग करता हुआ॥९॥ ●

छट्ठएँ पहिमि हूअ आवग्गी । अण्णु त्रि मयणावलि करें लग्गी॥७॥
सत्तमेँ गम्पि जणणि जोक्कारिय । अट्ठमेँ दिवसेँ पुज्ज णीसारिय ॥८॥

घत्ता

एयइँ तेण वि णिम्मियइँ ससि-सङ्ख-खीर-कुन्दुज्जलइँ ।
आहरणइँ व वसुन्धरिहिँ सिव-सासय-सुहइँ व अविचलइँ॥९॥

[३]

गउ सुणन्तु हरिसेण-कहाणउ । सम्मेय-इरिहिँ मुक्कु पयाणउ ॥१॥
ताम णिणाउ समुट्ठिउ भीसणु । जाउहाण-साहण-सतासणु ॥२॥
पेम्मिय हत्थ-पहत्थ पधाइय । वण-करि णिएँवि पडीवा आइय ॥३॥
'देव देव किउ जेण महारउ । अच्छइ मत्त-हत्थि अइरावउ ॥४॥
गज्जणाएँ अणुहरइ समुद्दहोँ । सीयरेण जलहरहोँ रउद्दहोँ ॥५॥
कद्दमेण णव-पाउस-कालहोँ । णिज्झरेण महिहरहोँ विसालहोँ ॥६॥
रुक्खुम्मूलणेण दुव्वायहोँ । सुहड-विणासणेण जमरायहोँ ॥७॥
दसणेण आसीविस-सप्पहोँ । विविह-सयावत्थएँ कन्दप्पहोँ ॥८॥

घत्ता

इन्दु वि चडेँवि ण सक्कियउ खन्धासणेँ एयहोँ वारणहोँ ।
गउ चउपासिउ परिममेँवि जिम अत्थ-हीणु कामिणि-जणहोँ॥९॥

[४]

अण्णुण्णु दसणगय-कागण । माहव-मासेँ देसेँ साहारणेँ ॥१॥
उभय-चारि सव्वङ्गिय-सुन्दरु । मद-हत्थि णामेण मणोहरु ॥२॥
सत्त समुत्तुङ्गउ णव दीहरु । दह परिणाहु तिण्णि कर वित्थरु ॥३॥
णिद्ध-दन्तु महु-पिङ्गल-लोयणु । अयम्बि-कुसुम-णिहु रत्त-कराणणु॥४॥

महीधरके युद्धमें उसे रत्नसहित चक्र प्राप्त हुआ। छठे दिन समूची धरती उसके अधीन हो गयी और मदनावली उसे हाथ लगी। सातवे दिन जाकर उसने मॉका जय-जयकार किया, और तब आठवे दिन पूजायात्रा निकाली ॥१–८॥

घत्ता—शशि, क्षीर, शंख और कुन्दके समान ये मन्दिर उसी हरिषेण द्वारा बनवाये गये है जो ऐसे जान पडते है जैसे पृथ्वीके अलंकार हो, या अविचल शिव–शाश्वत सुख हों ॥९॥

[३] इस प्रकार हरिषेणकी कहानी सुनते हुए उसने सम्मेद शिखरकी ओर प्रस्थान किया। इतनेमें एक भीषण शब्द हुआ जो राक्षसोकी सेनाके लिए सन्तापदायक था। उसने हस्त-प्रहस्तको भेजा, वे दौडकर गये और एक वनगज देखकर वापस आये। उन्होने कहा, "देवदेव, जिसने महाशब्द किया है, वह मदवाला ऐरावत हाथी है, जो गर्जनमे भयंकर समुद्र का, जलकण छोड़नेमे महामेघोका, कीचडमें नव वर्षाकालका, निर्झरमे विशाल पर्वतोका, पेडोको उखाड़नेमें दुर्वात (तूफान) का, सुभटोके विकासमे यमराजका, काटनेमे दन्तविष महा-नागका और विभिन्न मदावस्थाओमे कामदेवका अनुकरण करता है ॥१–८॥

घत्ता—इस महागजके कन्धेपर इन्द्र भी नहीं चढ सका, वह इसके चारो ओर घूमकर उसी प्रकार चला गया जिस प्रकार निर्धन व्यक्ति कामिनीजनके आस-पास घूमकर चला जाता है ॥९॥

[४] और यह उत्पन्न हुआ है साहारण देशके दशार्ण काननमे चैत्र माहमे। यह चौरस सर्वांग सुन्दर, भद्र हस्ति है। यह सात हाथ ऊँचा, नौ हाथ लम्बा और दस हाथ चौड़ा है। इसकी सूँड तीन हाथ लम्बी है। दॉत चिकने, ऑखे मधुकी

[६]

पुप्फ-विमाणहों लीणु दसाणणु । दिढु णियत्थु किउ केस-णिवन्धणु॥१॥
लइय लट्ठि उग्गोसिउ कलयलु । तूरइँ हयइँ पधाइउ मयगलु ॥२॥
अहिमुहु धणय-पुरन्दर-वइरिहें । वासारत्तु जेम विन्झइरिहें ॥३॥
पुक्खरें ताडिउ लक्कुडि-घाएं । णावइ काल-मेहु दुव्वाएं ॥४॥
देइ ण देइ वेज्झु उरें जावेंहिं । विज्जुल-विकसिय करणें तावेंहिं ॥५॥
पच्छलें चडिउ धुणेंवि भुव-डालिउ । 'वुदवुद' भणेंवि खन्धें अप्फालिउ॥६॥
जड्डिउ पुणु वि करेणालिङ्गेंवि । सुविणा(?)दइउ जेम गउ लङ्घेंवि॥७॥
खणें गण्डयलें ठाइ खणें कन्धरें । खणें चउहु मि चलणहुँ अब्भन्तरें॥८॥

घत्ता

दीसइ णासइ विप्फुरइ परिभमइ चउद्दिसु कुञ्जरहों ।
चलु लक्खिज्जइ गयण-यलें ण विज्जु-पुञ्जु णव-जलहरहों ॥९॥

[७]

हत्थि-वियारणाउ एयारह । अण्णाउ किरियउ वीस दु-वारह॥१॥
दरिसेंवि किउ णिप्फन्दु महा-गउ । धुत्तें वेस-मरट्टु व मग्गउ ॥२॥
माहिउ मोक्खु व परम-जिणिन्दें । 'होउ होउ' ण रडिउ गइन्दें ॥३॥
'भलें भलें' पभणिउ चलणु समप्पिउ । तेण वि वामट्टुगुट्टें चप्पिउ ॥४॥
कण्णें धरेंवि आरूढु महागउ । करेंवि वियारण अट्टकुसु लाइउ ॥५॥
तेण विमाण-जाण-आणन्दें । मेल्लिउ कुसुम-वासु सुर-विन्दें॥६॥
णच्चिउ कुम्भयण्णु स-विहीसणु । हत्थु पहत्थु वि मउ सुयसारणु ॥७॥
मल्लवन्तु मारिचु महोयरु । रयणासउ सुमालि वज्जोयरु ॥८॥

[६] पुष्पक विमानमें बैठे हुए उस रावणने अपना परिकर और केश खूब कस लिये। लाठी ले ली, और कलकल शब्द किया। तूर्य बजाते ही मदोन्मत्त हाथी धनद और इन्द्रके दुश्मनके सामने दौडा ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार वर्षाऋतु विन्ध्याचलके सामने दौड़ती है। लाठीसे सूँड़पर वह वैसे ही आहत हुआ जैसे दुर्वातसे मेघ। जबतक वह बिजलीकी तरह चमकती हुई अपनी सूँड़से रावणके वक्षस्थलपर चोट करे, उसकी सूँडको आहत कर वह उसके पिछले भागपर चढ गया, और बुद्बुद कहकर उसके कन्धेपर चोट की, फिर उसने सूँड़से आलिंगन किया और स्वप्न मे (?) प्रियकी तरह वह उसे लाँघकर चला गया। पलमें वह गण्डस्थलपर बैठता और पलमें कन्धेपर, और एक क्षणमे चारों पैरोके नीचे ॥१-८॥

घत्ता—वह महागजके चारो ओर दिखता है, छिपता है, चमकता है, चारो ओर घूमता है। वह ऐसा जान पड़ता है, जैसे आकाशतलमे महामेघोका चंचल बिजली-समूह हो ॥९॥

[७] हाथीको वशमे करनेकी ग्यारह और दो बार बीस अर्थात् चालीस क्रियाओका प्रदर्शन कर उसने महागजको निस्पन्द बना दिया, वैसे ही जैसे धूर्त वेश्याके घमण्डको चूर-चूर कर देता है, जिस प्रकार परम जिनेन्द्र मोक्ष साध लेते है, उसी प्रकार (उसने महागजको सिद्ध कर दिया)। हाथी 'होउ-होउ' रटने लगा। उसने भी 'भल-भल' कहकर अपना पैर दिया, उसने भी बाये अँगूठेसे उसे दबा दिया। वह कान पकडकर हाथीपर चढ गया और वशमे कर अंकुश ले लिया। यह देखकर विमान और यानोंपर बैठे हुए देवताओने पुष्प-वृष्टि की। विभीषणके साथ कुम्भकर्ण नाचा। हस्त, प्रहस्त, मय, सुत और सारण भी नाचे। माल्यवन्त, मारीच और महोदर, रत्नाश्रव, सुमालि और वज्रोदर भी नाच उठे ॥१-८॥

घत्ता

हरिस-रसेण करम्बियउ　　वीर-रसु जेण मणेँ मानियउ ।
तहिँ रावण-णट्टावएँण　　सो णाहिँ जो ण णच्चावियउ ॥९॥

[८]

तिजगविहूसणु णामु पगासिउ ।　　णिउ तहिँ सिमिरु जेत्थु आवासिउ॥१
थिउ सहसा करि-कुड-अणुराइउ ।　　तहिँ अवसरेँ भडु एक्कु पराइउ ॥२॥
पहर-विहुरु रुहिरोल्लिय-गत्तउ ।　　णरवइ तेण णवेँवि विण्णत्तउ ॥३॥
'देव-देव किक्किन्धहोँ तणएँहिँ ।　　सव्वल-फलिह-सूल-हल-कणएँहि ॥४॥
असिवर-झस-मुसण्ढि-णाराएँहिँ ।　　चक्क-कोन्त-गय-मोग्गर-घाएँहिँ ॥५॥
जमु आरोडिउ भग्गा तेण वि ।　　धरेँवि ण सक्कि विहि एक्कण वि ॥६॥
पच्चेल्लिउ णिल्लूरिय वाणेँहिँ ।　　कह वि कह वि णउ मेल्लिउ पाणेँहिँ ॥७॥
त णिसुणेवि कुइउ रक्खद्धउ ।　　हय सगाम-भेरि सण्णद्धउ ॥८॥

घत्ता

चन्दहासु करयलेँ करेँवि　　रू-विमाणु स-चलु संचल्लियउ ।
महि लङ्घेप्पिणु सयरहँरु　　आयासहोँ ण उत्थल्लियउ ॥९॥

[९]

कोव-दवग्गि-पलित्तु पधाइउ ।　　णिविसे त जम-णयरु पराइउ ॥१॥
पेँक्खइ सत्त णरय अइ-रउरव ।　　उट्ठिय-वारवार-हाहारव ॥२॥
पेक्खइ णइ वइतरणि वहन्ती ।　　रस-वस-सोणिय-सलिलु वहन्ती ॥३॥
पेँक्खइ गय-पय-पेल्लिज्जन्तइँ ।　　सुहड-सिरइँ टसत्ति भिज्जन्तइँ ॥४॥
पेँक्खइ णर-मिहुणइँ कन्दन्तइँ ।　　सम्वलि-रुक्ख धराविज्जन्तइँ ॥५॥
पेक्खइ अण्ण-जीव छिज्जन्तइँ ।　　छणछण-सद्दे पउलिज्जन्तइँ ॥६॥

घत्ता—वहाँ एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जो रावणके नाचनेपर न नाचा हो, हर्षसे पुलकित न हुआ हो और मनमें वीररत्न अच्छा न लगा हो ॥७॥

[८] उसका नाम त्रिजगभूषण रखा गया और वह उसे वहाँ ले गया जहाँ सेनाका शिविर ठहरा हुआ था। राजकथाका अनुरागी वह वहाँ स्थित था कि इतनेमें एक भट वहाँ आया। प्रहारसे विधुर उसका शरीर खूनसे लथपथ था। उसने नमस्कार कर राजासे निवेदन किया, "देवदेव, किष्किन्धके बेटोंने भवबल्ल, फलिह, शूल, हल, कणिक, असिवर, सब्बल, सेलों और तीरों तथा चक्र, कौंत, गदा, मुद्गरके आघातोंसे यक्षपर आक्रमण किया, उसने उन्हें नष्ट कर दिया। शस्त्रोंमेंसे एक भी उसे नहीं पकड़ सका, बल्कि बाणोंसे छिन्न-भिन्न हो गये, किस प्रकार उसके प्राण-भर नहीं निकले" यह सुनकर रत्नध्वजी कुपित हो गया। युद्धकी भेरी बज उठी और वह तैयारी करने लगा ॥१-८॥

घत्ता—अपने हाथमें चन्द्रहास तलवार लेकर विमान और सेनाके साथ वह चला जैसे धरतीको [illegible] समुद्र ही आकाशमें [illegible] पड़ा हो ॥८॥

[९] कोपकी ज्वालामें प्रदीप्त वह दौड़ा और [illegible] [illegible]

कुम्भीपाकेँ के वि पचन्ता । एव वविह-दुक्खइँ पावन्ता ॥७॥
सयल वि सम्मीसेँ वि मेल्लाविय । जमउरि-रक्खवाल घल्लाविय ॥८॥

घत्ता

कहिउ कियन्तहोँ किङ्करेँहिँ 'वइतरणि भग्ग णासिय णरय ।
विद्धसिउ असिपत्त-वणु छोडाविय णरवर-वन्दि-सय ॥९॥

[१०]

अच्छइ एउ देव पारक्कउ । मत्त-गइन्द-विन्दु ण थक्कउ' ॥१॥
त णिसुणेवि कुविउ जमराणउ । 'केण जियन्तु चत्तु अप्पाणउ ॥२॥
कासु कियन्त-मित्तु सणि रुट्ठिउ । कासु कालु आसण्णु परिट्ठिउ ॥३॥
जेँ णर-वन्दि-विन्दु छोडाविउ । असिपत्त-वणु अण्णु मोडाविउ ॥४॥
सत्त वि णरय जेण विद्धसिय । जे वइतरणि वहति विणासिय ॥५॥
तहोँ दरिसावमि अज्जु जमत्तणु' । एम भणेँवि णीसरिउ स-साहणु ॥६॥
महिसासणु दण्डुग्गाय-पहरणु । कसण-देहु गुञ्जाहल-लोयणु ॥७॥
केत्तिउ भीसणत्तु वण्णिज्जइ । मिच्चु वुत्तु पुणु कहोँ उवमिज्जइ॥८॥

घत्ता

जमु जम-सासणु जम-करणु जम-उरि जम-दण्डु समोत्थरइ ।
एक्कु जि तिहुअणेँ पलय-करु पुणु पञ्च वि रणमुहेँ को धरइ ॥९॥

[११]

ज जम-करणु दिट्ठु भय-भीसणु । धाइउ त असहन्तु विहीसणु ॥१॥
णवर दसाणणेण ओसारिउ । अप्पुणु पुणु कियन्तु हक्कारिउ ॥२॥
'अरेँ माणव वलु वलु विण्णासहि । मुहियएँ ज जमु णामु पयासहि ॥३॥
इन्दहोँ पाव तुज्झु णिक्करुणहोँ । ससिहेँ पयङ्गहोँ धणयहोँ वरुणहोँ॥४॥
सव्वहँ कुल-कियन्तु हउँ आइउ । थाहि थाहि कहिँ जाहि अघाइउ'॥५॥

साथ छीज रहे हैं, कितने ही जीव कुम्भीपाकमें पकते हुए तरह-तरहके दुःख पा रहे हैं। उसने सबको अभयदान देकर मुक्त कर दिया। यमपुरीके रखानेवालोंको भी भगा दिया ॥१-८॥

घत्ता—यमके किंकरोंने तब जाकर कहा, "वैतरणी नष्ट हो गयी है और नरक नष्ट हो गये हैं, असिपत्र वन ध्वस्त है और सैकड़ों वन्दीजन मुक्त कर दिये गये हैं" ॥९॥

[१०] "हे देव, यह एक दुश्मन है जो मत्त गजेन्द्रसमूहके समान स्थित है।" यह सुनकर यमराज क्रुद्ध हो गया, (और बोला)—"किसने जीते जी अपने प्राण छोड़ दिये हैं? कृतान्त-का मित्र शनि किसपर क्रुद्ध हुआ है? किसका काल पास आकर स्थित है? जिसने वन्दीजनोंको मुक्त किया है, और असिपत्र वनको तहस-नहस किया है, जिसने सातों नरक नष्ट किये हैं, जिसने बहती हुई वैतरणीको नष्ट कर दिया, उसको मैं आज अपना यमपन दिखाऊँगा।" यह कहकर वह सेनाके साथ निकला। भैंसे पर आरूढ़, दण्ड और प्रहरण लिये हुए, कृष्ण शरीर, गुंजोंकी तरह लाल-लाल आँखोंवाला था वह। उसकी भीषणताका कितना वर्णन किया जाये? बताओ सौन्दर्य उसकी किससे दी जा सकती है? ॥१-८॥

घत्ता—यम, यमशासन, यमकरण, यमपुरी और यमदण्ड यदि इनमेंसे एक भी आक्रमण करता है, तो वह त्रिभुवनमें भयंकर है, फिर युद्धमें पाँचोंका सामना कौन कर सकता है ॥९॥

[११] जब भीषण यमकरणको देखा, तो उसे सहन न करता हुआ विशिष्ट वीर [illegible] उसे [illegible] मारा। उसके [illegible] यमकरणको ललकारा, "तुझे मारकर [illegible] नष्ट हो जायेगा। [illegible] अपना नाम 'अब' [illegible]। [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] आकाश [illegible],

तं णिसुणेविणु वइरि-खयकरु । जमेंण मुक्कु रणें दण्डु भयकरु ॥६॥
धाइउ धगधगन्तु आयासे । एन्तु खुरप्पे छिण्णु दसासे ॥७॥
सय-सय-खण्डु करेप्पिणु पाडिउ । णाइँ कियन्त-मडप्फरु साडिउ ॥८॥

घत्ता

धणुहरु लेवि तुरन्तएँण सर-जालु विसज्जिउ भासुरउ ।
तं पि णिवारिउ रावणेंण जामाएँ जिस खलु सासुरउ ॥९॥

[१२]

पुणु वि पुणु वि विणिवारिय-धणयहों । विद्धन्तहों रयणासव-तणयहों ॥१॥
दिट्ठि-मुट्ठि-सधाणु ण णावइ । णवर सिलीमुह-धोरणि धावइ ॥२॥
जाणेँ जाणेँ हुएँ हएँ गय-गयवरे । छत्तेँ छत्तेँ धएँ धएँ रहेँ रहवरेँ ॥३॥
भडेँ भडेँ मउडेँ मउडेँ करेँ करयलेँ । चलणेँ चलणेँ सिरेँ सिरेँ उरेँ उरयलेँ॥४
भरिय वाण कडआविय-साहणु पट्टु जमो वि विहुरु णिप्पहरणु ॥५॥
सरहहों हरिणु जेम उद्धाइउ । णिविसें दाहिण-सेढ़ि पराइउ ॥६॥
तहिँ रहणेउर-पुरवर-सारहों इन्दहों कहिउ अण्णु सहसारहों॥७॥
'सुरवइ लइ अप्पणउ पहत्तणु । अण्णहों कहों वि समप्पि जमत्तणु॥८॥

घत्ता

मालि-सुमालिहिँ पोत्तएँहिँ दरिसाविउ कह वि ण महु मरणु ।
लज्जएँ तुज्झु सुराहिवइ धणएण वि लइयउ तह-चरणु' ॥९॥

[१३]

तं णिसुणेंवि जम-वयणु असुन्दरु । किर गिग्गउ सण्णहेंवि पुरन्दरु ॥१॥
अग्गएँ ताम मन्ति थिउ भेसइ । 'जो पहु सो सयलाइँ गवेसइ ॥२॥
तुहुँ पुणु धावइ णाइँ अयाणउ । सो जे कमागउ लङ्कहेँ राणउ ॥३॥

जाता है ?" यह सुनकर वैरियोंका क्षय करनेवाले यमने अपना भयंकर दण्ड युद्धमें फेंका, वह धकधक करता हुआ आकाशमें दौड़ा, उसे आते हुए देखकर रावणने खुरुपासे छिन्न-भिन्न कर दिया, सौ-सौ टुकडे करके उसे गिरा दिया। मानो कृतान्तका घमण्ड ही नष्ट कर दिया हो ॥१-८॥

घत्ता—तब यमने तुरन्त धनुष लेकर तीरोंकी भयंकर बौछार की, रावणने उसका भी निवारण कर दिया, उसी प्रकार जैसे दामाद दुष्ट ससुराल का ॥९॥

[१२] धनदका काम तमाम करनेवाले, बार-बार आक्रमण करते हुए, रत्नाश्रवके पुत्र रावणकी दृष्टि और मुट्ठाका सन्धान ज्ञात नहीं हो रहा था, केवल तीरोंकी पंक्ति दौड रही थी। यान-यान, अश्व-अश्व, गज-गजवर, छत्र-छत्र, ध्वज-ध्वज, रथ-रथवर, योद्धा-योद्धा, मुकुट-मुकुट, कर-करतल, चरण-चरण, सिर-सिर, उर-उरतल बाणोंसे भर गया, सेनामें कड़ुआहट फैल गयी। यम भाग गया, विधुर और अस्त्रविहीन। सरभसे जैसे हरिण चौकडी भरकर भागता है वैसे ही वह एक पलमें दक्षिण श्रेणीमें पहुँच गया। वहाँ उसने रथनूपुरके श्रेष्ठ इन्द्र और सहस्रारसे जाकर कहा, "हे सुरपति, अपनी प्रभुता ले लीजिए! यमपना किसी दूसरेको सौंप दीजिए ॥१-८॥

घत्ता—मालि और सुमालिके पोतोंके द्वारा मेरी यह हालत हुई है, किसी प्रकार मेरा मरण-भर नहीं हुआ, हे सुराधिपति, तुम्हारी लज्जाके कारण धनदने भी तपश्चरण ले लिया है" ॥९॥

[१३] यमके इन असुन्दर शब्दोंको सुनकर पुरन्दर भी तैयार होकर जैसे ही निकलता है, वैसे ही बृहस्पति सामने आकर स्थित हो गया और बोला, "जो स्वामी होता है वह आदिसे लेकर अन्त तक पूरी बातकी गवेषणा करता है, परन्तु तुम अज्ञानीकी तरह दौड़ते हो, वह लंकाका क्रमागत राजा

तुम्हँ हिँ मालिहेँ काले भुत्ती । मण्डु मण्डु जिह पर-कुलउत्ती ॥४॥
ताहँ जँ पढमु जुत्तु पहरेवउ । णउ उक्खन्धे पइँ जाएवउ ॥५॥
देहि ताम ओहामिय-छायहोँ । सुरसगीय-णयरु जमरायहोँ ॥६॥
भुत्तु आसि जं मय-मारिच्चेँ हिँ' । एम भणेवि णियत्तिउ मिच्चेँहिँ ॥७॥
दहमुहो वि जमउरि उच्छुरयहोँ । किक्किन्धउरि देवि सूररयहोँ ॥८॥

घत्ता

गउ लङ्कहेँ सवडमुहउ णहेँ लग्गु विमाणु मणोहरउ ।
तोयदवाहण-वंस-दलु ण काले वड्ढिउ दीहरउ ॥९॥

[१४]

भीसण-मयरहरोवरि जन्ते । उद्धसिहामणि-छाया-भन्ते ॥१॥
परिपुच्छिउ सुमालि दिण्णुत्तरु । 'किं णहयलु' 'ण ण रयणायरु'॥२॥
'कि तमु किं तमालतरु-पन्तिउ' । 'ण ण इन्दणील-मणि-कन्तिउ' ॥३॥
'कि एयाउ कीर-रिञ्छोलिउ' । 'ण ण मरगय-पवणालोलिउ' ॥४॥
'किं महियलेँ पडियइँ रवि-किरणइँ । 'ण ण सूरकन्ति-मणि-रयणइँ' ॥५॥
'किं गय-घडउ गिलु निल्लोलउ' । 'ण ण जलणिहि-जल-कल्लोलउ'॥६॥
'स-व्ववसाय जाय कि महिहर' । 'ण ण परिभमन्ति जलेँ जलयर'॥७॥
एम चवन्त पत्त लङ्काउरि । जा तिकूड-महिहर-सिहरोवरि ॥८॥
जणु णीसरिउ सव्वु परिओसेँ । दियवर-पणइ-तूर-णिग्घोसेँ ॥९॥
णन्द-वद्ध-जय-सद्द-पउत्तिहिँ । सेसा-अग्घपत्त-जल-जुत्तिहिँ ॥१०॥

घत्ता

लङ्काहिवइ पइट्ठु पुरेँ परिवड्ढु पट्टु अहिसेउ किउ ।
जिह सुरवइ सुरवर-पुरिहिँ तिह रज्जु स इ भु अन्तु थिउ ॥११॥

है। तुम लोगोंने मालिके समय, परकुलकी कन्याकी तरह बलात् उसका सेवन किया है। उनपर तुम्हारा पहले ही प्रहार करना उचित था, इस प्रकार हड़बड़ीमें जाना उचित नही। इसलिए, जिसकी कान्ति क्षीण हो गयी है ऐसे यमराजको सुरसंगीत नगर दे दीजिए, जिसका कि मय और मारीचके द्वारा भोग किया जा चुका है।" रावण भी ऋक्षरजको यमपुरी और सूर्यरजको किष्किन्धापुरी देकर ॥१–८॥

घत्ता—लंका नगरीकी ओर उन्मुख होकर चला। आकाशमें जाता हुआ उसका सुन्दर विमान ऐसा लगा मानो समयने तोयद-वाहन वंशके दलको एक दीर्घ परम्परामें बाँध दिया हो ॥९॥

[१४] भयंकर समुद्रके ऊपरसे जाते हुए, अपने ऊर्ध्व शिखामणिकी छायासे भ्रान्त रावण पूछता है और मालि उत्तर देता है। क्या नभतल है? नही-नही रत्नाकर है? क्या तम है या तमालंकार नगर है? नही-नही, इन्द्रनील मणियोकी कान्ति है? क्या ये तोतोकी पंक्तियाँ है? नही-नही, पवनसे आन्दोलित मरकतमणि है। क्या ये धरतीपर सूर्यकी किरणे पड रही है? नहीं नहीं, ये सूर्यकान्त मणि है। क्या यह गीले गण्डस्थलोवाली गजघटा है? नही-नही, ये समुद्र-जलकी लहरे है। क्या यह पहाड़ व्यवसायशील हो गया है? नही-नही, जलमे जलचर घूम रहे है? इस प्रकार बातचीत करते हुए वे लंका नगरी पहुँच गये, जो कि त्रिकूट पर्वतके शिखरपर स्थित थी। द्विजवर बन्दीजन उन्ही तूर्योंके शब्दोके साथ, सभी परितोषके साथ बाहर आ गये। सभी कह रहे थे, "प्रसन्न होओ, बढो।" सभी निर्माल्य अर्घपात्र और जल लिये हुए थे ॥१–१०॥

घत्ता—लंकानरेश नगरमे प्रविष्ट हुआ। राज्यपट्ट बाँधकर उसका अभिषेक किया गया। जिस प्रकार सुरपुरीमे इन्द्र, उसी प्रकार अपनी नगरीमे राज्यका भोग करता हुआ वह रहने लगा ॥

[१२. वारहमो संधि]

पभणइ दहवयणु दीहर-णयणु णिय-अत्थाणेँ णिविट्ठउ ।
'कहहोँ कहहोँ णरहोँ विज्जाहरहोँ अज्ज वि कवणु अणिट्ठउ' ॥१॥

[१]

त णिसुणेँवि जम्पइ को वि णरु । सिर-सिहर-चडाविय उभय-करु ॥१॥
'परमेसर दुज्जउ दुट्ठु खलु । चन्दोवरु णामेँ अतुल-वलु ॥२॥
सो इन्दहोँ तणिय केर करेँवि । पायाल-लङ्क थिउ पइसरेँवि' ॥३॥
अवरेक्के दोच्छिउ णरवरेँण । 'किं सक्कें किं चन्दोयरेँण ॥४॥
सुव्वन्ति कुमार अण्ण पवल । उच्छुरयहोँ णन्दण णील-णल' ॥५॥
अण्णेक्के वुच्चइ 'हउँ कहमि । दो-पासिउ जइ ण धाय लहमि ॥६॥
किक्किंधपुरिहिँ करि-पवर-भुउ । णामेण वालि सूररय-सुउ ॥७॥
जा पारिहच्छि मइँ दिट्ठु तहोँ । सा तिहुयणेँ णउ अण्णहोँ णरहोँ ॥८॥

घत्ता

रहु वाहवि अरुणु हय हणेँवि पुणु जा जोयणु विण पावइ ।
ता मेरुहेँ भमेँवि जिणवरु णवेँवि तहिँ जेँ पडीवउ आवइ ॥९॥

[२]

तहोँ ज वलु त ण पुरन्दरहोँ । ण कुवेरहोँ वरुणहोँ ससहरहोँ ॥१॥
मेरु वि टालइ वङ्कामरिसु । तहोँ अण्णु णराहिउ तिण-सरिसु ॥२॥
कइलास-महीहरु कहि मि गउ । तहिँ सम्मउ णामे लइउ वउ ॥३॥
णिग्गन्थु सुणन्ति विसुद्ध-मइ । अण्णहोँ इन्दहोँ वि णाहिँ णमइ ॥४॥
त तेहउ पेक्खेवि गीढ-भउ । पव्वज्ज लेवि गउ सूररउ ॥५॥
'महु होसइ केण वि कारणेँण । समरङ्गणु समउ दसाणणेँण' ॥६॥

बारहवीं सन्धि

अपने सिहासनपर बैठा हुआ, विशालनयन रावण पूछता है—"अरे मनुष्यो और विद्याधरो, बताओ आज भी कोई शत्रु है ?"

[१] यह सुनकर अपने शिररूपी शिखरपर दोनो हाथ चढाकर एक आदमी बोला,"परमेश्वर ! चन्द्रोदर नामक अतुल बलशाली दुष्ट खल अजेय है । वह इन्द्रकी सेवा करते हुए, पाताल लंकामे प्रवेश कर रहता है ।" तब एक दूसरेने इसका प्रतिवाद किया, "इन्द्र और चन्द्रोदर क्या है ? ऋक्षुरजके पुत्र नील और नल अत्यन्त प्रबल सुने जाते है ।" एक औरने कहा, "मै बताता हूँ यदि अगल-बगलसे मुझपर आघात न हो । किष्किन्धापुरीमे गजशुण्डके समान हाथवाला, सूर्यरजका पुत्र वाली है । उसके पास जो कण्ठा (?) मैने देखा है, वह त्रिभुवनमे किसी दूसरे आदमीके पास नहीं है । ॥१–८॥

घत्ता—अरुण (सूर्य) अपना रथ और घोड़े जोतकर एक योजन भी नहीं जा पाता कि तबतक वह मेरुकी प्रदक्षिणा देकर और जिनवरकी वन्दना करके वापस आ जाता है ? ॥९॥

[२] उसके पास जो सेना है, वह इन्द्रके पास भी नही है, कुवेर, वरुण और चन्द्रके पास भी नही । अमर्पसे भरकर वह सुमेरु पर्वतको चलायमान कर सकता है । उसकी तुलनामे दूसरे राजा तृणके समान है । कभी वह कैलास पर्वतपर गया था । वहाँ उसने सम्यग्दर्शन नामका व्रत लिया है कि 'विशुद्धमति निर्ग्रन्थ मुनिको छोडकर और किसी इन्द्रको नमस्कार नहीं करूँगा ।' उसे इस प्रकार दृढ देखकर, पिता सूर्यरजने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली, यह सोचकर, (या इस डरसे) कि मेरा किसी कारण दशानन-

अवरक्कें वुत्तु 'ण इमु घडइ । 　कइवंसिउ किं अम्हहुँ भिडइ ॥७॥
सिरिकण्ठहों लग्गें वि मित्तइय । 　अण्णु वि उवयार-सएहिँ लइय ॥८॥

घत्ता

अहवइ वाणर वि सुरवर-णर वि 　रत्तुप्पल-दल-णयणहों ।
ता सयल वि सुहड जा समर-ज्झड णउ णिएन्ति दहवयणहों ॥९॥

[३]

त वालि-सल्लु हियवएँ धरेंवि । 　तो रावणु अण्ण वोल्ल करेंवि ॥१॥
गउ एक्क-दिवसें सुर सुन्दरिहिँ । 　जा अवहरणेण तणूयरिहिँ ॥२॥
ता हरेंवि णीय कुल-भूसणेँहिं । 　चन्दणहि ह(व?)रिय खर-दूसणेँहिं॥३
णासन्त णिएवि सहोयरेण । 　णयरेण।लङ्कारोदएण ॥४॥
ण उवरेँ छुहेंवि रक्खिय-सरणु । 　किय(?)तेहि मि चन्दोवर-मरणु ॥५॥
विणिवाइउ जत्थणेँ जेँ थिउ । 　जो ढुक्किउ सो त वारु णिउ ॥६॥
कुढेँ लग्गउ ज रयणियर-वलु । 　रह-तुरय-णाय-णरवर-पवलु ॥७॥
अलहन्तु वारु त णिप्पसरु । 　गउ वहेँवि पडीवउ णिय-णयरु॥८॥

घत्ता

छुडु छुडु दहवयणु परितुट्ठ-मणु किर स-कलत्तउ आवइ ।
उम्मण-दुम्मणउ असुहावणउ 　णिय-घरु ताम विहावइ ॥९॥

[४]

तुरमाणें केण वि वज्जरिउ । 　खर-दूसण-कण्णा-दुच्चरिउ ॥१॥
अत्थक्कएँ आयम्बिर-णयणु । 　कुढेँ लग्गइ स-रहसु दहवयणु ॥२॥
करेँ धरिउ ताम मन्दोवरिएँ । 　ण गङ्गा-वाहु जउण-सरिएँ ॥३॥
'परमेसर कहों वि ण अप्पणिय । 　जिह कण्ण तेम पर-मायणिय ॥४॥
एक्क इ करवाल-भयङ्करहुँ । 　चउदह सहास विज्जाहरहुँ ॥५॥
जइ आण-वडीवा होन्ति पुणु । 　तो घरेँ अच्छन्तिएँ कवणु गुणु ॥६॥

से युद्ध होगा।" एक औरने कहा, "यह ठीक नही जँचता, क्या कपिध्वजी हमसे लड़ेगा ? श्रीकण्ठसे लेकर हमारी मित्रता है और भी हमारे उनके ऊपर सैकड़ों उपकार है ॥१-८॥

घत्ता—अथवा चाहे वानर हो, सुरवर या अन्यवर ? वे सारे योद्धा, रक्तकमलके समान नेत्रवाले रावणकी युद्धकी चपेट नही देख सकते" ॥९॥

[३] तव, बालीका खटका अपने मनमें धारण कर, रावणने दूसरी बात शुरू कर दी। एक दिन जब वह सुरसुन्दरी तनूदरा-का अपहरण करनेके लिए गया, तबतक कुलभूषण खरदूषण चन्द्रनखाका अपहरण करके ले गये। अलंकारोदय नगरमें सहोदरने उन्हें भागते हुए देखकर, उन्हें बचानेके लिए छिपाकर शरणमे रख लिया। उन्होंने सहोदर चन्द्रोदरको मार डाला। जो सिंहासन पर स्थित था उसे नष्ट कर दिया, जो आया उसको उसीके रास्ते भेज दिया। रथ, तुरग, गज और मनुष्योंसे प्रबल, जो राक्षस-सेना पीछे लगी हुई थी, द्वार न पा सकनेके कारण रुक गयी और मुडकर वापस अपने नगर चली गयी ॥१-८॥

घत्ता—इतनेमे शीघ्र ही जब रावण सन्तुष्ट मन अपनी पत्नीके साथ आता है तो उसे अपना घर उदास, सूना और असुहावना-सा दिखाई देता है ॥९॥

[४] शीघ्र ही किसीने खरदूषण और कन्याका दुश्चरित उसे बताया। सहसा रावणकी आँखे लाल हो गयी और वेगसे वह उसके पीछे लग गया। इतनेमे मन्दोदरीने उसका हाथ पकड़ लिया, मानो यमुना नदीने गंगाके प्रवाहको रोक लिया है। वह बोली, "परमेश्वर, चाहे वह कन्या हो या बहन, ये अपनी नही होती। तुम एक हो, और वे तलवारोसे भयकर चौदह हजार विद्याधर है, यदि वे तुम्हारी बात मान भी ले, तो भी लडकी को घरमे रखनेसे क्या लाभ। इसलिए युद्ध छोड़-

पट्ठवहि महन्ता मुएँवि रणु । कण्णहेँ करन्तु पाणिग्गहणु' ॥७॥
त वयणु सुणेँवि मारिच्चि-मय । पेसिय दहवत्तेँ तुरिअ गय ॥८॥

घत्ता

तेहिँ विवाहु किउ खरु रज्जेँ थिउ अणुराहहेँ विज्ज-सहिउ ।
वणेँ णिवसन्तियहेँ वय-वन्तियहेँ सुउ उप्पण्णु विराहिउ ॥९॥

[५]

एत्थन्तरेँ जम-जूरावणेँण । त सल्लु धरेप्पिणु रावणेँण ॥१॥
पट्ठविउ महामइ दूत तहिँ । सुग्गीव-सहोयरु वालि जहिँ ॥२॥
वोल्लाविउ थाएँवि अहिमुहेँण । 'हउँ एम विसज्जिउ दहमुहेँण ॥३॥
एक्कूणवीस-रज्जन्तरइँ । मित्तइयएँ गयइँ णिरन्तरइँ ॥४॥
कोँ वि कित्तिधवलु णामेण चिरु । सिरिकण्ठ-कज्जे थिउ देवि सिरु ॥५॥
णवमउ परिणाविउ अमरपहु । जे धएँहिँ लिहाविउ कइ-णिवहु ॥६॥
दहमउ कइ-केयणु सिरि-सहिउ । एयारहमउ पडिवलु कहिउ ॥७॥
वारहमउ णयणाणन्दयरु । तेरहमउ खयराणन्दु वरु ॥८॥
चउदहमउ गिरि-किवेरवलु (?) । पण्णारहमउ णन्दणु अजउ ॥९॥
सोलहमउ पुणु कोँ वि उवहिरउ । तडिकेप-त्रिगमे किउ तेण तउ ॥१०॥
सत्तारहमउ किक्किन्धु पुणु । तहोँ कवणु सुकेसे ण किउ गुणु ॥११॥
अट्ठारहमउ पुणु सूररउ । जसु मज्झेँवि तहोँ पइसारु कउ ॥१२॥
तुहुँ एवहिँ एक्कुणवीसमउ । अणुहुञ्जे रज्जु मणे सुएवि सउ ॥१३॥

घत्ता

आउ णिहालेँ मुहु त णमहि तहुँ गम्पि दसाणण-राणउ ।
जेण देइ पवलु चउरङ्ग-वलु इन्दहोँ उवरि पयाणउ' ॥१४॥

कर, मन्त्रियोंको भेजिए और कन्याका पाणिग्रहण कर दीजिए।" यह वचन सुनकर उसने मय और मारीच को भेजा। प्रेपित वे तुरन्त गये ॥१-८॥

घत्ता—उन्होने विवाह कर लिया। विद्यासहित खर राज्यमें स्थित हो गया। चन्द्रोदरकी विधवा पत्नी व्रतवती अनुराधाके वनमे निवास करते हुए विराधित नामका पुत्र हुआ। ॥९॥

[५] इसके अनन्तर, यमको सतानेवाले रावणने उक्त शल्य अपने मनमें रखते हुए महामति दूतको वहाँ भेजा, जहाँ सुग्रीवका सगा भाई वाली था। दूतने बालीके सामने उपस्थित होते हुए कहा कि मुझे यह बतानेके लिए भेजा गया है कि हमारी उन्नीस राज्यपीढियाँ निरन्तर मित्रतासे रहती आयी है, कोई कीर्तिधवल नामका पुराना राजा था जो श्रीकण्ठके लिए अपना सिर तक देनेको तैयार था। नौवी पीढीमें अमरप्रभ हुआ जिसने राक्षसोंमे अपना विवाह किया और जिसने ध्वजो पर वानरोके चित्र अंकित करवाये। दसवाँ श्रीसहित कपि-केतन हुआ। ग्यारहवाँ प्रतिपालके नामसे जाना जाता है। तेरहवाँ श्रेष्ठ खेचरानन्द हुआ। चौदहवाँ गिरिकिंवेलूरबल, पन्द्रहवाँ अजितनन्दन, सोलहवाँ फिर उदधिरथ, जिसने तडित्केशके वियोगमे संन्यास ग्रहण किया। सत्तरहवाँ फिर किष्किन्ध हुआ, उसकी सुकेशने कौन-सी भलाई नही की। अठारहवाँ फिर सूर्यरज हुआ, यमका नाश कर जिसे इस नगरीमे प्रवेश दिलाया गया। तुम अब उन्नीसवे हो, अतः मनसे अहकार दूर कर राज्यका भोग करो ॥१-१३॥

घत्ता—आओ उसका सुख देखे, वहाँ चलकर दशाननको तुम नमस्कार करो जिससे वह अपनी चतुरग सेनाके साथ इन्द्रके ऊपर कूचका डंका बजवा सके ॥१४॥

[६]

जं किउ जयकारु णाम-गहणु । तं णवर वलेँवि थिउ अण्ण-मणु ॥१॥
णं करेइ कण्णेँ वयणाइँ पहु । जिह पर-पुरिसहोँ सु-कुलीण-वहु ॥२॥
एत्थन्तरेँ दहमुह-दूअऍण । अच्चन्त-विलक्खी हूअऍण ॥३॥
णिब्भच्छिउ मेल्लेँवि सयण-किय । 'जो को वि णमेसइ तासु सिय ॥४॥
णीसरु तुहुँ आयहोँ पट्टणहोँ । णं तो मिडु परऍ दसाणणहोँ' ॥५॥
तं णिसुणेँवि कोव-करम्विऍण । पडिदोच्छिउ सीहविलम्विऍण ॥६॥
'अरेँ वालि देउ किं पइँ ण सुउ । महु महिहरु जेण भुअहिँ विहुउ ॥७॥
जो णिविसद्धेण पिहिवि कमइ । चत्तारि वि सायर परिभमइ ॥८॥

घत्ता

जासु महाजसेँण रणेँ अणवसेँण धवलीहूअउ तिहुवणु ।
तासु वियड्ढाहोँ अब्भिट्टाहोँ कवणु गहणु किर रावणु' ॥९॥

[७]

सो दूउ कडुय-वयणासि-हउ । सामरिसु दसासहोँ पासु गउ ॥१॥
'किं वहुएँ एत्तिउ कहिउ मइँ । तिण-समउ वि ण गणइ वालि पइँ' ।२।
तं वयणु सुणेप्पिणु दससिरेँण । वुच्चइ रयणायर-रव-गिरेँण ॥३॥
'जइ रण-मुहेँ माणु ण मलमि तहोँ । तो छित्त पाय रयणासवहोँ' ॥४॥
आरुहेँवि पइज्ज पयट्टु पहु । णं कहोँ वि विरुद्धउ कूर-गहु ॥५॥
थिउ पुप्फविमाणेँ मणोहरऍ । णं सिद्धु सिवालऍ सुन्दरऍ ॥६॥
करेँ णिम्मलु चन्दहासु धरिउ । णं घण-णिसण्णु तडि-विप्फुरिउ ॥७॥
णीसरिएं पुर-परमेसरेण । णीसरिय वीर णिमिसन्तरेण ॥८॥

[६] जब दूतने जयकारके साथ रावणका नाम लिया उससे वाली केवल अन्यमनस्क होकर और मुँह मोडकर रह गया। स्वामी दूतके वचनोपर कान नही देता, उसी प्रकार, जिस प्रकार कुलवधू परपुरुषके वचनोपर। इसके अनन्तर रावणके दूतने समस्त सज्जनोचित आचरण छोड़ते हुए वालीका यह कहते हुए अपमान किया, "जो कोई भी हो, जो नमस्कार करेगा, श्री उसीकी होगी, या तो तुम इस नगरसे चले जाओ, नहीं तो कल रावणसे युद्धके लिए तैयार रहो।" यह सुनकर क्रोधसे आगबबूला होते हुए सिहविलम्बितने इसका प्रतिवाद किया, "अरे क्या वालीके विषयमे तुमने नहीं सुना जिसने मधु पर्वतको अपनी भुजाओंसे नष्ट कर दिया, जो आधे पलमे सारी धरतीकी परिक्रमा कर, चारो समुद्रोके चक्कर काट आता है ॥१–८॥

घत्ता—युद्धमे इसके स्वाधीन यशसे सारा ससार धवलित है। युद्धमें प्रवृत्त होनेपर उसे रावणको पकड़ना कौन-सी बडी बात है?" ॥९॥

[७] कटुशब्दोंकी तलवारसे आहत वह दूत क्रोधके साथ रावणके पास गया और बोला, "बहुत क्या, मुझसे इतना ही कहा कि वाली तुम्हे तृण बराबर भी नहीं समझता।" यह वचन सुनकर रावण समुद्रके समान गम्भीर स्वरसे बोला, "मैं अपने पिता रत्नाश्रवके पैर छूनेसे रहा यदि मैंने युद्धमे उसका मान-मर्दन नहीं किया।" यह प्रतिज्ञा करके वह चल पड़ा मानो कोई क्रूर ग्रह ही विरुद्ध हो उठा हो। वह सुन्दर पुष्प विमानमे ऐसे बैठ गया जैसे सुन्दर शिलालयमें सिद्ध स्थित हो जाते हैं। उसने हाथमें चन्द्रहास खड्ग ले लिया मानो बादलोंमे बिजली चमक उठी हो। पुरपरमेश्वरके निकलते ही वीर पलके भीतर निकल पड़े ॥१–८॥

घत्ता

'अम्हहुँ पय-भरेँण णिरु णिट्ठुरेँण म मरउ धरणि वराइय'।
एत्तिय-कारणेँण गयणङ्गणेँण णावइ सुहड पराइय ॥९॥

[८]

एत्तहेँ वि समर-दुज्जोहणिहिँ चउदहहिँ णरिन्द-अखोहणिहिँ ॥१॥
सण्णहेँ वि वालि णीसरिउ किह। मज्जाय-विवज्जिउ जलहि जिह॥२॥
पणवेप्पिणु विण्णि वि अतुल-बल। थिय अग्गिम-खन्धेँहि णील-णल ॥३॥
विरइउ आरायणु रणेँ अचलु। पहिलउ जेँ णिविट्ठु पायाक-बलु॥४॥
पुणु पच्छएँ हिलिहिलन्त स-भय। खर-खुरेँहि खणन्त खोणि तुरय ॥५॥
पुणु सइल-सिहर-सण्णिह सयड। पुणु मय-विहलङ्घल हत्थि-हड ॥६॥
पुणु णरवइ वर-करवाल-धर। आसण्ण हुअ तो रयणियर ॥७॥
किर समरेँ भिडन्ति भिडन्ति णइ। थिय अन्तरेँ मन्ति सु-विउल-मइ॥८॥

घत्ता

'वालि-दसाणणहोँ जुज्झण-मणहोँ एउ काइँ ण गवेसहोँ।
किएँ खएँ वन्धवहुँ पुणु केण सहुँ पच्छएँ रज्जु करेसहोँ ॥९॥

[९]

जो कित्तिधवल-सिरिकण्ठ-किउ। किक्किन्ध-सुकेसहिँ विद्धि णिउ ॥१॥
त खयहो णेहु मा णेह-तरु। जइ धरेँवि ण सक्कहोँ रोस-भरु ॥२॥
तो वे वि परोप्परु उत्थरहोँ जो को वि जिणइ जयकारु तहोँ' ॥३॥
त णिसुणेँवि वालि-देउ चवइ। 'सुन्दरु भणन्ति लङ्काहिवइ ॥४॥
खउ तुज्झु व मज्झु व णिव्वडउ। जिम धुव जिम मन्दोवरि रडउ ॥५॥
किं वहवेँहिँ जीवेँहिँ घाइएँहिँ। वन्धव-सयणेँहिँ विणिवाइएँहिँ ॥६॥
लइ पहरु पहरु जइ अत्थि छलु। पेक्खहुँ तुह विज्जहुँ तणउ बलु'॥७॥

घत्ता—सुभट केवल इस कारणसे, आकाश मार्गसे वहाँ पहुँचे कि कहीं हमारे पैरोंके निष्ठुर भारसे बेचारी धरती ध्वस्त न हो जाये ॥९॥

[८] यहाँ भी समरमें अजेय, राजाओंकी चौदह अक्षौहिणी सेनाएँ, वालीके सन्नद्ध होते ही इस प्रकार निकल पडीं, जिस प्रकार मर्यादाविहीन समुद्र हो। अतुलबल नल और नील दोनों ही प्रणाम करके अग्रिम सेनाओंमे स्थित हो गये। उन्होंने युद्धमे अपनी अचल व्यूह रचना की। पहले पैदल सेना स्थित थी। उसके पीछे हिनहिनाते हुए समद घोड़े थे जो अपने तेज खुरोंसे धरती खोद रहे थे। फिर शैलशिखरोंकी भाँति रथ थे। फिर मदसे विह्वलाग गजघटा थी। फिर राजा श्रेष्ठ तलवार अपने हाथमें लिये स्थित था। इतनेमे निशाचर निकट आये। जबतक वे लोग युद्धमे भिडे या न भिडे कि इतने मे दोनोंके बीच विपुलमति मन्त्री आया ॥१-८॥

घत्ता—उसने कहा, "युद्धके इच्छा रखनेवाले, आप दोनों (वाली और रावण) इस बातका विचार क्यों नहीं करते कि स्वजनोंका क्षय हो जानेपर फिर राज्य किसपर करोगे" ॥९॥

[९] जो कीर्तिधवल और श्रीकण्ठने किया, जिसे किष्किन्ध और सुकेशीने आगे बढाया, उस स्नेहके तरुको नष्ट मत करो। यदि आप अपने रोषके भारको धारण करनेमे असमर्थ है, तो आपसमे लड लो, जो जीतेगा उसकी जय-जयकार होगी।" यह सुनकर वाली कहता है कि हे लंकाधिपति, यह सुन्दर कहता है। जय, तुम्हारा या मेरा, दोनोंमे-से एकका हो? जिससे ध्रुवा या मन्दोदरी विधवा हो, बहुत-से जीवोंको मारने या स्वजन बन्धुओंके पतनसे क्या? इसलिए यदि कौशल है, तो प्रहार करो, देखे तुम्हारी विद्याओंका बल'" यह

त णिसुणेँवि समर-सएहिँ थिरु । वावरेँवि लग्गु वीसद्ध-सिरु ॥८॥
आमेल्लिय विज्ज महोयरिय (?) । फणि-फण-फुक्कार दिन्ति गइय ॥९॥

घत्ता

वालिं भीसणिय अहि-णासणिय गारुड-विज्ज विसज्जिय ।
उत्त-पडुत्तियएँ कुल-उत्तियएँ ण पुण्णालि परज्जिय ॥१०॥

[१०]

दहवयणेँ गरुड-परायणिय । पम्मुक्क विज्ज णारायणिय ॥१॥
गय-सङ्ख-चक्क-सारङ्ग-धरि । चउ-भुअ गरुडासण-गमण-करि ॥२॥
सूरय-सुएण वि सभरिय । णामेण विज्ज माहेसरिय ॥३॥
कङ्काल-कराल तिसूल-करि । ससि-गउरि-गङ्ग-खट्टङ्ग-धरि ॥४॥
किर अवर विसज्जइ दहवयणु । सय-वारउ परिभञ्जेवि रणु ॥५॥
स-विमाणु स-खग्गु महावलेँण । उच्चाइउ दाहिण-करयलेँण ॥६॥
ण कुञ्जर-करेँण कवलु पवरु । ण वाहुवलीसेँ चक्कहरु ॥७॥
णहेँ दुन्दुहि ताडिय सुरयणेँण । किउ कलयलु कइधय-साहणेँण ॥८॥

घत्ता

माणु मलेवि तहोँ लङ्काहिवहोँ वद्धु पट्टु सुग्गीवहोँ ।
'करि जयकारु तुहुँ अणुभुञ्जेँ सुहु मिच्चु होहि दहगीवहोँ ॥९॥

[११]

महु तणउ सीसु पुणु दुण्णमउ । जिह मोक्ख-सिहरु सव्वुत्तमउ ॥१॥
पणवेप्पिणु तिल्लोक्काहिवइ । सामण्णहोँ अण्णहोँ णउ णवइ ॥२॥
महु तणिय पिहिवि तुहुँ भुञ्जि पहु । रिज्झउ कइ-जाउहाण-णिवहु ॥३॥
अण्णु मि जो पइँ उवयारु किउ । तायहोँ कारणेँ जमराउ जिउ ॥४॥
तहोँ मइँ किय पडिउवयार-किय । आवग्गी भुञ्जहि राय-सिय' ॥५॥

सुनकर सैकड़ों युद्धमें अडिग रावणने युद्ध करना शुरू कर दिया। उसने सर्पविद्या छोड़ी जो सर्पोंके फनसे फुफकार छोड़ती हुई चली ॥१-९॥

घत्ता—बालीने सर्पोंका नाश करनेवाली भीषण गारुडविद्या विसर्जित की। वह उसी प्रकार पराजित हो गयी, जिस प्रकार कुलपुत्री की उक्ति-प्रति-उक्तियोंसे 'वेश्या' पराजित हो जाती है ॥१०॥

[१०] दशवदनने गरुड़-विद्याको नष्ट करनेवाली नारायणी विद्या छोडी, जो गदा-शंख-चक्र और धनुपको धारण किये हुए थी, उसके चार हाथ थे और हाथी पर गमन करती थी। तब सूर्यरजके पुत्र बालीने माहेश्वरी विद्याका स्मरण किया, कंकालोंसे भयंकर हाथमें त्रिशूल धारण करनेवाली, चन्द्रमा-गौरी-गंगा खट्वांगसे युक्त था। तब दशवदनने एक और विद्या छोडी, जिसे महाबली बालीने रणमें सौ बार परिक्रमा देकर विमान और खड्गके साथ रावणको दाहिने हाथपर ऐसे उठा लिया जैसे बडा हाथीने बडा कौर ले लिया हो, या बाहुबलिने चक्र ले लिया हो। देवताओंने आकाशमें नगाड़े बजाये और कपिध्वजियोंकी सेनामें कोलाहल होने लगा ॥१-८॥

घत्ता—इस प्रकार लंकानरेशका मान-मर्दन कर तथा सुग्रीव को राजपट्ट बाँधकर बालीने कहा, "नमस्कार कर तुम रावणके अनुचर बन जाओ और सुख भोगो" ॥९॥

[११] "मेरा सिर दुर्नमनशील है उसी प्रकार, जिस प्रकार मोक्षशिखर सर्वोत्तम है। त्रिलोकाधिपतिको प्रणाम करनेके बाद अब यह किसी दूसरे को नमस्कार नही कर सकता। हे स्वामी, मेरी धरतीको आप भोगें और वानर तथा राक्षसोंके समूहका मनोरंजन करें। और तुमने जो उपकार किया है, तातके लिए तुमने यमराजको जीता था, उसके लिए मैंने यह प्रत्युपकार

गउ एम भणेप्पिणु तुरिउ तहिँ । गुरु गयणचन्दु णामेण जहिँ ॥६॥
तव चरणु लइउ तग्गय-मणेंण । उप्पण्णउ रिद्धिउ तक्खणेंण ॥७॥
अणुदिणु जिणन्तु इन्दिय-वइरि । गउ तित्थु जेत्थु कइलास-गिरि ॥८॥

घत्ता

उप्परि चडिउ तहों अट्ठावयहों पञ्च-महावय-धारउ ।
अत्तावण-सिलहेँ सासय-इलईँ ण थिउ वालि भडारउ ॥९॥

[१२]

एत्तहेँ सिरिप्पह भइणि तहों । सुग्गीवे दिण्ण दसाणणहों ॥१॥
वोलाविउ गउ लङ्का-णयरेँ । णल-णील विसज्जिय किक्क-पुरेँ ॥२॥
सुउ धुव-महएविहेँ सथविउ । ससिकिरणु णियद्ध-रज्जेँ थविउ ॥३॥
तहिँ अवसरेँ उत्तर-सेढि-विहु । विज्जाहरु णामें जलणसिहु ॥४॥
तहों धीय सुतार-णाम णरेँण । मग्गिज्जइ दससयगइ-वरेँण ॥५॥
गुरु-वयणें तासु ण पट्ठविय । सुग्गीवहों णवर परिट्ठविय ॥६॥
परिणेवि कण्ण णिय णियय-पुरु । दससयगइहेँ वि विरहग्गि गुरु ॥७॥
पजलइ उप्पायइ कलमलउ । उण्हउ ण सुहाइ ण सीयलउ ॥८॥
उब्भन्तउ कहि मि पइट्ठु वणु । साहन्तु विज्ज थिउ एक्क-मणु ॥९॥

घत्ता

ताइ मि धण-पउरेँ किक्किन्ध-पुरेँ अङ्गङ्गय वड्ढन्तइँ ।
थियइ रयण [इँ] णइँ वेण्णि वि जणइँ रज्जु स इ भुञ्जन्तइँ ॥१०॥

किया, तुम अब स्वतन्त्र होकर राज्यश्रीका उपभोग करो।" यह कहकर, वह वहाँ शीघ्र चला गया जहाँ कि गगनचन्द्र नामके गुरु थे। उसने एकनिष्ठासे तपश्चरण ले लिया, उन्हें तत्क्षण ऋद्धि उत्पन्न हो गयी। प्रतिदिन इन्द्रियरूपी शत्रुको जीतते हुए वह वहाँ गये, जहाँ कैलास पर्वत है ॥१-८॥

घत्ता—पाँच महाव्रतोंके धारी वह अष्टापद शिखरपर चढ गये और आतापिनी शिलापर इस प्रकार स्थित हो गये जैसे शाश्वतशिलापर स्थित हो। ॥९॥

[१२] यहाँ सुग्रीवने उसकी बहन श्रीप्रभा रावणको दे दी। उसे लेकर वहाँ लंका नगर चला गया। नल और नीलको किष्कपुर भेज दिया गया। ध्रुवा महादेवीके पुत्र शशिकरणको भी उसने अपने आधे राज्यपर स्थापित कर दिया। उस अवसर-पर उत्तर श्रेणीका स्वामी ज्वलनसिंह नामक विद्याधर था। उसकी सुतारा नामकी कन्या थी, जिसे सहस्रगति नामक वरने माँगा। परन्तु ज्वलनसिंह गुरुके आदेशसे उसे न देते हुए सुग्रीवसे उसका विवाह कर दिया। विवाह करके कन्या वह अपने घर ले आया, उससे सहस्रगतिको भारी विरहाग्नि उत्पन्न हुई। वह जलता, पीडित होता और कसमसाता। उसे न उष्णता अच्छी लगती और न शीतलता। उद्भ्रान्त वह वनमे कहीं चला गया और एकाग्र मन होकर विद्याकी सिद्धि करने लगा ॥१-९॥

घत्ता—तबतक धनसे प्रचुर किष्किन्ध नगरमें अंग और अंगद बढने लगे और दोनो ही दिन-रात राज्यका स्वयं उपभोग करते हुए रहने लगे ॥१०॥

[१३. तेरहमो संधि]

पेक्खेप्पिणु वालि-भडारउ रावणु रोसाऊरियउ ।
पभणइ 'किं मइँ जीवन्तेँण जाम ण रिउ मुसुमूरियउ' ॥१॥

[१]

दुवई

विज्जाहर-कुमारि रयणावलि णिच्चालोय-पुरवरे ।
परिणेँवि वलइ जाम ता थम्भिउ पुप्फविमाणु अम्बरे ॥१॥

महरिसि-तव-तेए थिउ विमाणु ण दुक्किय-कम्म-वसेण दाणु ॥२॥
ण सुक्के खीलिउ मेह-जालु । ण पाउसेण कोइल-वमालु ॥३॥
ण दूसामिएँण कुडुम्ब-वित्तु । ण मच्छे'धरिउ महायवत्तु (?)॥४॥
ण कञ्चण-सेले पवण-गमणु । ण दाण-पहावेँ णीय-भवणु ॥५॥
णीसद्दउ हूयउ किङ्किणीउ । ण सुरएँ समत्तएँ कामिणीउ ॥६॥
घग्घरेँ हि मि घवघव-घोसु चत्तु । ण गिम्भयालु दद्दुरहुँ पत्तु ॥७॥
णरवरहुँ परोप्परु हूउ चप्पु । अहोँ धरणि एजेविणु धरणि-कम्पु॥८॥
पडिपेल्लियउ वि ण वहइ विमाणु । ण महरिसि भइयएँ मुअइ पाणु ॥९॥

घत्ता

विहडइ थरहरइ ण ढुक्कइ उप्परि वालि-भडाराहोँ ।
छुडु छुडु परिणियउ कलत्तु व रइ-दइयहोँ वड्डाराहोँ ॥१०॥

[२]

दुवई

तो एत्थन्तरेँण कय पहुणा सव्व-दिसावलोयण ।
सव्व-दिसावलोयणेण वि रत्तुप्पलमिव णहङ्गण ॥१॥

'मरु कहोँ अथक्क[एँ]कालु कुद्धु । करु केण भुयङ्गम-वयणेँ छुद्धु॥२॥
के सिरेँण पडिच्छिउ कुलिस-घाउ । को णिग्गउ पञ्चाणण-मुहाउ ॥३॥

तेरहवीं सन्धि

आदरणीय बालीको देखकर रावण रोषसे भर उठा। (अपने मनमें) कहता है, "जबतक मै शत्रुको नही कुचलता, मेरे जिन्दा रहनेसे क्या ?" ॥१॥

[१] नित्यालोक नगरकी विद्याधरकुमारी रत्नावलीसे विवाह कर जब वह लौट रहा था कि आकाशमे उसका पुष्पक विमान रुक गया, मानो पापकर्मसे दान रुक गया हो, मानो शुक्र नक्षत्रसे मेघजाल स्खलित हो गया हो, मानो वर्षासे कोयलका कलरव, मानो खोटे स्वामीसे कुटुम्बका धन, मानो मच्छने महाकमलको पकड लिया हो, मानो सुमेरु पर्वतने पवनकी गतिको, मानो दानके प्रभावसे नीच भवन। उसकी किंकिणियाँ शब्दशून्य हो गयी, जैसे सुरति समाप्त होनेपर कामिनी चुपचाप हो जाती है। घण्टियोने भी घन-घन शब्द छोड दिया, मानो मेढकोके लिए ग्रीष्मकाल आ गया हो। नरश्रेष्ठोमे काना-फूसी होने लगी । बार-बार प्रेरित करनेपर भी विमान नही चलता, नहीं चलता, मानो महामुनिके भयसे प्राण नही छोड़ता ॥१-९॥

घत्ता—विघटित होता है, थर-थर करता है, परन्तु वह विमान आदरणीय बालीके ऊपर नही पहुँचता, वैसे ही जैसे नयी विवाहिता स्त्री अपने प्रौढ पतिके पास नहीं जाती ॥१०॥

[२] तब, इस बीच रावणने सब दिशाओमे अवलोकन किया। सब ओर देखनेसे उसे आकाश ऐसा लगा जैसे रक्त-कमल हो। फिर वह अचानक क्रुद्ध हो उठा, मानो काल ही क्रुद्ध हुआ हो। उसने कहा, "किसने साँपके मुँहको क्षुब्ध किया है ? किसने अपने सिरपर वज्राघात चाहा ह ? सिंहके मुँहसे

कों पइट्ठु जलन्तएँ जलण-जालेँ । को ठिउ कियन्त-दन्तन्तरालेँ' ॥४॥
मारिच्चे वुच्चई 'देव देव । स-भुअङ्गमु चन्दण-रुक्खु जेम ॥५॥
लम्बिय-थिर-थोर-पलम्ब-बाहु । अच्छइ कइलासहोँ उवरि साहु ॥६॥
मेरु व अकम्पु उवहि व अखोहु । महियलु व बहु-क्खमु चत्त-मोहु ॥७॥
मज्झण्ह-पयङ्गु व उग्ग-तेउ । तहोँ तव-सत्तिएँ पडिखलिउ वेउ॥८॥
ओसारि विमाणु दवत्ति देव । फुट्टइ ण जाम खलु हियउ जेम' ॥९॥

घत्ता

त माम-वयणु णिसुणेप्पिणु दहमुहु हेट्ठामुहु वलिउ ।
गयणङ्गण-लच्छिहेँ केरउ जोव्वण-मारु णाइँ गलिउ ॥१०॥

[३]

दुवई

तो गज्जन्त-मत्त-मायङ्ग-तुङ्ग-सिर-घट्ठ-कन्धरो ।
उक्खय-मणि-सिलायलुच्छालिय-हल्लाविय-वसुन्धरो ॥१॥

बहु-सूरकन्त-हुयवह-पलित्तु । ससिकन्त-णीर-णिज्झर-किलित्तु ॥२॥
मरगय-मऊर-सदेह-वन्तु । णील-मणि-पहन्धारिय-दियन्तु ॥३॥
वर-पउमराय-कर-णियर-तम्बु । गय-मय-णइ-पक्खालिय-णियम्बु ॥४॥
तरु-पडिय-पुप्फ-पङ्कुत्त-सिहरु । मयरन्द-सुरा-रस-मत्त-भमरु ॥५॥
अहि-गिलिय गइन्द-पमुत्त-सासु । सासुग्गय-मोत्तिय-धवलियासु ॥६॥
सो तेहउ गिरि-कइलासु दिट्ठु । अण्णु वि मुणिवरु मुणिवर-वरिट्ठु॥७॥
पच्चारिउ 'लइ मुणिओ सि मित्त । स-कसाय-कोव-हुववह-पलित्त ॥८॥
अज्जु वि रणु इच्छहि मइँ समाणु । जइ रिसि तो किं थम्भिउ विमाणु॥९॥

कोन निकलना चाहता है ?-जलती हुई आगकी ज्वालामें किसने प्रवेश किया है ? यमकी दाढोंके बीच कौन बैठा है ?" मारीच ने कहा, "देवदेव, जिस प्रकार साँपोसे सहित चन्दन वृक्ष होता है, उसी प्रकार लम्बी-लम्बी स्थूल बाहुवाले महामुनि कैलास पर्वतके ऊपर स्थित है, मेरुके समान अकम्प और समुद्र की तरह अक्षुब्ध, महीतलके समान बहुक्षम, त्यक्तमोह (मोह छोड देनेवाले) और मध्याह्नके सूर्यकी तरह उग्र तेजवाले। उनकी शक्तिसे विमानका तेज रुक गया है। हे देव, विमान शीघ्र हटा लीजिए जिससे हृदय की तरह फूट न जाये ॥१-९॥

घत्ता—अपने ससुरके शब्द सुनकर रावण नीचा मुख करके रह गया। मानो गगनांगनारूपी लक्ष्मीका यौवनभार ही गल गया हो। ॥१०॥

[३] उसने (उतरकर) वह कैलास गिरि देखा, जिसके स्कन्ध गरजते हुए मत्तगजोंके ऊँचे सिरोसे घर्षित है, जो प्रचुर सूर्यकान्त मणियोकी ज्वालासे प्रदीप्त और चन्द्रकान्त मणियोकी धारासे रचित है, जो मरकत मणियोंसे मयूरोका भ्रम उत्पन्न करता है, जिसने नीलमहामणियोंकी प्रभासे दिशाओको अन्धकारमय कर दिया है, जो श्रेष्ठ पद्मराग मणियोंके किरण-समूहसे लाल है, जिसके तट, हाथियोंके मदजलकी नदियोंसे प्रक्षालित है, जिसके शिखर वृक्षोसे गिरे पुष्पोंसे व्याप्त है, जिसमे मकरन्दोंकी सुरा पीकर भ्रमर मतवाले हो रहे है, साँपोसे दंशित महागज जिसमे साँसे छोड़ रहे है, और सासोंसे निकले हुए मोतियोसे जिसकी दिशाएँ धवलित हो रही है। एक और मुनिवरको उसने वहाँ देखा। उसने उन्हें ललकारा, "लो मित्र, मुनि होकर भी तुम कषायपूर्वक क्रोधाग्निकी ज्वालामे जल रहे हो, आज भी मेरे साथ युद्ध करनेकी इच्छा रखते हो, नही तो, जब मुनि थे तो विमान क्यो रोका ?" ॥१-९॥

घत्ता

जं पइँ परिहव-रिणु दिण्णउ त स-कलन्तरु अल्लवमि ।
पाहाणु जेम उम्मूलेँवि कइलासु जेँ सायरेँ घिवमि' ॥१०॥

[४]

दुवई

एम भणेवि झत्ति पडिउ इव वालिहेँ तणेँण सावेण ।
तलु भिन्देवि पइट्ठु महिदारणियहेँ विज्जहेँ पहावेण ॥१॥

चिन्तेप्पिणु विज्ज-सहासु तेण । उम्मूलिउ महिहरु दहमुहेण ॥२॥
सु-पसिद्धउ सिद्धउ लद्ध-ससु । णावइ दुप्पुत्ते णियय-वसु ॥३॥
अहवइ णवन्तु दुक्किय-भरेण । तइलोक्कु वखित्तु(?)व जिणवरेण॥४॥
अहवइ भुवइन्द-ललन्त-णालु । णीसारिउ महि-उवरहोँ व वालु॥५॥
अहवइ णं वसुह महीहराहँ । छोडाविय वालालुञ्चिराहँ ॥६॥
अहवइ चलवलइ भुअङ्ग-थट्टु । ण धरणि-अन्त-पोट्टलु त्रिसट्टु ॥७॥
खोलुक्खउ खोणि-खयालु माइ । पायालहोँ फाडिउ उअरु णाइँ ॥८॥
गिरिवरेँण चलन्ते-चउ-समुद्द । अहिमुह उत्थल्लाविय रउद्द ॥९॥

घत्ता

जं गयउ आसि णासेप्पिणु सायर-जारे माणियउ ।
त भण्ड हरेवि पडीवउ जलु-कु-कलत्तु व आणियउ ॥१०॥

[५]

दुवई

सुरवर-पवरकरि-कराकार-करग्गुग्गामिएँ धरे ।
भग्ग-भुयङ्ग-उग्ग-णिग्गय-विसग्गि-लग्गन्त-कन्दरे ॥१॥

कत्थइ विहडियइँ सिलायलाइँ । सइलग्गइँ कियइँ व खलहलाइँ॥२॥
कत्थइ गय णिग्गय उद्ध-सुण्ड । ण धरएँ पसारिय वाहु-दण्ड ॥३॥
कत्थइ सुअ-पन्तिउ उट्ठियाउ । ण तुट्टउ मरगय-कण्ठियाउ ॥४॥
कत्थइ भमरोलिउ धावडाउ । उड्डन्ति व कइलासहोँ जडाउ ॥५॥

घत्ता—"पहले जो तुमने पराभवका ऋण मुझे दिया था, उसे अब कालान्तरमें मैं चुकाता हूँ। पाषाणकी तरह इस कैलासको उखाडकर समुद्रमें फेकता हूँ" ॥१०॥

[४] ऐसा कहकर, वह शीघ्र बालीके शापके समान नीचे आ गया। मही विदारिणी विद्याके प्रभावसे वह तलको भेदकर भीतर घुसा। अपनी हजार विद्याओंका चिन्तन कर रावणने पहाडको उखाड लिया जैसे कुपुत्र प्रसिद्ध सिद्ध प्रशंसाप्राप्त अपने वंशको उखाड दे। अथवा जिस प्रकार पापभारसे झुकते हुए त्रिलोकको जिनवर उखाड देते है, अथवा सर्पराजकी तरह सुन्दर है भाल जिसका, ऐसा बालक, धरतीके उदरसे निकला हो, अथवा व्यालोंसे लिपटे पहाड़ोंसे धरती छूट गयी हो, अथवा चिलबिलाता हुआ साँपोका समूह हो, अथवा धरतीकी आँतोंकी ढेर विशेष हो। खोदा गया धरतीका गड्ढा ऐसा जान पडता है, मानो पातालका उदर फाड़ दिया गया हो। पहाडके हिलते ही चारों समुद्रोंमें सर्पमुखोकी तरह भयंकर उथल-पुथल मच गयी ॥१-९॥

घत्ता—जो जल भाग था और जिसका प्रेमी समुद्रने भोग किया था उसे कुकलत्रकी तरह बलपूर्वक पकड़कर पहाड़ ले आया ॥१०॥

[५] इन्द्रके महान् ऐरावतकी सूँडके समान आकारवाली हथेलीसे धरतीको उठानेपर भुजंग भग्न हो गये, उनसे निकलनेवाली उग्र विषकी ज्वालाएँ गुफाओं-से लगने लगीं, कही शिलातल खण्डित हो गये और शैलशिखर स्खलित हो गये, कहीं सूँड़ उठाकर हाथी भागे, मानो धरतीने अपने हाथ फैला दिये हो, कही तोतो की पंक्तियाँ उठीं, मानो मरकतके कण्ठे टूट गये हो, कहीं भ्रमरपंक्तियाँ दौड़ रही थीं, मानो

कत्थइ वणयर णिग्गय गुहेहिँ । ण वमइ महागिरि वहु-मुहेहिँ ॥६॥
उच्छलिउ कहि मि जलु धवल-धारु । ण तुट्टेंवि गउ गिरिवरहोँ हारु ॥७॥
कत्थइ उट्ठियइँ वलाय-सयइँ । ण तुट्टेंवि गिरि-अट्ठयइँ गयइँ ॥८॥
कत्थइ उच्छलियइँ विद्दुमाइँ । ण रुहिर-फुलिङ्गइँ अहिणवाइँ ॥९॥

घत्ता

अण्णु वि जो अण्णहोँ हत्थेंण णिय-थाणहोँ मेल्लावियउ ।
णिच्चलु ववसाय-विहूणउ कवणु ण आवइ पावियउ ॥१०॥

[६]

दुवई

ताम फडा-कडप्प-विप्फुरिय-परिप्फुड-मणि-णिहायहो ।
आसण-कम्पु जाउ-पायालयले धरणिन्द-रायहो ॥१॥
अहि अवहि पउञ्जें वि आउ तेत्थु । रावणु केलासुद्धरणु जेत्थु ॥२॥
जहिँ मणि-सिलायलुप्पीलु फुट्टु । गिरि-डिम्भहोँ ण कडिसरउ तुट्टु ॥३॥
जहिँ वणयर-थट्ट-मरट्टु मग्गु । जहिँ वालि महारिसि सोवसग्गु॥४॥
जल्ल-मल-पसाहिय-सयल-गत्तु । विज्जा-जोगेसरु रिद्धि-पत्तु ॥५॥
तिण-कणयकोडि सामण्ण-भाउ । सुहि-सत्तु-एक्क-कारण-सहाउ ॥६॥
सो जइवरु कुञ्चिय-कर-कमेण । परिअञ्चिउ णमिउ भुअङ्गमेण ॥७॥
महियल-गय-सीसावलि विहाइ । किय अहिणव-कमलच्चणिय णाइँ ॥८॥
रेहइ फणालि मणि-विप्फुरन्ति । ण वोहिय पुरउ पईव-पन्ति ॥९॥

घत्ता

पणवन्ते दससयलोयणेंण हेट्ठामुहु कइलासु णिउ ।
सोणिउ दह-मुहेहिँ वहन्तउ दहमुहु कुम्भागारु किउ ॥१०॥

कैलास पर्वतकी जटाएँ उड रही हो, कही गुहाओंसे वानर निकल आये, मानो महागिरि बहुत-से मुखोसे चिल्ला रहा हो, कही जलकी धवलधारा उछल पडी हो, मानो गिरिवरका हार टूट गया हो, कही सैकड़ो बगुले उड़ रहे थे, मानो पहाड़की हड्डियॉ चरमरा गयी हों, कही मूँगे उछल रहे थे मानो अभिनव रुधिरकण हों ॥१-९॥

घत्ता—दूसरा भी कोई, जो दूसरेके द्वारा अपने स्थानसे च्युत करा दिया जाता है, व्यवसायसे शून्य और गतिहीन वह किस आपत्तिको नहीं प्राप्त होता ॥१०॥

[६] इसी बीच जिसके फनसमूहपर मणिसमूह चमक रहा है, ऐसे धरणेन्द्रका पाताललोकमे आसन कॉप उठा। अवधिज्ञानसे जानकर नागराज वहॉ आया जहॉ रावणने कैलास पर्वत उठा रखा था। जहॉ उत्पीड़नसे शिलातल फूट चुके थे, जैसे पहाड़रूपी शिशुके कटिसूत्र बिखर गये हो, जहॉ वनचर समूहका अहकार चूर-चूर हो गया, जहॉ महामुनिपर उपसर्ग हो रहा था। पसीनेके मैल और मलसे जिनका शरीर अलंकृत था और जो विद्यायोगेश्वर और ऋद्धियोके धारी थे। तृण और स्वर्णमे जो समानभाव रखते थे। मित्र और शत्रुके प्रति जिनका एक-सा स्वभाव था, ऐसे उन मुनिवरकी अपने हाथ-पैर सकुचितकर नागराजने प्रदक्षिणा कर प्रणाम किया। धरतीपर उसकी फणावली ऐसी मालूम देती है जैसे अभिनव कमलोकी अर्चा हो। मणियोसे चमकती हुई उसकी फणावली ऐसी प्रतीत होती है मानो सामने जलायी हुई प्रदीप पक्ति हो ॥१-९॥

घत्ता—धरणेन्द्रके नमस्कार करते ही कैलास पर्वत नीचा होने लगा, रावणके दसो मुखसे रक्तकी धारा बह निकली और वह कछुएके आकारका हो गया ॥१०॥

[७]

दुवई

जं जहिपवर-राय-गुरुभारक्कन्त-धरेण पेल्लिओ ।
दस-दिसिवह-भरन्तु दहवयणें घोराराउ मेल्लिओ ॥१॥

त सद्दु सुणेवि मणोहरेण सुरवर-करि-कुम्भ-पओधरेण ॥२॥
केऊर-हार-णेउर-धरेण । खणखणखणन्त-कङ्कण-करेण ॥३॥
कञ्ची-कलाव-रङ्खोलिरेण । मुह-कमलासत्तिन्दिन्दिरेण ॥४॥
विब्भम-विलास-भूभङ्गुरेण । हाहारउ किउ अन्तेउरेण ॥५॥
'हा हा दहमुह जय-सिरि-णिवास । दहवयण दसाणण हा दसास ॥६॥
वीसद्ध-गीव वीसद्ध-जीह । दससिर सुरवर-सारङ्ग-सीह' ॥७॥
मन्दोवरि पभणइ 'चारु-चित्त । अहों वालि-भडारा करें परित्त ॥८॥
लङ्केसहों जाइ ण जीउ जाम । भत्तार-भिक्ख महु देहि ताम' ॥९॥

घत्ता

त कलुण-वयणु णिसुणेप्पिणु धरणिन्दें उद्धरिउ धरु ।
मघ-रोहिणि-उत्तर-पत्तेंण अङ्गारेण व अम्बुहरु ॥१०॥

[८]

दुवई

सेल-विसाल-मूल-तल-तालिउ लङ्काहिउ विणिग्गओ ।
केसरि-पहर-णहर-खर-चवडण-चुक्को इव महग्गओ ॥१॥

लुअ-केसर-उक्खय-णह-णिहाउ । ण गिरि-गुह मुऍवि मइन्दु आउ ॥२॥
कुण्डलिय-सीस-कर-चरण-जुम्मु । ण पायालहों णीसरिउ कुम्मु ॥३॥
कक्खड झड-णिसुढिय-फड-कडप्पु । ण गरुड-मुहहों णीसरिउ सप्पु ॥४॥
मयलञ्छणु दूसिउ तेय-मन्दु । ण राहु-मुहहों णीसरिउ चन्दु ॥५॥
गउ तेत्तहें जेत्तहें गुण-गणालि । अच्छइ अत्तावण-सिलहिँ वालि ॥६॥
परिअञ्चें वि वन्दिउ दससिरेण । पुणु किअ गरहण गग्गर-गिरेण ॥७॥

[७] नागराजके भारी भारसे आक्रान्त धरतीसे दशानन पीडित हो उठा। उसने जोरसे शब्द किया जिससे दसो दिशाएँ गूँज उठी। रावणके सुन्दर अन्तःपुरने जब वह शब्द सुना तो वह हाहाकार कर उठा। उसके स्तन ऐरावतके कुम्भस्थलके समान थे, वह केयूर हार और नूपुर पहने हुए था, उसके हाथके कंगन खन-खन बज रहे थे, कटिसूत्र रुनझुन कर रहे थे, मुखरूपी नील कमलोके पास भौरे मडरा रहे थे, विभ्रम और विलाससे उसकी भौहें टेढी हो रही थी। (वह विलाप करने लगी), "हा, श्रीनिवास दशानन! दस जीभ, हाथ-पैरवाले हे दशानन! इन्द्ररूपी मृगोके लिए सिंहके समान हे दससिर!" मन्दोदरी कहती है, "हे चारुचित्त आदरणीय, रक्षा कीजिए, जिससे लंकेश्वरके प्राण न जाये! मुझे अपने पतिकी भिक्षा दीजिए।" ॥१-९॥

घत्ता—यह करुण वचन सुनकर धरणेन्द्रने धरती उठा दी, वैसे ही जैसे मघा और रोहिणीके उत्तर दिशामे व्याप्त होनेपर मंगल मेघोंको उठा लेता है ॥१०॥

[८] पर्वतके मूलभागसे प्रताडित लंकानरेश ऐसे निकला, जैसे महागज सिहके प्रहारके नखोकी खरी चपेटसे बच निकला हो, मानो गिरिगुहासे ऐसा सिह आया हो जिसके अयाल कट गये है और नाखून टूट हो चुके है। मानो पातालसे कछुआ निकला हो जिसने अपना सिर, कर और चरण-युगल पेटमे कुण्डलित कर रखा है। कर्कश आघातसे नष्ट हो गया है फन-समूह जिसका, ऐसा साँप ही गरुडके मुँहसे निकला हो। मृगलांछित दूषित और क्षीण तेज चन्द्र ही मानो राहुके मुखसे निकला हो। वह वहाँ गया; जहाँ गुणालय बाली आतापिनी शिलापर आरूढ़ थे। प्रदक्षिणा करके रावणने वन्दना की और

'मइँ सरिसउ अण्णु ण जगेँ अयाणु। जो करमि केलि सीहैँ समाणु ॥८॥
मइँ सरिसउ अण्णु ण मन्द-मग्गु। जो गुरुहु मि करमि महोवसग्गु ॥९॥

घत्ता

जं तिहुवण-णाहु मुएप्पिणु अण्णहोँ णमिउ ण सिर-कमलु।
तं सम्मत्त-महद्दुमहोँ लद्धु देव पइँ परम-फलु' ॥१०॥

[९]

दुवई

पुणरवि वारवार पोमाएँवि दसविह-धम्मवालयं।
गउ तेत्तहेँ तुरन्तु तं जेत्तहेँ भरहाहिव-जिणालयं ॥१॥
कइलास-कोडि-कम्पावणेण। किय पुज्ज जिणिन्दहोँ रावणेण ॥२॥
फल-फुल्ल-समद्धि-वणासइ व्व। सावय-परियरिय महाडइ व्व ॥३॥
अहिणव-उल्लाव विलासिणि व्व। णर-दड्ढ-धूव खल-कुट्टणि व्व ॥४॥
वहु-दीव समुद्दन्तर-महि व्व। पेल्लिय-वलि णारायण-मइ व्व ॥५॥
घण्टारव-मुहलिय गय-घड व्व। मणि-रयण-समुज्जल-अहि-फड व्व ॥६॥
ण्हाणड्ढ वेस-केसावलि व्व। गन्धुक्कड कुसुमिय पाडलि व्व ॥७॥
तं पुज्ज करेँ वि आढत्तु गेउ। मुच्छण-कम-कम्प-तिगाम-भेउ ॥८॥
सर-सज्ज-रिसह-गन्धार-वाहु। मज्झिम-पञ्चम-धइवय-णिसाहु ॥९॥

घत्ता

महुरेण थिरेण पलोट्टेँण जण-वसियरण-समत्थएँण।
गायइ गन्धव्वु मणोहरु रावणु रावणहत्थएँण ॥१०॥

फिर गद्गद स्वरमे अपनी निन्दा करने लगा, "मेरे समान दुनियामें कोई अज्ञानी नही है, जो सिंहके साथ क्रीडा करना चाहता है। मेरे समान दूसरा मन्दभाग्य नही है कि जो मैने गुरुपर ही भयंकर उपसर्ग किया ॥१-९॥

घत्ता—उन त्रिभुवन स्वामीको छोड़कर मै किसी औरको जो अपना सिरकमल नही झुकाया, ऐसे उस सम्यग्दर्शनरूपी वृक्षका परम फल प्राप्त कर लिया" ॥१०॥

[९] दस प्रकारके धर्मका पालन करनेवाले बालीकी बार-बार प्रशसा कर रावण वहॉ गया जहॉ भरतके द्वारा बनवाये गये जिनालय थे। कैलास पर्वतको कॅपानेवाले रावणने जिनेन्द्र भगवान्की पूजा की, जो वनस्पतिकी तरह फल फूलोसे समृद्ध, महाअटवीकी तरह सावय (श्रावक और श्वापद पशु) से घिरी हुई, विलासिनीकी तरह अत्यन्त उल्लाव (उल्लाप= आलाप)से भरी हुई, खलकुट्टनीकी तरह णर दड्ढ धूव (मनुष्योके द्वारा जिसमे धूप जलायी गयी, कुट्टनी पक्षमें, (नष्ट कर दी गयी धूर्तता जिसकी), समुद्रके भीतरकी तरह बहुत दीप (दीपक और द्वीप) वाली, नारायणकी मतिकी तरह पेल्लिय बलि (नैवेद्य और राजा बलि) से प्रेरित गजघटाकी तरह घण्टाओंसे मुखरित, सॉपके फनकी तरह मणि और रत्नोंसे समुज्ज्वल, वेश्याके केशोकी तरह स्नानसे विलसित, खिले हुए गुलाबकी तरह उत्कट गन्धसे युक्त थी। पूजा करनेके बाद रावणने अपना गान प्रारम्भ किया। वह गान मूर्च्छना क्रम कम्प और त्रिगाम, षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पचम, धैवत और निषाद इन सात स्वरोसे युक्त था ॥१-९॥

घत्ता—मधुर स्थिर और लोगोको वसमे करनेमें समर्थ अपनी वीणा से रावण ने मधुर गन्धर्व गान किया ॥१०॥

[१०]

दुवई

सालङ्कारु सु-सरु सु-वियड्ढु सुहावउ पिय-कलत्तु व ।
आरोहि-अध (व?) रोहि-थाइय-सचारिहिं सुरय-तत्तु व ॥१॥
णव-वहुअ-णिडालु व तिलय-चारु । णिग्घण-गयणयलु व मन्द-तारु ॥२॥
सण्णद्ध-वल पिव लइय-ताणु । धणुरिव सज्जीउ पसण्ण-वाणु ॥३॥
त गेउ सुणेप्पिणु दिण्ण णियय । धरणिन्दे सत्ति अमोहविजय ॥४॥
तियसाह णवेप्पिणु रिसह-देउ । पुणु गउ णिय-णयरहों कइकसेउ॥५॥
एत्थन्तरें सुग्गीउत्तमासु । उप्पण्णउ केवलु णाणु तासु ॥६॥
वाहुवलि जेम थिउ सुद्ध-गत्तु । उप्पण्णु अण्णु धवलायवत्तु ॥७॥
भामण्डलु कमलासण-समाणु । वहु-दिवसँहिँ गउ णिव्वाण-थाणु ॥८॥
दससिरु वि सुरासुर-डमर-भेरि । उव्वहइ पुरन्दर-वइर-खेरि ॥९॥

घत्ता

'पइसरेँवि जेण रण-सरवरेँ मालिहेँ खुडियउ सिर-कमलु ।
तहों सकहों पुरन्दर-हसहों पाडमि पाण-पक्ख-जुअलु' ॥१०॥

[११]

दुवई

एम भणेवि देवि रण-भेरि पयट्टु तुरन्तु रावणो ।
जो जम-धणय-कणय-वुह-अट्ठावय-धर-थरहरावणो ॥१॥
णीसरिएँ दसाणणें णिसियरिन्द । ण सुघ तुम णिग्गय गइन्द ॥२॥
माणुण्णय णिय-णिय-वाहणत्थ । दणु-दारण पहरण-पवर-हत्थ ॥३॥
समुह वड णिविड गय-वड वरट्ट(?)। णन्दीसर-दीवु व सुर पयट्ट ॥४॥
पायालङ्क पावन्तएण । दहगीवें वइर वहन्तएण ॥५॥
पज्जालिउ जलणु जालासएण(?)॥६॥
वुच्चइ 'सर-दूसण लेहु ताव । खल खुद्द पिसुण परिभिट्ठ पाव'॥७॥

[१०] वह संगीत प्रिय कलत्रकी भाँति अलंकार सहित सुस्वर विदग्ध और सुहावना था, सुरतितत्त्वकी तरह आरोह, अवरोह, स्थायी और संचारी भावोसे परिपूर्ण था। नववधूके ललाटकी तरह तिलक (टीका, राग) से सुन्दर था, मेघरहित आसमानकी तरह सन्दतार (तारे, तार) था, सन्नद्ध सेनाकी तरह लइयताण (त्राण, कवच और तान) था, धनुषकी तरह सज्जीउ (ज्या और जीवन सहित) प्रसन्न वाण (तीर और रागविशेष), था। उस संगीतको सुनकर धरणेन्द्रने अपनी अमोघविजय नामक विद्या रावणको दे दी। इसी बीच सुग्रीवके बड़े भाई वालीको केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। वह बाहुबलीके समान शुद्ध शरीर हो गया, दूसरे उन्हें धवल छत्र कमलासनके समान भामण्डल उत्पन्न हुए। बहुत दिनोंके अनन्तर उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया। सुर और असुरोंके लिए भयंकर भेरीके समान रावण इन्द्रके प्रति शत्रुताके भावसे उद्वेलित था ॥१-९॥

घत्ता—जिस (इन्द्र)ने युद्धके सरोवरमे प्रवेश करके मालिका सिरकमल तोड़ा, उस दुष्ट इन्द्ररूपी हंसके प्राणरूपी पक्ष-युगल-को गिराकर रहूँगा ॥१०॥

[११] यह सोचकर और युद्धकी भेरी बजवाते हुए रावण तुरन्त चल पड़ा, जो यम-धनद-कनक-बुध-अष्टापद और धरतीको थर-थर कँपा देनेवाला था। रावणके प्रस्थान करते ही निशाचरेन्द्र इस प्रकार निकल पड़े, जैसे मुक्ताकुश हाथी ही निकल पड़े हो। मानसे उन्नत वे अपने-अपने वाहनो-पर सवार थे। दनुको विदीर्ण करनेवाले उनके हाथोमे प्रबल प्रहरण थे। सामने पताकाएँ थी और गजघटा टकरा रही थी, ऐसा लगता था कि सुर नन्दीश्वरद्वीप जा रहे हों। अपने मनमे वैर धारण करनेवाले दशानन पाताल लंकाको पाते ही शत-शत ज्वालाओकी तरह भड़क उठा। उसने कहा, "तबतक खल, क्षुद्र,

तं वयणु सुणेप्पिणु मामएण । लङ्काहिउ वुज्झाविउ मएण ॥८॥
'सहुँ सालएहिँ किर कवण काणि । जइ घाइय तो तुम्हहुँ जि हाणि॥९॥
लहु वहिणि-सहोयर-णिलएँ जाहुं । आरुमें वि किज्जइ काइँ ताहुँ'॥१०॥

घत्ता

तं वयणु सुणें वि दहवयणेंण मच्छरु मणें परिसेसियउ ।
चूडामणि-पाहुड-हत्थउ इन्दइ कोक्कउ पेसियउ ॥११॥

[१२]

दुवई

आइय तेत्थु ते वि पिय-वयणेंहिँ जोकारिउ दसाणणो ।
गउ किक्किन्ध-णयरु सुग्गीउ वि मिलिउ स-मन्ति-साहणो ॥१॥
साहिउ अरि-अक्खोहणि-सहासु । एत्तडिय सङ्ख णरवर-वलासु ॥२॥
रह-तुरय-गइन्दहुँ णाहि छेउ । उव्वहइ पयाणउ पवण-वेउ ॥३॥
थिय अग्गिम-वेल्लि-महाविसालें । रेवा-विन्झइरिहिँ अन्तरालें ॥४॥
अत्थवणहों ढुक्कु पयङ्गु जाम । अल्लीण पासु णिसिअड य(?)णाव॥५॥
वरि-सग्ग-वत्थ सीमन्त-वाह । णक्खत्त-कुसुम-सेहर-सणाह ॥६॥
कित्तिय-चच्चिक्किय-गण्डवास । मग्गव-भेसइ-कण्णावयस ॥७॥
वहुलक्खण ससहर-तिलय-तार । जोण्हा-रङ्गोलिर-हार-भार ॥८॥
ण वन्चेवि दिट्ठि दिवायरासु । णिसि-वहु अल्लीण णिसायरासु ॥९॥

घत्ता

विण्णि वि दुस्सील-सहावइँ सुरउ स इ भुञ्जन्ताइँ ।
'मा दिणयरु कहि सि णिएसउ' णाइँ स-सङ्कइँ सुत्ताइँ ॥१०॥
इय इत्थ प उ म च रि ए धणञ्जयासिय-स य म्भु ए व-कए ।
क इ ला सु द्ध र ण मिण तेरसमं साहिय पव्वं ॥

प्रथम पर्व

पापी और ढीठ खरदूषणको पकड़ो।" यह वचन सुनकर ससुर मयने लंकेश्वरको समझाया कि बहनोईके साथ क्या वैर? यदि वह मारा जाता है तो इसमें तुम्हारी ही हानि है, शीघ्र ही बहन और बहनोईके घर चले, क्रोध करके भी उसका तुम क्या कर लोगे? ॥१-१०॥

घत्ता—ये वचन सुनकर रावणने अपने मनसे मत्सर निकाल दिया और चूडामणिका उपहार हाथमें देकर उसने इन्द्रजीतको बुलाकर भेजा ॥११॥

[१२] खरदूषण भी वहाँ आये और प्रिय शब्दोंमें रावणको नमस्कार किया। सुग्रीव भी मन्त्री और सेनाके साथ किष्किन्धा नगर चला गया। उसने शत्रुकी एक हजार अक्षौहिणी सेना सिद्ध कर ली। श्रेष्ठ नरोंकी भी इतनी ही संख्या उसके पास थी। रथ, तुरग और गजराजोंका उसके पास अन्त नहीं था। उसने पवनगतिसे प्रस्थान किया। उसकी अग्रिम सेना रेवा और विन्ध्याचलके विशाल अन्तरालमे ठहर गयी। इतनेमे सूर्यका अस्त हो गया, कि निशा पास ही अटवीमे व्याप्त हो गयी, उत्तम दिव्य वस्त्रको धारण करती हुई। नक्षत्र और कुसुमोके शेखरसे युक्त उसका सीमन्त (चोटी) था। कृत्तिकासे उसका गण्डवास अंकित था। शुक्र और बृहस्पति उसके कर्णावतंस थे, अन्धकार अंजन, शशधर स्वच्छतिलक, ज्योत्स्नाकी किरण परम्परा हार-भार था। मानो सूर्यकी दृष्टि बचाकर निशारूपी वधू निशाकरमे लीन हो गयी ॥१-९॥

घत्ता—दुश्शील स्वभाववाले दोनों ही स्वयं सुरतिका सुख भोगते हुए इस आशंकाके साथ सो रहे थे कि कही दिनकर उन्हें देख न ले ॥१०॥

इस प्रकार धनंजयके आश्रित स्वयम्भू देवकृत पद्मचरितमे कैलास-उद्धरण नामका तेरहवाँ पर्व समाप्त हुआ। ●

[१४. चउदहमो संधि]

विमलें विहाणएँ कियएँ पयाणएँ उयगइरि-सिहरें रवि दीसइ ।
'मइँ मेल्लेप्पिणु णिसियरु लेप्पिणु कहिँ गय णिसि' णाइँ गवेसइ ॥१॥

[१]

सुप्पहाय-दहि-अस-रवण्णउ । कोमल-कमल-किरण-दल-छण्णउ ॥१॥
जय-हरें पइसारिउ पइसन्ते । णावइ मङ्गल-कलसु वसन्तें ॥२॥
फग्गुण-खलहों दूउ णीसारिउ । जेण विरहि-जणु कह व ण मारिउ॥३॥
जेण वणप्फइ-पय विब्भाडिय । फल-दल-रिद्धि-मडप्फर साडिय ॥४॥
गिरिवर गाम जेण धूमाविय । वण-पट्टण-णिहाय संताविय ॥५॥
सरि-पवाह-मिहुणाइँ णासन्तइँ जेण वरुण-घण-णियलेंहिं घित्तइँ ॥६॥
जेण उच्छु-विड जन्तेंहिं पीलिय । पव-मण्डव-णिरिक्क आवीलिय ॥७॥
जासु रज्जें पर रिद्धि पलासहों । तहों मुहु मइलें वि फग्गुण-मासहों॥८॥

घत्ता

पङ्कय-वयणउ कुवलय-णयणउ केयइ-केसर-सिर-सेहरु ।
पल्लव करयलु कुसुम-णहुज्जलु पइसरइ वसन्त-णरेसरु ॥९॥

[२]

डोला-तोरण-वारें पईहरें । पइठु वसन्तु वसन्त-सिरी-हरें ॥१॥
सररुह-वासहरेंहिं रव-णेउरु । आवासिउ महुअरि-अन्तेउरु ॥२॥
कोइल-कामिणीउ उज्जाणेंहिं । सुय-सामन्त लयाहर-थाणेंहिं ॥३॥
पङ्कय-छत्त-दण्ड सर णियरेंहिं । सिहि-साहुलउ महीहर-सिहरेंहिं॥४॥

चौदहवीं सन्धि

दूसरे दिन सुन्दर सवेरा होनेपर रावणने प्रयाण किया। उदयगिरिके सिरपर सूर्य दिखाई दे रहा था, मानो यह खोजते हुए कि मुझे छोड़कर और निशाकरको लेकर निशा कहाँ चल दी ? ॥१॥

[१] सुप्रभातकी दहीके समान किरणोसे सुन्दर और कोमल किरणोंके दलसे आच्छन्न, अरुण सूर्यपिण्ड ऐसा मालूम पडता है मानो वसन्तने अपने जयगृहमें प्रवेश करते हुए, मंगलकलश-का प्रवेश कराया हो, फागुनरूपी दुष्टके दूतको निकाल दिया गया जिसने विरहीजनोंको किसी प्रकार मारा भी नही था, जिसने वनस्पतिरूपी प्रजाको तहस-नहस कर दिया, फलो और पत्तोकी ऋद्धिको नष्ट कर दिया, गिरि और गाँवोंको जिसने कुहरेसे भर दिया, वन और नगरोके समूहको जिसने खूब सताया, नदीके प्रवाह मिथुनोको नष्ट कर जिसने वरुणके हिम-घनकी शृंखलाओंमे डाल दिया, जिसने इक्षुवृक्षोको यन्त्रोंसे पीडित किया, तैरनेके मण्डपसमूहको पीडा पहुँचायी, जिसके राज्यमें केवल पलाशको ही वृद्धि प्राप्त हुई, उस फागुन माहका मुख काला करके ॥१-८॥

घत्ता—पंकज है मुख जिसका, कुवलय जिसके नेत्र है, केतकीका पराग सिरशेखर है, पल्लव करतल है, कुसुम उज्ज्वल नख है, ऐसा वसन्तरूपी नरेश्वर प्रवेश करता है ॥९॥

[२] झूलो और वन्दनवारोसे जिसके द्वार सजे हुए है, ऐसे वसन्तके श्रीगृहमे वसन्तने प्रवेश किया। कमलोके वास-गृहोमें शब्द ही है नूपुर जिसके, ऐसा मधुकरीरूपी अन्त पुर ठहर गया। कोयलरूपी कामिनी उद्यानोमे शुकरूपी सामन्त लतागृहोमे, पंकजोंके छत्र और दण्ड सरोवर-समूहमें, मयूर

कुसुमा-मञ्जरि-धय साहारें हिं । दवणा-गण्ठिवाल केयारें हिं ॥५॥
वाणर-मालिय साहा-वन्दें हिं । महुअर मत्तवाल(?)मयरन्दें हिं ॥६॥
मञ्जु ताल कल्लोलावासें हिं । भुआ अहिणव-फल-महणासें हिं ॥७॥
एम पइट्ठु विरहि विद्धन्तउ । गयवइ-धम्में हिं अन्दोलन्तउ ॥८॥

घत्ता

पेक्खें वि एन्तहों रिद्धि वसन्तहों महु-इक्खु-सुरासव-मन्ती ।
गम्मय-वाली भुम्भल-भोली ण भमइ सलोणहों रत्ती ॥९॥

[३]

णम्मयाएँ मयरहरहों जन्तिएँ । णाइँ पसाहणु लइउ तुरन्तिएँ ॥१॥
घवघवन्ति जे जल-पब्भारा । ते जि णाइँ णेउर-झङ्कारा ॥२॥
पुलिणइँ जाइँ वे वि सच्छायइँ । ताइँ जेँ उड्ढणाइँ ण जायइँ ॥३॥
ज जलु खलइ वलइ उल्लोलइ । रसणा-दामु त जि ण घोलइ ॥४॥
जे आवत्त समुट्ठिय चङ्गा । ते जि णाइँ तणु-तिवलि-तरङ्गा ॥५॥
जे जल-हत्थि-कुम्भ सोहिल्ला । ते जि णाइँ थण अद्धुम्मिल्ला ॥६॥
जो हिण्डीर-णियरु अन्दोलइ । णावइ सो जेँ हारु रङ्खोलइ ॥७॥
जं जलयर-रण-रङ्गिउ पाणिउ । त जि णाइँ तम्बोलु समाणिउ ॥८॥
मत्त-हत्थि-मय-मइलिउ ज जलु । त जि णाइँ किउ अक्खिहिँ कज्जलु ॥९
जाउ तरङ्गिणिउ अवर-ओहउ । ताउ जि भङ्गुराउ ण भउहउ ॥१०॥
जाउ भमर-पन्तिउ अल्लीणउ । केसावलिउ ताउ ण दिण्णउ ॥११॥

घत्ता

मज्झें जन्तिएँ मुहु दरसन्तिएँ माहेसर-लङ्क-पईवहुँ ।
सोहुप्पाइउ ण जरु लाइउ तहुँ सहसकिरण-दहगीवहुँ ॥१२॥

और कोयल, महीधरोंके शिखरोंपर, कुसुमोंकी मंजरी रूपी ध्वजाएँ आम्र वृक्षोंपर, दवणरूपी ग्रन्थपाल केदार वृक्षोंमे, वानर रूपी माली शाखा-समूहोंमें, मधुकररूपी मत्त बाल परागोंमे, सुन्दर ताल लहरोंके आवासोमें, भोजनक अभिनव फलोके भोजनगृहोंमें ठहरा दिये गये। इस प्रकार विरहीजनोंको सताते हुए, गजगतिसे झूमते हुए वसन्तने प्रवेश किया ॥१-८॥

घत्ता—आते हुए वसन्तकी ऋद्धि देखकर मधु, ईख और सुरासवसे मतवाली तथा विह्वल और भोली नर्मदारूपी वाला प्रियसे अनुरक्त होकर घूमने लगती है ॥९॥

[३] समुद्रके पास जाते हुए उसने शीघ्र ही अपना प्रसाधन कर लिया। जो उसमें जलके प्रवाहका घवघव शब्द हो रहा है, वहीं उसके नूपुरोंकी झंकार है, जितने भी कान्तियुक्त किनारे है, वे ही उसके ऊपर ओढ़नेके वस्त्र है, जो जल खलवल हुआ करता और उछलता है, वही रसनादामकी तरह शोभित है। जो उसमें सुन्दर आवर्त उठते है, वे ही उसके शरीरकी त्रिवलियोरूपी लहरे है। जो उसमे जलगजोके कुम्भ शोभित है, वे ही उसके आधे निकले हुए स्तन है, जो फेन-समूह आन्दोलित है, वह उसके हारके समान ही हिलडुल रहा है, जो जलचरोके युद्धसे रक्तरजित जल है, वही उसके ताम्बूलके समान है, मदवाले गजोसे जो उसका पानी मैला हो गया है, वही मानो उसने आखोमे काजल लगा लिया है, जो तरंगे ऊपर-नीचे हो रही है, वह मानो उसकी भौहोंकी भगिमा है, जो उससे भ्रमरमाला व्याप्त है, वह उसने केशावली बॉध रखी है ॥१-११॥

घत्ता—माहेश्वर और लंकाके प्रदीप सहस्रकिरण और रावणके बीचमें जाते हुए और अपना मुँह दिखाते हुए उसने उनको मोह उत्पन्न कर दिया जैसे उन्हें ज्वर चढ गया ॥१२॥

[४]

सो वसन्तु सा रेवा त जलु । सो दाहिण-मारुउ मिय-सीयलु ॥१॥
ताइँ असोय-णाय-चूय-वणइँ । महुअरि-महुर-सरइँ लय-भवणइँ ॥२
ते धुयगाय ताउ कीरोलिउ । ताउ कुसुम-मञ्जरि-रिञ्छोलिउ ॥३॥
ते पल्लव सो कोइल-कलयलु । सो केयइ केसर-रय-परिमलु ॥४॥
ताउ णवल्लउ मल्लिय-कलियउ । दवणा-मञ्जरिगउ णव-फलियउ ॥५॥
ते अन्दोला त जुवईयणु । पेक्खेँवि सहसकिरणु हरिसिय-मणु ॥६
सहुँ अन्तेउरेण गउ तेत्तहेँ । णम्मय पवर महाणइ जेत्तहेँ ॥७॥
दूरे थिउ आरक्खिय-णिय-वलु । जलु जन्तिएँहि णिरुद्धउ णिम्मलु ॥८

घत्ता

वड्ढिय-हरिसउ जुवइहि सरिसउ माहेसरपुर-परमेसरु ।
सलिलब्भन्तरेँ माणस-सरवरेँ ण पइट्ठु सुरिन्दु स-अच्छरु ॥९

[५]

सहसकिरणु सहसत्ति णिउड्डेँवि । आउ णाइँ महि-वहु अवरुण्डेँवि ॥१॥
दिट्ठु मउडु अद्धुम्मिल्लउ । रवि व दुरुग्गमन्तु सोहिल्लउ ॥२॥
दिट्ठु णिडालु वयणु वच्छत्थलु । ण चन्दद्धु कमलु णह-मण्डलु ॥३॥
पभणइ सहसरासि 'लइ ढुक्कहोँ । जुज्झहोँ रमहोँ ण्हाहोँ उलुक्कहोँ' ॥४॥
त णिसुणेँवि कडक्ख-विक्खेविउ । वुड्डउ उकराउ महएविउ ॥५॥
उप्परि-करयल-णियरु परिट्ठिउ । ण रत्तुप्पल-सण्डु समुट्ठिउ ॥६॥
ण केयइ-आरामु मणोहरु । णक्ख-सूइ कडउल्ला केसरु ॥७॥
महुयर सर-भरेण अल्लीणा । कामिणि-मिसिणि भणेँवि ण लीणा ॥८

[४] वही वसन्त, वही नर्मदा और वही उसका जल। वे ही अशोक नाग और आम्रवृक्षोंके वन और मधुकरियोंसे मधुर और सरस लतागृह, वे ही कम्पित शरीर कीरोंकी पक्तियाँ, वही कुसुममंजरियोंकी कतारे, वे पल्लव, वही कोयलों-का कलरव, वही केतकीके केशररजका परिमल, वे ही मल्लिका-की नयी कलियाँ, नयी-नयी फलित दवणामजरी। वे झूले, वे युवतीजन। देखकर सहस्र किरणका मन प्रसन्न हो गया। अपने अन्तःपुरके साथ वह वहाँ गया, जहाँ विशाल नर्मदा नदी थी। अपनी आरक्षित सेना उसने दूर ठहरा दी, यन्त्रोंसे निर्मल जल रोक दिया गया ॥१-८॥

घत्ता—बढ रहा है हर्ष जिसका, ऐसा माहेश्वरपुरका नरेश्वर, युवतियोंके साथ पानीके भीतर इस प्रकार घुसा मानो अप्सराओके साथ इन्द्र मानसरोवरमे घुसा हो ॥९॥

[५] सहस्रकिरण सहसा डूबकर जैसे धरतीरूपी वधूका आलिगन करके आ गया। उसका अर्धोन्मीलित मुकुट ऐसा शोभित हो रहा है, मानो थोडा-थोडा निकलता हुआ सूर्य हो। उसका ललाट, मुख और वक्षस्थल ऐसा लग रहा था मानो आधा चन्द्र, कमल और नभमण्डल हो। सहस्रकिरण कहता है, "लो, पास आओ, रमो, जूझो, नहाओ, छिपो।" यह सुन-कर और कटाक्षसे क्षुब्ध होकर, दोनो हाथ ऊपर कर महादेवी पानीमे डूब गयी। पानीके ऊपर उसका करतल समूह ऐसा लग रहा था मानो रक्तकमलोका समूह पानीमे-से उठा हो, मानो केतकीका सुन्दर आराम हो, जिसमे नख, सूची (काँटे, जो केतकीमे रहते है) और कटिसूत्र केशर है। इस प्रकार कामिनीको कमलिनी समझकर स्वरभारसे व्याप्त भ्रमर उसमे लीन हो गये ॥१-८॥

घत्ता

सलील-तरन्तहुँ उम्मीलन्तहुँ मुह-कमलहुँ केइ पधाइय ।
आयइँ सरसइ किय (र?) तामरसइँ णरवइहेँ भन्ति उप्पाइय ॥९॥

[६]

अवरोप्परु जल-कील करन्तहुँ । घण-पाणालि-पहर मेल्लन्तहुँ ॥१॥
कहि मि चन्द-कुन्दुज्जल-तारेँहिँ । धवलिउ जलु तुट्टन्तेँहिँ हारेँहिँ ॥२
कहि मि रसिउ णेउरेँहिँ रसन्तेँहिँ । कहि मि फुरिउ कुण्डलेँहिँ फुरन्तेँहिँ॥
कहि मि सरस-तम्बोलारत्तउ । कहि मि वउल-कायम्वरि-मत्तउ ॥४॥
कहि मि फलिह कप्पूरेँहिँ वासिउ । कहि मि सुरहि मिगमय-वामीसिउ ॥
कहि मि विविह-मणि-रयणुज्जलियउ । कहि मि धोअ-कज्जल-सवलियउ॥६
कहि मि वहल-कुङ्कुम-पिञ्जरियउ । कहि मि मलय-चन्दण-रस-भरियउ ॥७
कहि मि जक्खकद्दमेँण करम्विउ । कहि मि भमर-रिञ्छोलिहि चुम्विउ॥८

घत्ता

विद्दुम-मरगय- इन्दणील- सय- चामियर-हार-सघाएँहिँ ।
वहु-वण्णुज्जलु णावइ णहयलु सुरधणु-घण-विज्जु-वलायहिँ ॥९॥

[७]

का वि करन्ति केलि सहुँ राएँ । पहणइ कोमल-कुवलय-घाएँ ॥१॥
का वि मुद्ध दिट्ठएँ सुविसालएँ । का वि णवल्लएँ मल्लिय-मालएँ ॥२॥
का वि सुयन्धेहि पाडलि-हुल्लेँहिँ । का वि सु-पूयफलेँहि वउलेँहिँ ॥३॥
का वि जुण्ण-वण्णेँहिँ पट्टणिएँहिँ । का वि रयण-मणि-अवलम्वणिएँहिँ ॥४
का वि विलेवणेहिँ उव्वरियहिँ । का वि सुरहि-दवणा-मञ्जरियहिँ ॥५॥
कहँ वि गुज्झु जलेँ अद्धुम्मिल्लउ । ण मयरहर-सिहरु सोहिल्लउ ॥६॥

घत्ता—लीलापूर्वक तैरते और निकलते हुए मुखकमलोंके लिए कितने ही (भौरे ?) दौड़े। राजाको यह भ्रान्ति हो गयी कि इनके समान रक्तकमल क्या होंगे ? ॥९॥

[६] एक दूसरेके ऊपर जलक्रीड़ा करते हुए, सघन जलधारा छोड़ते हुए, कही चन्द्रमा और कुन्द पुष्पके समान उज्ज्वल और स्वच्छ, टूटते हुए हारोंसे जल सफेद हो गया, कहीं ध्वनि करते हुए नूपुरोंसे ध्वनित हो उठा, कहीं स्फुरित कुण्डलोंसे जल चमक उठा, कहीं सरस पानसे लाल हो उठा, कहीं वकुल कादम्बरी (मदिरा) से मत्त हो गया, कहीं स्फटिक कपूरसे सुवासित हो उठा, कहीं-कही सुगन्धित कस्तूरीसे मिश्रित था, कहीं-कही विविध मणिरत्नोंसे आलोकित था, कहीं धोये हुए काजलसे मटमैला था, कही अत्यधिक केशरके कारण पीला था, कहीं मलय चन्दनके रससे भरा हुआ था, कहीं यक्ष कर्दमसे मिश्रित था, कही भ्रमरपंक्तियोंसे चुम्बित था ॥१-८॥

घत्ता—विद्रुम, मरकत, इन्द्रनील और सैकड़ो स्वर्णहारोंके समूहसे रंगबिरंगा नर्मदाका जल ऐसा जान पड़ता था मानो इन्द्रधनुष, घनविद्युत् और बलाकाओंसे युक्त आकाश-तल हो ॥९॥

[७] कोई एक राजाके साथ क्रीडा करती हुई कोमल इन्द्र-नील कमलसे उसपर प्रहार करती है। कोई मुग्धा अपनी विशाल दृष्टिसे, कोई नयी मालतीमालासे, कोई सुगन्धित पाटल पुष्पसे, कोई सुन्दर पूगफलो और वकुल कुसुमोंसे, कोई जीर्णवर्ण पट्टनियोंसे, कोई रत्न और मणियोंकी मालासे, कोई बचे हुए विलेपनसे, कोई सुरभित दवणमंजरी लतासे। कोई किसी प्रकार जलके भीतर छिपी हुई आधी ऊपर निकली हुई ऐसी दिखाई देती है, मानो कामदेवका चूड़ामणि शोभित

कहेँ वि कसण रोमावलि दिट्ठी । काम-वेणि ण गलेँवि पइट्ठी ॥७॥
कहेँ वि थणोवरि ललइ अहोरणु । णाइँ अणङ्गहोँ केरउ तोरणु ॥८॥

घत्ता

कहेँ वि स-रुहिरइँ दिट्ठइँ णहरइँ थण-सिहरोवरि सु-पहुँत्तइँ ।
वेगेण वलग्गहोँ मयण-तुरङ्गहोँ ण पायइँ छुडु छुडु खुत्तइँ ॥९॥

[८]

तं जल-कील णिएवि पहाणहुँ । जाय वोल्ल णहयलेँ गिव्वाणहुँ ॥१॥
पभणइ एक्कु हरिस-सपण्णउ । 'तिहुअणेँ सहसकिरणु पर धण्णउ ॥२॥
जुवइ-सहासु जासु स-वियारउ । विब्भम-हाव-भाव-वावारउ ॥३॥
णलिणि-वणु व दिणयर-कर-इच्छउ । कुमुय-वणु व ससहर तण्णिच्छउ (?)
कालु जाइ जसु मयण-विलासेँ । माणिणि-पत्तिज्जवणायासेँ ॥५॥
अच्छउ सुरउ जेण जगु मत्तउ । जल-कीलएँ जि किण्ण पज्जत्तउ' ॥६॥
त णिसुणेँवि अवरेक्कु पवोल्लिउ । 'सहसकिरणु केवल सलिलोल्लिउ ॥७॥
इत्थु पवाहु मणोहर-वन्तउ । जो जुवइहिँ गुज्झन्तु वि पत्तउ ॥८॥

घत्ता

जेण खणन्तरेँ सलिलब्भन्तरेँ गलियसु-धरण-वावारएँ ।
सरहसु ढुक्कउ माणेँ वि मुक्कउ अन्तेउरु एक्कएँ वारएँ ॥९॥

[९]

रावणो वि जल-कील करेप्पिणु । सुन्दर सियय-वेइ विरएप्पिणु ॥१॥
उप्परि जिणवर-पडिम चडाववि । विविह-विताण-णिवहु वन्धावेँ वि ॥२
तुप्प-खीर-सिसिरेँहिँ अहिसिञ्चेँवि । णाणाविह-मणि-रयणेहिँ अञ्चेँवि॥३॥
णाणाविहहिँ विलेवण-भेएँहिँ । दीव-धूव-वलि-पुप्फ-णिवेएँहिँ ॥४॥

हो ? किसीकी काली रोमावली दिखाई दी मानो कामवेणी ही गलकर वहाँ प्रवेश कर गयी, किसीके स्तनपर ऊपरका वस्त्र ऐसा शोभित था मानो कामदेवका तोरण हो ॥१-८॥

घत्ता—किसीके स्तनके ऊपर रक्तरंजित प्रचुर नखक्षत ऐसे मालूम होते थे मानो तेजीसे भागते हुए कामदेवके अश्वोके पैर गड़ गये हो। ॥९॥

[८] उस जलक्रीड़ाको देखकर प्रमुख देवताओमें बातचीत होने लगी। एक हर्षित होकर कहता है, "त्रिभुवनमे सहस्रकिरण ही धन्य है, जिसके पास विभ्रम हावभावकी चेष्टाओसे युक्त और विलासपूर्ण हजारों स्त्रियाँ है, जो नलिनीवनके समान दिनकर (सूर्य और राजा सहस्रकिरण) की किरणोंकी इच्छा रखती है, कुमुद वन जिस तरह चन्द्रमाको चाहता है, उसी प्रकार वे सहस्रकिरणको चाहती है, जिसका समय कामविलास और मानिनी स्त्रियोको मनानेके प्रयासमें जाता है। जिसके लिए दुनिया मतवाली है, वह सुरति उसे प्राप्त है। जलक्रीड़ासे क्या पर्याप्त नही है।" यह सुनकर एक और ने कहा, "सहस्रकिरण केवल पानीका बुलबुला है, सुन्दर है, यह प्रवाह है, जिससे छिप जानेपर भी वह युवतियोके द्वारा पा लिया जाता है ॥१-८॥

घत्ता—जिसके कारण पानीके भीतर ढीले वस्त्रोंको ठीक करते हुए एक बारमें ही अन्तःपुर मान छोड़कर हर्षपूर्वक पास आ जाता है ॥९॥

[९] रावण भी जलक्रीडा करनेके बाद सुन्दर बालूकी वेदी बनाता है, ऊपर जिनवरकी प्रतिमा स्थापित कर, विविध वितानोका समूह बँधवाकर, घी-दूध और दहीसे अभिषेक कर, नाना प्रकारके मणिरत्नोसे अर्चना कर, नाना प्रकारके विलेपनके भेदो दीप, धूप, नैवेद्य, पुष्प, और निर्माल्यसे पूजा कर जैसे

पुज्ज करेंवि किर गायइ जावेंहिं । जन्तिएहिं जलु मेल्लिउ तावेंहि॥५॥
पर-कलसु सकेयहों ढुक्कउ । णाइँ वियड्ढहिं माणेंवि मुक्कउ ॥६॥
धाइउ उहय-तडइँ पेल्लन्तउ । जिणवर-पवर-पुज्ज रेल्लन्तउ ॥७॥
दहमुहु पडिम लेवि विहडप्फडु । कह वि कह वि णीसरिउ वियावडु॥८

घत्ता

भणइ 'णरेसहों तुरिउ गवेसहों किउ जेण एउ पिसुणत्तणु ।
किं वहु-वुत्तेण तासु णिरुत्तेण दक्खवमि अज्जु जम-सासणु' ॥९॥

[१०]

तो एत्थन्तरें लद्धाएसा । गय मण-गमणाणेय गवेसा ॥१॥
रावणेण सरि दिट्ठ वहन्ती । सुय-महुयर-दुक्खेण व जन्ती(?)॥२॥
चन्दण-रसेंण व वहल-विलित्ती । जल-रिद्धिएँ ण जोव्वणइत्ती ॥३॥
मन्थर-वाहेण व वीसत्थी । जच्च-पट्टवत्थइँ व णियत्थी ॥४॥
वीणाहोरणइँ व पगत्ती । वालाहिय-णिद्दाएँ व सुत्ती ॥५॥
मल्लिअ-दन्तेहिं व विहसन्ती । णीलुप्पल-णयणेंहिं व णिएन्ती ॥६॥
वउल-सुरा-गन्धेण व मत्ती । केयइ हत्थेंहिं व णच्चन्ती ॥७॥
महुअरि-महुर-सरु व गायन्ती । उज्झर-मुरवाइँ व वायन्ती ॥८॥

घत्ता

अरमिय-रामहों णिरु णिक्कामहों आरूसेंवि परम-जिणिन्दहों ।
पुज्ज हरेप्पिणु पाहुडु लेप्पिणु गय णावइ पासु समुद्दहों ॥९॥

[११]

तहिँ अवसरें जे किङ्कर धाइय । ते पडिवत्त लएप्पिणु आइय ॥१॥
कहिय सुणन्तहों खन्धावारहों । 'लइ एत्तडउ सारु ससारहों ॥२॥
माहेसरवइ णर-परमेसरु । सहसकिरणु णामेण णरेसरु ॥३॥
जा जल-कील तेण उप्पाइय । सा अमरेहि मि रमेंवि ण णाइय॥४॥
सुव्वइ कामु को वि किर सुन्दरु । सुरवइ मरहु सयर-चक्केसरु ॥५॥

वह गान प्रारम्भ करता है, वैसे ही यन्त्रोंसे पानी छोड़ दिया जाता है, वह पानी ऐसे पहुँचा जैसे परस्त्री संकेतस्थानपर पहुँच जाती है, या जैसे विदग्ध भोगकर उसे छोड़ देते हैं। वह पानी दोनों किनारोंको ठेलता हुआ जिनवरकी पूजाको वहाता हुआ दौड़ा। रावण हड़वड़ाकर और जिनप्रतिमाको लेकर कठिनाईसे बाहर निकला ॥१-८॥

घत्ता—उसने लोगोंसे कहा, "खोजो उसे जिसने यह दुष्टता की है, बहुत कहने से क्या, आज मैं निश्चित रूपसे उसे यमका शासन दिखाऊँगा" ॥९॥

[१०] इसके अनन्तर आदेश पाते ही मनसे भी अधिक गतिशील अनेक लोग खोज करने गये। रावण नर्मदाको बहते हुए देखा, जैसे वह मृतमधुकरोंके दुःखसे (धीरे-धीरे) जा रही हो, चन्दनके रससे अत्यन्त पंकिल, जलकी ऋद्धिसे यौवनवती, मन्द प्रवाहसे विश्रब्ध, दिव्य वस्त्रोंको धारण करती-सी, वीणा और अहोरण (दुपट्टा) से अपनेको छिपाती-सी, व्यालोंकी नींदसे सोती हुई, मल्लिकाके समान दाँतोंसे हँसती हुई, नील कमलके समान नेत्रोंसे देखती हुई बकुल (?), सुराकी गन्धसे मतवाली केतकीके हाथोंसे नाचती हुई, मधुकरी और मधुकरके स्वरसे गाती हुई, निर्झररूपी मृदंगोंको बजाती हुई ॥१-८॥

घत्ता—स्त्रीका रमण नहीं करनेवाले निष्काम परम जिनेन्द्र-से रूठकर ही (उनकी) पूजाका अपहरण कर, उपहार लेकर मानो वह समुद्रके पास गयी ॥९॥

[११] उस अवसर जो भी अनुचर दौड़े, वे खबर लेकर वापस आ गये। सुनते हुए स्कन्धावारसे उन्होंने कहा, "लो, संसारका सार इतना ही है, माहेश्वरका अधिपति सहस्र-किरण नामका नरेश्वर है। उसने जो जलक्रीड़ा की है, वैसी क्रीड़ा देवताओंको भी प्राप्त नहीं। सुना जाता है कोई सुन्दर

महवा सणक्कुमारु ते सयल वि । णउ पावन्ति तासु एक्क-यल वि ॥६॥
का वि अउव्व लील विम्माणिय । धम्मु अत्थु विण्णि वि परियाणिय॥७॥
काम-तत्तु पुणु तेण जें णिम्मिउ । अण्ण रमन्ति पसव-कोढूसिउ ॥८॥

घत्ता

मइ पहवन्तेँण भुयणेँ तवन्तेँण गयणत्थु पयङ्गु ण णा (सा?)वइ ।
एण पयारेँण पिय-वावारेँण थिउ सलिलेँ पईसवि णावइ' ॥९॥

[१२]

अवरेक्केण वुत्त 'मइँ लक्खिउ । सच्चउ सव्वु एण ज अक्खिउ ॥१॥
जं पुणु तहोँ केरउ अन्तेउरु । ण पच्चक्खु जें मयरद्धय-पुरु ॥२॥
णेउर-मुरयहुँ पेक्खणया-हरु । लायण्णम्भ-तलाउ मणोहरु ॥३॥
सिर-मुह-कर-कम-कमल-महासरु । मेहल-तोरणाहँ छण-वासरु ॥४॥
थण-हत्थिहि साहारण-काणणु । हार-सग्ग-वच्छहोँ गयणङ्गणु ॥५॥
अहर-पवाल-पवालायायरु । दन्त-पन्ति-मोत्तिय-सइणयरु ॥६॥
जीहा-कलयण्ठिहिँ णन्दणवणु । कण्णन्दोलयाहँ वेत्तत्तणु ॥७॥
लोयण-ममरहुँ केसर-सेहरु । भमुहा-भङ्गहुँ णट्टावय-घरु ॥८॥

घत्ता

काइँ वहुत्तेँण (पुण) पुणरुत्तेँण मयणग्गि-डमरु सपण्णउ ।
णरहुँ अणन्तहुँ मण-धण-वन्तहुँ धुउ चोरु चण्डु उप्पण्णउ' ॥९॥

[१३]

अवरेक्केण वुत्तु 'मइँ जन्तइँ । दिट्ठइँ णिम्मलेँ सलिलेँ तरन्तइँ ॥१॥
अइ सुन्दरइँ सुकिय-कम्माइँ व । सुघडियाइँ अहिणव-पेम्माइँ व ॥२॥
णिग्गलाइँ सु-किविण-हिययाइँ व । णिउण-समासिय सुकइ-पयाइँ व ॥३॥
सचारिमइँ कु-पुरिस-धणाइँ व । कारिमाइँ कुट्टणि-वयणाइँ व ॥४॥

कामदेव, इन्द्र, भरत, सगर, मघवा और सनत्कुमार चक्रवर्ती वे सब भी, उनकी एक कलाको नही पा सकते। वह कोई अपूर्व लीलाको मानता है, और धर्म तथा अर्थ दोनोंको जानता है? कामतत्त्वकी रचना तो उसीने की है, दूसरे लोग तो पसाये हुए कोदोंका रमन करते है ॥१-८॥

घत्ता—प्रभावान् मेरे भुवनमें तपते हुए आकाशमे स्थित सूर्य शोभा नही पाता, इस कारणसे प्रिय व्यापारके साथ वह पानीके भीतर प्रवेश करके स्थित है" ॥९॥

[१२] एक औरने कहा, "इसने जो कुछ कहा है, सचमुच वह सब मैने देखा है, पुनः उसका अन्तःपुर मानो साक्षात् कामपुर है, जो नूपुर, मुरज और नृत्यकारोको धारण करता है, सौन्दर्य जलके तालावसे सुन्दर है, शिर मुखकर चरणरूपी कमलोसे युक्त सरोवर है, मेखलाओ और तोरणोंसे उत्सवका दिन है, स्तनरूपी हाथियोसे साहारण-कानन है, हार-रूपी स्वर्गवृक्षोसे गगनांगन है, अधररूपी प्रवालोंके मूँगोंका आकर है, दाँतोकी पंक्तिरूपी मोतियोंका रत्नाकर है, जिह्वारूपी कोयलोके लिए नन्दन वन है, कानोंके आन्दोलनसे लचीलापन है, लोचनरूपी भ्रमरोंसे केशरशेखर है और भौहोकी भंगिमासे नृत्यकर है ॥१-८॥

घत्ता—बहुत या बार-बार कहनेसे क्या ? मदनाग्नि भयंकरता से सम्पूर्ण वह मनरूपी वित्तवाले अनन्त लोगोके लिए धूर्त प्रचण्ड चोर ही उत्पन्न हो गया है" ॥९॥

[१३] एक औरने कहा, "मैने निर्मल प्रानीमे तिरते हुए यन्त्र देखे है, जो पुण्य कर्मोंकी तरह अत्यन्त सुन्दर है, अभिनव प्रेमकी तरह सुगठित है, अत्यन्त कृपणके हृदयकी तरह कठोर है, सुकविके पदोकी तरह निपुण समास (सुन्दर समास, दूसरे पक्षमे काठकी कलशियोसे रचित) है, कुपुरुषके

पइरिक्कइँ सज्जण-चित्ताइँ व । वड्ढइँ अत्थइत्त-वित्ताइँ व ॥५॥
दुल्लङ्घणियइँ सुकलत्ताइँ व । चेट्ठ-विहूणइँ वुड्ढन्ताइँ व ॥६॥
वारि वमन्ति ताइँ सिरि-णासेँहिँ । उर-कर-चरण-कण्ण-णयणासेहिँ ॥७॥
तेहिँ एउ जलु थम्मँवि मुक्कउ । तेण पुज्ज रेल्लन्तु पढुक्कउ ॥८॥

घत्ता

त णिसुणेप्पिणु 'लेहु' भणेप्पिणु असिवरु स इँ भु वेण पकड्ढिउ ।
सहइ समुज्जलु ससि-कर-णिम्मलु ण पत्त-दाण-फलु वड्ढिउ ॥९॥

जल-कीलाएँ सयम्भू चउमुहएव च गोग्गह-कहाएँ ।
भद्द (ट्ट) च मच्छवेहे अज्ज वि कइणो ण पावन्ति ॥

[१५. पण्णरहमो संधि]

दाण-मयन्धेँण गय-गन्धेँण जेम मइन्दु वियट्टउ ।
जग-कम्पावणु रणेँ रावणु सहसकिरणेँ अब्भिट्टउ ॥१॥

[१]

आएसु दिण्णु णिय-किङ्करहुँ । वज्जोयर-मयर-महोयरहुँ ॥१॥
मारिच्च-मयहुँ सुय-सारणहुँ । इन्दइकुमार-घणवाहणहुँ ॥२॥
हय-हत्थ-पहत्थ-विहीसणहुँ । विहि-कुम्भयण्ण-खर-दूसणहुँ ॥३॥
ससिकर-सुग्गीव-णील-णलहुँ । अवरहु मि अणिट्ठिय-भुयवलहुँ ॥४॥
उद्धाइय मच्छर-भरिय-कर । भीसावण-पहरण-णियर-धर ॥५॥
सहसयरु वि जुवइहिँ परियरिउ । छुडु जे छुडु सलिलहोँ णीसरिउ ॥६॥

धनकी तरह गतिशील है, कुट्टनीके वचनोंकी तरह कृत्रिम (या काले) है, सज्जनोके चित्तकी तरह भरे हुए है, भिखारीके धनकी तरह अच्छी तरह बँधे हुए है, सुकलत्रोंकी तरह दुर्लंघ्य हैं, डूबते हुओंके समान चेष्टाविहीन है, पानी छोडते हुए उर-कर-चरण-कर्ण-नेत्र और मुखवाले, श्रीका नाश करते हुए उन यन्त्रोसे रोककर यह पानी छोड़ा गया है जो पूजाको बहाता हुआ आया" ॥१-८॥

घत्ता—यह सुनकर, 'पकडो', यह कहकर रावणने स्वयं अपने हाथमें तलवार ग्रहण कर ली, जो चन्द्रमाकी किरणकी तरह निर्मल एवं उज्ज्वल ऐसी शोभित है मानो सुपात्रमे दिये गये दानका फल बढ गया हो ॥९॥

जलक्रीडामे कवि स्वयम्भूको, गोग्रहकथामें चतुर्मुख देवको और भद्र कवि मत्स्यवेधमे आज भी कवि नही पा सकते।

पन्द्रहवीं सन्धि

दान से मदान्ध गन्धराज के साथ जिस प्रकार सिंह भिड जाता है, वैसे ही जगको कॅपानेवाला रावण सहस्रकिरणके साथ भिड गया ॥१॥

[१] उसने अपने अनुचरों—वज्रोदर, मयर, महोदर, मारीच, मय सुत, सारण, इन्द्रकुमार, घनवाहन, हस्त, प्रहस्त, विभीषण, दोनो कुम्भकर्ण, खर, दूषण, चन्द्र, सुग्रीव, नल, नील और भी दूसरे निस्सीम बाहुबलवालोंको आदेश दिया। मत्सरसे हाथ मलते हुए भयंकर हथियारोका समूह धारण करनेवाले वे उठे। युवतियोसे घिरा हुआ सहस्रकिरण भी जल्दी-जल्दी पानीसे

ताणन्तरेँ तूरइँ णिसुणियइँ । पणवेप्पिणु निच्चहि पिसुणियइँ ॥७॥
'परमेसर पारक्कउ पडिउ । लइ पहरणु समरु समावडिउ' ॥८॥

घत्ता

त णिसुणेप्पिणु धणु करेँ लेप्पिणु णिसियर-पवर-समूहहोँ ।
थिउ समुहाणणु ण पञ्चाणणु णाइँ महा-गय-जूहहोँ ॥९॥

[२]

ज जुज्झ-सज्जु थिउ लेवि धणु । त डरिउ असेसु वि जुवइयणु ॥१॥
सम्मीसिउ राए वुण्ण-मणु । 'किं अण्णहोँ णाउँ सहसकिरणु ॥२॥
एक्केक्कहोँ एक्केक्कउ जेँ करु । परिरक्खइ जइ तो कवणु डरु ॥३॥
अच्छहोँ भुव-मण्डवेँ वइसरेँवि । जिह करिणिउ गिरि-गुह पइसरेँवि ॥४
जा दलमि कुम्भि-कुम्भत्थलइँ । होसन्ति कुडुम्विहिँ उक्खलइँ ॥५॥
जा खणमि विसाणइँ पवराइँ । होसन्ति पयहोँ पच्चवराइँ ॥६॥
जा कड्ढमि करि-सिर-मोत्तियइँ । होसन्ति तुम्ह हारत्तियइँ ॥७॥
जा फाडमि फरहरन्त-धयइँ । होसन्ति वेणि-वन्धण-सयइँ ॥८॥

घत्ता

एम भणेप्पिणु त धीरेप्पिणु णरवइ रहवरेँ चडियउ ।
जुवइहुँ करुणेँण (?) × × विणु अरुणेँण णाइँ दिवायरु पडियउ॥९॥

[३]

एत्थन्तरेँ आरोडिउ भडेँहिँ ण केसरि मत्त-हत्थि-हडेँहिँ ॥१॥
सो एक्कु अणन्तउ जइ वि वलु । पप्फुल्लु तो वि तहोँ मुह-कमलु॥२॥
ज लइउ अखत्तेँ सहसयरु । त चविउ परोप्परु सुर-पवरु ॥३॥
'अहोँ अहोँ अणीइ रक्खेहिँ किय । एक्कु एँ वहु अण्णु यि गयणेँ थिय॥४

निकला। उसके अनन्तर नगाड़े सुनाई देने लगे। अनुचरों ने प्रणाम कर सूचित किया, "देव-देव, शत्रु आ धमका है, युद्ध आ पड़ा है। हथियार लीजिए" ॥१-८॥

घत्ता—यह सुनकर, हाथमें धनुष लेकर वह निशाचरोंके प्रबल समूहके सम्मुख उसी प्रकार स्थित हो गया, जिस प्रकार सिंह महागज-यूथके सम्मुख बैठ जाता है ॥९॥

[२] जब वह धनुष लेकर युद्धके लिए तैयार हुआ तो अशेष युवती जन डर गयी। खिन्न मन उसको राजाने अभय वचन देते हुए कहा, "क्या सहस्रकिरण किसी दूसरेका नाम है? जब मेरा एक-एक हाथ एक-एककी रक्षा करता है तो तुम्हें किस बातका डर है? तुम भूमण्डपमें प्रवेश कर बैठी रहो, जिस प्रकार हथिनियाँ गिरिगुहामें घुसकर बैठ जाती है। मैं जो हाथियोंके कुम्भस्थल तोडूँगा वे परिवारके लोगोंके लिए ऊखल हो जायेंगे, जो मैं प्रवर दाँत उखाड़ूँगा, वे प्रजाके लिए मूसल हो जायेंगे। जो मैं हाथियोके सिरसे मोती निकालूँगा, वे तुम्हारे लिए हार हो जायेंगे। जो मैं फहराती हुई ध्वजाएँ फाडूँगा, वे तुम्हारी चोटी बाँधनेके लिए सैकड़ो फीतेका काम देंगे" ॥१-८॥

घत्ता—इस प्रकार कहकर, उन्हें धीरज बँधाते हुए वह राजा रथवरपर चढ गया, मानो युवतियोंके करुणाके कारण, मानो बिना अरुणिमाके सूर्य प्रकट हुआ हो ॥९॥

[३] इसके अनन्तर योद्धाओने आक्रमण किया, मानो मत्त गजघटाने सिंहपर हमला बोला हो। वह अकेला है और शत्रुसेना अनेक है, फिर भी उसका मुखकमल खिला हुआ है। जब इस प्रकार अक्षात्रभावके विरुद्ध सहस्रकिरणपर हमला किया गया तो देवताओमें बातचीत होने लगी, "अरे-अरे, राक्षसोंने बहुत बड़ी अनीति की है। यह अकेला, वे बहुत, उसपर

पहरणइँ पवण-गिरि-वारि-हवि । आएहिँ सरिस जणेँ मीरु ण वि' ॥५॥
तं णिसुणेँवि णिसियर लज्जियइँ । थिय महियलेँ विज्ज-विवज्जियइँ ॥६॥
तो सहसकिरणु सहसहिँ करेँहिँ । ण विद्धइ सहस-सहस-सरेँहिँ ॥७॥
दूरहोँ जि णिरुद्धउ वइरि-वलु । ण जम्बूदीवेँ उवहि-जलु ॥८॥

घत्ता

अमुणिय-थाणहोँ किय-सधाणहोँ दिट्ठि-मुट्ठि-सर-पयरहोँ ।
पासु ण ढुक्कइ ते उल्लुक्कइ तिमिरु जेम दिवसयरहोँ ॥९॥

[४]

अट्ठावय-गिरि-कम्पावणहोँ । पडिहारेँ अक्खिउ रावणहोँ ॥१॥
'परमेसर एक्कें होन्तएँण । वलु सयलु धरिउ पहरन्तएँण ॥२॥
रणेँ रहवरु एक्कु जेँ परिभमइ । सन्दण-सहासु ण परिभमइ ॥३॥
धणु एक्कु एक्कु णरु दुइ जेँ कर । चउदिसहिँ णवर णिवडन्ति सर ॥४॥
करु कहोँ वि कहोँ वि उरु कप्परिउ । करि कहोँ वि कहोँ वि रहु जज्जरिउ'॥५॥
तं णिसुणेँवि उवहि जेम खुहिउ । लहु तिजगविहूसणेँ आरुहिउ ॥६॥
गउ तेत्तहेँ जेत्तहेँ सहसकरु । कोक्किउ 'मरु पाव पहरु पहरु ॥७॥
हउँ रावणु दुज्जउ केण जिउ । जे पाराउट्ठउ धणउ किउ' ॥८॥

घत्ता

एम भणन्तेँण विद्धन्तेँण स-रहि महारहु छिण्णउ ।
पणइ-सहासेँहि चउ-पासेँहि जसु चउदिसु विक्खिण्णउ ॥९॥

[५]

माहेसरपुर-वइ विरहु किउ । णिविसद्धेँ मत्त-गइन्दें थिउ ॥१॥
ण अजण-महिहरेँ सरय-घणु । उत्थरिउ स-मच्छरु गीढ-वणु ॥२॥

भी आकाशमें स्थित हैं। उनके अस्त्र है पवन, गिरि, वारि और अग्नि। लोगोमें इनके समान डरपोक दूसरा नही है।" यह सुनकर निशाचर लज्जित हुए और आकाशतलमे विद्याओसे रहित हो गये। सहस्रकिरण अपने हजारों हाथोसे हजार-हजार तीरोंसे शत्रुको वेधने लगा। उसने दूर ही शत्रुबलको उस प्रकार रोक लिया, जिस प्रकार जम्बूद्वीप समुद्रजलको रोके हुए है ॥१-८॥

घत्ता—स्थानको नही देखते हुए, दृष्टि, मुट्ठी और सरसमूह-का सन्धान करनेवाले उसके पास शत्रुबल नही पहुँच सका, वह वैसे ही छिप गया जैसे सूर्यके सामने अन्धकार ॥९॥

[४] तब प्रतिहारने अष्टापदको कँपानेवाले रावणसे कहा, "अकेले होते हुए भी उसने प्रहारके द्वारा समूची सेनाको अव-रुद्ध कर दिया है, युद्धमे वह एक रथवर घुमाता है, पर लगता है जैसे हजार रथ घूम रहे है। एक धनुष, एक मनुष्य और दो हाथ, परन्तु चारों दिशाओमे तीरोकी वर्षा हो रही है। किसीका कर, तो किसीका उर कट गया है। किसीका हाथी तो किसीका रथ जर्जर हो गया है।" यह सुनते ही रावण समुद्र-की तरह क्षुब्ध हो गया और शीघ्र ही त्रिजगभूषण गजवर-पर चढ गया। वह वहाँ गया, जहाँ सहस्रकिरण था। उसने ललकारा, "हे पाप! मर, प्रहार कर, मै रावण हूँ, किसने मुझे जीता, मैने धनदको भी यहाँसे वहाँ तक देख लिया है" ॥१-८॥

घत्ता—ऐसा कहते हुए और प्रहार करते हुए उसने सारथी सहित महारथको छिन्न-भिन्न कर दिया। चारों ओर खड़े हुए हजारों बन्दीजनोने उसके यशको चारो दिशाओमे फैला दिया ॥९॥

[५] जब माहेश्वरपुरका राजा रथविहीन कर दिया गया, तो वह एक पल में मदोन्मत्त गजेन्द्रपर सवार हो गया, मानो

सण्णाहु खुरुप्पें कप्परिउ । लङ्काहिउ कह व समुव्वरिउ ॥३॥
जं सव्वायामें मुअइ सर । लुअ-पक्ख पक्खि णं जन्ति घर ॥४॥
दससयकिरणेण णिरिक्खियउ । पच्चारिउ 'कहिँ धणु सिक्खियउ॥५॥
जज्जाहि ताम अब्भासु करें । पच्छलें जुज्झेज्जहि पुणु समरें' ॥६॥
त णिसुणेंवि जमेंण व जोइयउ । कुञ्जरु कुञ्जरहों पचोइयउ ॥७॥
आसण्णें चोऍवि विगय-भउ । णरवइ णिडालें कोन्तेण हउ ॥८॥

घत्ता

जाम भयङ्करु असिवर-करु पहरइ मच्छर-भरियउ ।
ताम दसासेंण आयासेंण उप्पएवि पहु धरियउ ॥९॥

[६]

णिउ णिय-णिलयहों मय-वियलियउ । ण मत्त-महागउ णियलियउ ॥१॥
'मा मइ मि धरेसइ दहवयणु' । ण भइयऍ रवि गउ अत्थवणु ॥२॥
पसरिउ अन्धारु पमोक्कलउ । णं णिसिऍ घित्त मसि-पोट्टलउ ॥३॥
ससि उग्गउ सुट्ठु सुसोहियउ । ण जग-हरें दीवउ वोहियउ ॥४॥
सुविहाणें दिवायरु उग्गमिउ । ण रयणिहिं मइयवट्टु ममिउ ॥५॥
तो णवर जङ्घचारण-रिसिहें । सयकरहों विणासिय-भव-णिसिहें ॥६॥
गय वत्त 'सहासकिरणु धरिउ' । चउविह-रिसि-सङ्घे परियरिउ ॥७॥

घत्ता

रावणु जेत्तहें गउ (सो) तेत्तहें पञ्च-महावय-धारउ ।
दिट्ठु दसासेंण सेयसेंण णावइ रिसहु भडारउ ॥८॥

अंजनगिरिपर शरद मेघ हों। धनुष लिये हुए और मत्सरसे भरकर वह उछला और खुरपेसे कवच काट दिया, लंकाधिप किसी प्रकार बच गया। जब वह पूरे आयामसे तीर छोड़ता तो ऐसा लगता, जैसे बिना पंखो के पंखी धरतीपर जा रहे हों। सहस्रकिरण ने निरीक्षण किया और ललकारा, "कहाँ धनुष सीखा है? जाओ-जाओ, पहले अभ्यास कर लो, बादमें फिर युद्धमे लडना।" यह सुनकर यमकी तरह उसकी ओर देखते हुए रावणने हाथीको हाथीकी ओर प्रेरित किया। विगत-मद उसने हाथीको निकट ले जाकर सहस्रकिरणको मस्तकपर भालेसे आहत कर दिया ॥१-८॥

घत्ता—जबतक भयंकर और मत्सर भरा हुआ वह असिवर हाथमे लेकर प्रहार करता तबतक दशाननने आयास करके उसे पकड लिया ॥९॥

[६] मदविगलित उसे रावण अपने घर ले गया, मानो शृंखलाओंसे जकड़ा हुआ महामत्त गज हो। इतनेमें, कहीं दशानन मुझे भी न पकड ले मानो इस डरसे सूरज डूब गया। अन्धकार मुक्तभावसे फैलने लगा मानो निशाने स्याहीकी पोटली खोल दी हो। अत्यन्त सुशोभित चन्द्रमा उग आया मानो जगरूपी घरमें दीपक जल उठा हो। सुप्रभातमे सूर्यका उदय हो गया, मानो निशाका मइयवट्ट (मैला मार्ग?) चला गया। इतनेमे भवनिशाका नाश करनेवाले जंघाचरण महामुनिके पास सहस्रकिरणका यह समाचार गया कि वह पकड़ लिया गया है। तब चार प्रकारके ऋषि संघोसे घिरे हुए ॥१-७॥

घत्ता—पाँच महाव्रतोको धारण करनेवाले जघाचरण महा-मुनि वहाँ गये जहाँ रावण था। दशानन ने उनके उसी प्रकार दर्शन किये जिस प्रकार श्रेयासने आदरणीय ऋषभजिनके किये थे ॥८॥

[७]

गुरु वन्दिय दिण्णइँ आसणइँ । मणि-वेयडियइँ सुह-दसणइँ ॥१॥
मुणि-पुगउ चवइ विसुद्धमइ । 'मुऍ सहसकिरणु लङ्काहिवइ ॥२॥
ऍहु चरिमदेहु सामण्णु ण वि । महु तणउ भव्व-राईव-रवि' ॥३॥
तं णिसुणेँ वि जम-कम्पावणेँण । पणवेप्पिणु वुच्चइ रावणेँण ॥४॥
'महु एण समाणु कोउ कवणु । पर पुज्जहेँ कारणेँ जाउ रणु ॥५॥
अज्जु वि एहु जेँ पहु सा जि सिय । अणुहुजउ मेइणि जेम तिय' ॥६॥
त णिसुणेँवि सहसकिरणु चवइ । 'उत्तमहोँ एउ कि सम्भवइ ॥७॥
त मणहर सलिल-कील करेँवि । पइँ समउ महाहवेँ उत्थरेँ वि ॥८॥

घत्ता

एवहिँ आयऍ विच्छायऍ राय-सियऍ किं किज्जइ ।
वरि थिर-कुलहर अजरामर सिद्धि-वहुव परिणिज्जइ' ॥९॥

[८]

ते वयणे मुक्कु विसुद्ध-मइ । माहेसर-पवर-पुराहिवइ ॥१॥
णिय-णन्दणु णियय-थाणेँ थवेँवि । परियणु पट्टणु पय सथवेँ वि ॥२॥
णिक्खन्तु खणद्धेँ विगय-भउ । रावणु वि पयाणउ देवि गउ ॥३॥
परिपेसिउ लेहु पहाणाहोँ । अणरण्णहोँ उज्झहेँ राणाहोँ ॥४॥
मुह-वत्त कहिय 'दहमुहेँण जिउ । लइ सहसकिरणु तव-चरणेँ थिउ' ॥५॥
त णिसुणेँवि णरवइ हरिसउ । ईसीसि विसाउ पदरिसियउ ॥६॥
सगाम-सहासहिँ दूसहहोँ सिय सयल समप्पेँवि दसरहहोँ ॥७॥
सहसत्ति सो वि णिक्खन्तु पहु । अण्णु वि तहोँ तणउ अणन्तरहु ॥८॥

घत्ता

ताम सुकेसेँण लङ्केसेँण जमहर-अणुहरमाणउ ।
जागु पणासेँवि रिउ तासेँ वि मगहहेँ मुक्कु पयाणउ ॥९॥

[७] गुरुकी वन्दना करके मणिनिर्मित और शुभदर्शन आसन उन्हे दिये गये। विशुद्धमति मुनिश्रेष्ठ बोले, "लंकाधिपति, तुम सहस्रकिरणको छोड दो, यह सामान्य व्यक्ति नही, चरमशरीरी है, मेरा पुत्र और भव्यरूपी कमलोंके लिए सूर्य।" यह सुनकर यमको कँपानेवाले दशाननने प्रणाम करते हुए कहा, "मेरा इनके साथ किस बातका क्रोध? केवल पूजाको लेकर हम दोनोमें युद्ध हुआ, यह आज भी प्रभु है और वही इनकी लक्ष्मी है, यह स्त्रीकी तरह धरतीका भोग करे।" यह सुनकर सहस्रकिरण कहता है, "श्रेष्ठ व्यक्तिसे क्या यह सम्भव है? वह सुन्दर जलक्रीडा कर और तुम्हारे साथ युद्धमें लडकर ॥१-८॥

घत्ता—अब इस फीकी राज्यश्रीका क्या करना? अच्छा है कि श्रेष्ठ स्थिरकुलवाली अजर-अमर सिद्धिरूपी वधूका पाणिग्रहण किया जाय ॥९॥

[८] इन शब्दोंके साथ मुक्त विशुद्धमति माहेश्वर अधिपति सहस्रकिरण अपने पुत्रको अपने स्थानपर स्थापित कर, परिजन, पट्टण और प्रजाको समझाकर निडर वह एक क्षणमे दीक्षित हो गया। रावण भी प्रयाण कर चला गया। तब अयोध्याके प्रधान राजा अणरण्यको लेखपत्र भेजा गया, उसमे मुख्य बात यह कही गयी थी कि दशमुखसे जीवित बचा सहस्रकिरण तपश्चरणमे स्थित हो गया। यह सुनकर राजा प्रसन्न हुआ और थोडा-सा विषाद भी उसने प्रदर्शित किया। हजारों युद्धोमे दुःसह दशरथको समस्त श्री समर्पित कर, राजा अणरण्यने भी दीक्षा ग्रहण कर ली और उसके दूसरे पुत्र अनन्तरथने ॥१-८॥

घत्ता—तब सुकेश और लकेशने यमगृहके समान यज्ञको नष्ट करने और शत्रुको सन्त्रस्त करनेके लिए मगधके लिए कूच किया ॥९॥

[९]

णारउ धीरँ वि मरु वसिकरेँवि । तहोँ तणिय तणय करयलेँ धरेँवि ॥१॥
णव णव संवच्छर तेत्थु थिउ । पुणु दिण्णु पयाणउ मगहु गउ ॥२॥
पेक्खेँवि रावणु आसङ्कियउ । महु महुरपुराहिउ वसिकियउ ॥३॥
जसु चमरें अमरें दिण्णु वरु । सूलाउहु सयलाउह-पवरु ॥४॥
णिय तणय तासु लाएवि करेँ । थिउ णवर गम्पि कइलास-धरेँ ॥५॥
मन्दाइणि दिट्ठ मणोहरिय । ससिकन्त-णीर-णिज्झर-भरिय ॥६॥
गय-मय णईं मइलिय-उभय-तड । स-तुरङ्गम-कुञ्जर ण्हाय भड ॥७॥
वन्देप्पिणु जिणवर-भवणाइँ । दहमुहु दक्खवइ णिव्वाणाइँ ॥८॥
'इह, सिद्धु सिद्धि-मुहकमल-अलि । जिणवरु भरहेसरु वाहुवलि ॥९॥

घत्ता

एत्थु सिलासणेँ अत्तावणेँ अच्छिउ वालि-भडारउ ।
जसु पय-भारेँ गरुयारेँण हउँ किउ कुम्मायारउ' ॥१०॥

[१०]

जम-धणय-सहासकिरण-दमणु । ज थिउ अट्ठावएँ दहवयणु ॥१॥
त पत्त वत्त णलकुव्वरहोँ । दुलङ्घ-णयर-परमेसरहोँ ॥२॥
परिचिन्तिउ 'हय-गय-रह-पवलेँ । आसण्णेँ परिट्ठिएँ वइरि-वलेँ ॥३॥
एत्थु वि अमराहिवेँ रणेँ अजएँ । जिण-वन्दणहत्तिएँ मेरु गएँ ॥४॥
एहएँ अवसरेँ उवाउ कवणु' । तो मन्ति पवोल्लिउ हरिदवणु ॥५॥
'वलवन्तइँ जन्तइँ उट्ठवहोँ । चउद्दिसु आसाल-विज्ज ठवहोँ ॥६॥
जं होइ अछेउ अभेउ पुरु । ता रक्खहुँ पावइ जा ण सुरु' ॥७॥
त णिसुणेँवि तेहि मि तेम किउ । सइ-चित्तु व णयरु दुलङ्घु थिउ ॥८॥

[९] नारदको धीरज देकर मरुको वशमें कर उसकी कन्यासे पाणिग्रहण कर लिया। नौ वर्ष वहाँ रहकर फिर कूच कर वह मगधके लिए गया। रावणको देखकर मथुराका राजा मधु आशंकित हो उठा, रावणने उसे वशमे कर लिया, उसे चमरेन्द्र देवने समस्त आयुधोमे श्रेष्ठ सूलायुध वरमे दिया था। उसकी कन्या भी अपने हाथमे लेकर, वह जाकर कैलास पर्वतकी धरतीपर ठहर गया। उसे सुन्दर मन्दाकिनी नदी दिखाई दी, जो चन्द्रकान्त मणियोंके नीर निर्झरोंसे भरी हुई थी, गजमदसे नदीके दोनो तट मैले थे। योद्धाओंने अश्वों और गजोंके साथ स्नान किया। जिनवरके भवनोंकी वन्दना करनेके पश्चात् दसमुख निर्वाण स्थानोको दिखाने लगा, "यह सिद्धिरूपी वधूके मुखकमलका भ्रमर, भरतेश्वर और बाहुबलि हैं ॥१-९॥

घत्ता—इस आतापिनी शिलापर आदरणीय बाली स्थित थे जिनके भारी पदभारसे मैं कछुएके आकारका बना दिया गया था ॥१०॥

[१०] यम, धनद और सहस्रकिरणका दमन करनेवाला दशमुख जब अष्टापद पर्वत पर था, तभी यह बात दुर्लंघ्य नगरके राजा नलकूवरके पास पहुँची।" वह सोचने लगा, "अश्व, गज और रथोंमे प्रबल शत्रुसेनाके निकट है, दूसरे इन्द्रके युद्धमे अजेय रावण इस समय जिनकी वन्दना-भक्ति करनेके लिए मेरु पर्वतपर गया हुआ है. इस अवसर पर क्या उपाय किया जाये।" तब हरिदमन नामक मन्त्री बोला, "बलवान् बन्ध बना दो, चारों दिशाओंमें आशालीविद्या स्थापित कर दो जिससे नगर अलंघ्य और अभेद्य हो जाये, तभी इसकी रक्षा कर सकते हैं कि उसे भेद न मिले।" यह सुनकर उन्होंने भी ऐसा ही किया और सभीने चित्रकी तरह नगरको दुर्लंघ्य बना दिया ॥१-८॥

घत्ता

ताव विरुद्धेँहिँ जस-लुद्धेँहि रावण-मिच्च-महासेँहि ।
वेढ्ढिउ पुरवरु सवच्छरु णावइ वारह-मासेँहि ॥९॥

[११]

जन्तहँ भइयएँ विहडप्फडेँहिँ । दहमुहहोँ कहिउ केहि मि भडेँहिँ ॥१
'दुग्गेज्झु भडारा त णयरु । दूसिद्धहुँ जिह तिहुअण-सिहरु ॥२॥
तहिँ जन्त-सयइँ समुड्डियइँ । जम-करइँ जमेण व छड्डियइँ ॥३॥
जोयणहोँ मज्झेँ जो सचरइ । सो पडिजीवन्तु ण णीसरइ' ॥४॥
त णिसुणेँवि चिन्तावण्णु पहु । थिउ ताम जाम उवरम्भ वहु ॥५॥
अणुरत्त परोक्खए जेँ जसेँण । जिह महुअरि कुसुम-गन्ध-वसेँण ॥६॥
ण गणइ कप्पूरु ण चन्दमसु । ण जलद्दु ण चन्दणु तामरसु ॥७॥
तहेँ दसमी कामावत्थ हुय । विसग्गि-दड्ढ णउ कह मि मुय ॥८॥

घत्ता

'इमु महु जोव्वणु एँहु (सो) रावणु एह रिद्धि परिवारहोँ ।
जइ मेलावहि तो हलेँ सहि एत्तिउ फलु ससारहोँ' ॥९॥

[१२]

त णिसुणेँवि चित्तमाल चवइ । 'मइँ होन्तिए काइँ ण सभवइ ॥१॥
आएसु देहि छुडु एत्तडउ । एँउ सुन्दरि कारणु केत्तडउ ॥२॥
तुह रूवहोँ रावणु होइ जइ । लइ वट्टइ तो एत्तडिय गइ' ॥३॥
त णिसुणेँवि मणहर-अहरयलु । उवरम्भहेँ विहसिउ मुह-कमलु ॥४॥
'हलेँ हलेँ सहि ससिमुहि हस-गइ । सो सुहउ ण इच्छइ कह वि जइ ॥५॥
आसाल-विज्ज तो देहि तहोँ । अण्णु वि वज्जरहि दसाणणहोँ ॥६॥

घत्ता—तबतक विरुद्ध यशके लोभी रावणके हजारों अनुचरोंने पुरवरको उसी प्रकार घेर लिया जिस प्रकार वर्ष को बारह माह घेरे रहते है ॥९॥

[११] यन्त्रोंके भयसे घबड़ाये हुए कितनों ही भटोने दशमुखसे कहा, "हे आदरणीय, वह नगर दुर्ग्राह्य है ? उसी प्रकार, जिस प्रकार असिद्धोंके लिए मोक्ष। वहाँ सैकडों यन्त्र लगे हुए है, यमके द्वारा छोड़े गये यमकरणोंके समान। एक योजनके भीतर जो भी चलता है तो वह प्रतिजीवित नही लौट सकता।" यह सुनकर रावण जबतक चिन्ताकुल रहता है तबतक नलकूबरकी वधू उपरम्भा, उसका परोक्षमे यश सुनकर उसी प्रकार आसक्त हो उठती है जिस प्रकार मधुकरी कुसुम गन्धसे वशीभूत होकर। न उसे कपूर अच्छा लगता है और न चन्द्रमा। न जलार्द्रता चन्दन और न कमल। वह कामकी दसवी अवस्थामे पहुँच जाती है। वियोगकी विषाग्निसे दग्ध वह किसी प्रकार मरी भर नही ॥१-८॥

घत्ता—यह मेरा यौवन, यह रावण,,यह परिवारका वैभव, हे सखी ! यदि तू मिलाप करवा दे तो संसारका इतना ही फल है।" ॥९॥

[१२] यह सुनकर चित्रमाला कहती है, "मेरे होते हुए क्या सम्भव नहीं है ? इतना आदेश-भर दे, शीघ्र। यह कितनी-सी बात है ? रावण यदि तुम्हारे रूपका होता है (तुममे आसक्त होता है), तो लो ऐसी ही चाल होगी।" यह सुनकर सुन्दर है अधरतल जिसका, उपरम्भाका ऐसा मुखकमल खिल गया। वह बोली, "हे-हे चन्द्रमुखी हंसगति, वह सुभग यदि किसी प्रकार न चाहे, तो उसे आशाली विद्या दे देना और

वुच्चइ रहणु भड-किह-लुहणु । इन्दाउहु अच्छइ सुअरिसणु' ॥७॥
त णिसुणेँ वि दूई णिग्गइय । लङ्कसावासु णवर गइय ॥८॥

घत्ता

कहिउ दसासहोँ सुर-तासहोँ ज उवरम्भएँ वुत्तउ ।
'एत्तिउ दाहेँण तुह विरहेँण सामिणि मरइ णिरुत्तउ ॥९॥

[१३]

उवरम्भ समिच्छहि अज्जु जइ । तो ज चिन्तहि तं सभवइ ॥१॥
आसाली सिज्झइ पुरवरु वि । सुअरिसणु चक्कु णलकुब्बरु वि' ॥२॥
त णिसुणेँवि सुट्ठु वियक्खणहोँ । अवलोइउ वयणु विहीसणहोँ ॥३॥
पइसारिय दूई मज्जणएँ । थिय वे वि सहोयर मन्तणएँ ॥४॥
'अहोँ साहसु पभणइ पहु सुयवि । ज महिल करइ त पुरिसु ण वि ॥५॥
दुम्महिल जि भीसण जम-णयरि । दुम्महिल जि असणि जगन्त-यरि ॥६॥
दुम्महिल जि स-विस भुयङ्ग-फड । दुम्महिल जि वइवस-महिस-झड॥७॥
दुम्महिल जि गरुय वाहि णरहोँ । दुम्महिल जि वग्घि मज्झेँ घरहोँ ॥८॥

घत्ता

भणइ विहीसणु सुह-दसणु 'एत्थु एउ ण घट्टइ ।
सामि णिसण्णहोँ णउ अण्णहोँ भेयहोँ अवसरु वट्टइ ॥९॥

[१४]

जइ कारणु वइरिँ सिद्धएँण । णयरे धण-कणय-समिद्धएँण ॥१॥
तो कवडेण वि "इच्छामि" भणु । पुण्णालि असच्चि दोसु कवणु ॥२॥
छुडु केम वि विज्ज समावडउ । उवरम्भ तुज्झु पुणु मा वडउ' ॥३॥
तं णिसुणेँवि गउ दहगीउ तहिँ । मज्जणयहोँ णिग्गय दूइ जहिँ ॥४॥
देवङ्गइँ वत्थइँ ढोइयइँ । आहरणइँ रयणुज्जोइयइँ ॥५॥
केऊर-हार-कडि सुत्ताइँ । णेउरइँ कडय-संजुत्ताइँ ॥६॥

रावणसे यह भी कहना कि योद्धाओंकी लीख पोछ देनेवाला जो सुदर्शन चक्र इन्द्रायुध कहा जाता है, वह भी है।" यह सुनकर दूती गयी। वह केवल रावणके डेरेपर पहुँची ॥१-८॥

घत्ता—उपरम्भाने जो कुछ कहा था, वह उसने देवोंको सन्त्रास देनेवाले दशाननसे कह दिया। इतना और कि "तुम्हारे वियोगके दाहसे स्वामिनी निश्चित रूपसे मर रही है" ॥९॥

[१३] यदि तुम आज भी चाहने लगते हो, तो जो सोचते हो वह सम्भव हो सकता है। आशाली विद्या सिद्ध होती है, और पुरवर भी, सुदर्शन चक्र और नलकूबर भी।" यह सुनकर उसने अत्यन्त विचक्षण विभीषणका मुख देखा। दूतीको स्नान करनेके लिए भेज दिया गया और दोनों भाई मन्त्रणाके लिए बैठ गये। "अहो साहस, जो स्वामी छोड़नेके लिए कहता है, जो महिला कर सकती है, वह मनुष्य नहीं कर सकता। दुर्महिला ही भीषण यम नगरी है, दुर्महिला ही जगत्का अन्त करनेवाली अशनि है। दुर्महिला ही विषाक्त सर्पफन है। दुर्महिला ही यमके भैंसोंकी चपेट है, दुर्महिला ही मनुष्यकी बहुत बड़ी व्याधि है, दुर्महिला ही घरमें बाघिन है" ॥१-८॥

घत्ता—शुभदर्शन विभीषण कहता है, "यहाँ यह घटित नहीं होता। हे स्वामी, बैठे हुए यहाँ भेदका दूसरा अवसर नहीं है ॥९॥

[१४] यदि कारण, शत्रुको जीतना और धन कंचनसे समृद्ध नगरको प्राप्त करना है, तो कपटसे यह कह दो, 'मैं चाहता हूँ।' असती और वेश्यामें कोई दोष नहीं। शायद किसी प्रकार विद्या मिल जाये, फिर तुम उपरम्भाको मत छूना"। यह सुनकर दशानन वहाँ गया जहाँ दूती स्नान करके निकल रही थी। उसे दिव्य वस्त्र और रत्नोंसे चमकते हुए आभूषण दिये गये। केयूर हार और कटिसूत्र और कटकसे युक्त नूपुर।

अवरइ मि देवि तोसिय-मणेॅण । आसाल-विज्ज मग्गिय रणेॅण ॥७॥
ताएँ वि दिण्ण परितुट्ठियाएँ । णिय हाणि ण जाणिय मुद्धियाएँ॥८॥

घत्ता

ताव विसालिय आसालिय णहेँ गज्जन्ति पराइय ।
तं विज्जाहरु णलकुब्वरु मुएँवि णाइँ सिय आइय ॥९॥

[१५]

गय दूई किउ कलयलु भडेँहिँ । परिवेढिउ पुरवरु गय-घडेँहिँ ॥१॥
सण्णहेँवि समरेँ णिच्छिय-मणहोँ । णलकुब्वरु भिडिउ विहीसणहोँ ॥२॥
वलु वलहोँ महाहवेँ दुज्जयहोँ । रहु रहहोँ गइन्दु महागयहोँ ॥३॥
हउ हयहोँ णराहिवु णरवरहोँ । पहरण-धरु वर-पहरण-धरहोँ ॥४॥
चिन्धिउ चिन्धियहोँ समावडिउ । वइमाणिउ वइमाणिह भिडिउ ॥५॥
तहिँ तुमुलेँ जुज्झेँ भीसावणेॅण । जिह सहसकिरणु रण रावणेॅण ॥६॥
तिह विरहु करेविणु तक्खणेॅण । णलकुब्वरु धरिउ विहीसणेॅण ॥७॥
सहुँ पुरेँण सिद्धु त सुअरिसणु । उवरम्भ ण इच्छइ दहवयणु ॥८॥

घत्ता

सो ज्जेँ पुरेसरु णलकुब्वरु णियय केर लेवाविउ ।
समउ सरम्भएँ उवरम्भएँ रज्जु स इ भुञ्जाविउ ॥९॥

●

[१६. सोलहमो संधि]

णलकुब्वरे धरियएँ विजएँ घुट्ठे वइरिहिँ तणएँ ।
णिय-मन्तिहिँ सहियउ इन्दु परिट्ठिउ मन्तणएँ ॥

[१]

जे गूढपुरिस पट्ठविय तेण । ते आय पडीवा तक्खणेण ॥१॥
परिपुच्छिय 'लइ अक्खहोँ दवत्ति । केहउ पहु केहिय तासु सत्ति ॥२॥
किं वलु केहउ पाइक्क-लोउ । किं वसणु कवणु गुणु को विणोउ ॥३॥

और भी सन्तुष्ट मनसे देकर उसने एक पलमें आशाली विद्या माँग ली। परितुष्ट होकर उसने भी दे दी, वह मूर्खा अपनी हानि नही जान सकी ॥१-८॥

घत्ता—तवतक आशाली विद्या आकाशमें गरजती हुई आ गयी, मानो नलकूवर विद्याधरको छोड़कर उसकी लक्ष्मी ही आ गयी हो ॥९॥

[१५] दूती चली गयी। योद्धाओंने कोलाहल किया। गज-घटाओंसे पुरवरको घेर लिया। नलकूवर भी सन्नद्ध होकर निश्चित मन विभीषणसे भिड गया। महायुद्धमे दुर्जेय बलसे बल, रथसे रथ, महागजसे गज, अश्वसे अश्व, नरवरसे नरवर, प्रहरणधारी प्रहरणधारीसे और चिह्न चिह्नसे भिड़ गये। वैमानिकोसे वैमानिक। उस तुमुल घोर संग्राममें जैसे सहस्र-किरणको भीषण रावणने, उसी प्रकार विभीषणने तत्काल नलकूबरको विरथ कर पकड़ लिया। पुरके साथ सुदर्शन चक्र भी सिद्ध हो गया। परन्तु दशाननने उपरम्भाको नही चाहा ॥१-८॥

घत्ता—पुरेश्वर उसी नलकूबरसे अपनी आज्ञा मनवाकर उपरम्भाके साथ उसको राज्य भोगने दिया ॥९॥

●

सोलहवीं सन्धि

नलकूबरके पकड़े जाने और शत्रुओकी विजय घोषणा होनेपर इन्द्र अपने मन्त्रियोके साथ मन्त्रणाके लिए बैठा।

[१] उसने जो गुप्तचर भेजे थे वे तत्काल वापस आ गये। उसने पूछा, "लो जल्दी बताओ, वह (रावण) कितना चतुर है? उसकी कितनी शक्ति है? कितनी सेना है? प्र जा कितनो है?

पहरद्धु लेह-वायण-खणेण । रगासणहर-हेरि-विसज्जणेण ॥६॥
पहरद्धु सइर-पविहारणेण । अहवइ अब्भन्तर-मन्तणेण ॥७॥
पहरद्धु सयल-बल-दरिसणेण । रह-गय-हय-हेइ-गवेसणेण ॥८॥

घत्ता

पहरद्धु णराहिउ सेणावइ-सभावणॅण ।
जम-थाणॅ परिट्ठिउ परमण्डल-आरूसणॅण ॥९॥

[३]

जिह दिवसु तेम णिव्वाण-राय । णिसि णेइ करेप्पिणु अट्ठ भाय ॥१॥
पहिलएँ पहरद्धेँ विचिन्तमाणु । अच्छइ णिगूढु पुरिसेँहिँ समाणु ॥२॥
वीयएँ पुणो वि ण्हाणासणेण । अहवइ णवरइ-सुह-दसणेण ॥३॥
तइयएँ जय-तूर-महारवेण । अन्तेउरु विसइ मणुच्छवेण ॥४॥
चउत्थएँ पञ्चमेँ सोवण-खणॅण । चउदिसु दिट्ठेण परिरक्खणेण ॥५॥
छट्ठएँ हय-पटह-विउज्झणेण । सव्वत्थसत्थ-परिवुज्झणेण ॥६॥
सत्तमेँ मन्तिहिँ सहुँ मन्तणेण । णिय-रज्ज-कज्ज-परिचिन्तणेण ॥७॥
अट्ठमेँ सासणहर-पेसणेण । सुविहाणेँ वेज्ज-सभासणेण ॥८॥
महणसि-परिपुच्छण-आमणेण । णिम्मित्ति-पुरोहिय-घोसणेण ॥९॥

घत्ता

इय सोलह-भाएँहिँ दिवसु वि रयणि वि णिव्वहइ ।
मणु जुज्झहोँ उप्परि तासु णिरारिउ उच्छहइ ॥१०॥

[४]

तुम्हहुँ घइँ एक्क वि णाहिँ तत्ति । सुविणएँ वि ण हुय उच्छाह-सत्ति ॥१॥
बालत्तणेँ जे णउ णिहउ सत्तु । णाह-मेत्तु जि कियउ कुढार-मेत्तु ॥२॥
जइयहुँ णामउ छुडु छुडु दसासु । जइयहुँ साहिउ विज्जा-सहासु ॥३॥

और उपहार प्रत्युपहार रखनेमें, आधा पहर पत्र बाँचने और आदेश प्राप्त गुप्तचरोंको निपटानेमे, आधा पहर स्वच्छन्द विहार और अन्तरंग मन्त्रणामें, आधा पहर समस्त सेनाके निरीक्षण तथा रथ-गज-अश्व और वज्रके अन्वेपणमे ॥१-८॥

घत्ता—आधा पहर सेनापतिका सम्मान करनेमें व्यतीत करता है। यदि वह शत्रुमण्डलसे नाराज होता है, तो उसे सीधा यमके स्थान भेज देता है" ॥९॥

[३] "हे देवराज, जिस प्रकार दिवस उसी प्रकार वह रातको भी आठ भागोमे विभक्त कर बिताता है। पहले आधे पहरमे गूढ पुरुषोके साथ विचार-विमर्श करता हुआ बैठा रहता है, दूसरेमे स्नान और आसन, अथवा नवरतिके शुभ-दर्शन करता है। तीसरेमे जयतूर्यके महाशब्दके साथ प्रसन्नमन अन्तःपुरमे प्रवेश करता है। चौथे पहरमे खूब सोता है और चारों दिशाओकी दृढतासे रक्षा करता है। छठे पहरमे नगाड़े वजाकर उसे उठाया जाता है, वह सर्वार्थ शास्त्रोंका अवलोकन करता है। सातवेमे मन्त्रियोके साथ मन्त्रणा करता है। अपने राजकार्यकी चिन्ता करता है। आठवेमे शासनधर जनोको भेजता है और प्रातःकाल वैद्यसे सम्भापण करता है। रसोईघर-में पूछताछ करता है और बैठता है, नैमित्तिको और पुरोहितोंसे वात करता है ॥१-९॥

घत्ता—इस प्रकार १६ भागोमे विभक्त कर वह दिन और रातको व्यतीत करता है। युद्ध करनेके लिए उसका मन निरन्तर उत्साहसे भरा रहता है" ॥१०॥

[४] तुममे सन्तोष करने लायक एक भी वात नहीं है। उत्साहशक्ति तुममे स्वप्नमे भी नहीं है। जव शत्रु छोटा था, तव तुमने उसे नहीं मारा, जो नखके वरावर था वह अव कुठारके वरावर हो गया, जव दशाननका नाम ही नाम हुआ

जइयहुँ करेँ लग्गउ चन्दहासु । जइयहुँ मन्दोवरि दिण्ण तासु ॥४॥
जइयहुँ सुरसुन्दर बद्धु कणउ । जइयहुँ ओसारिउ समरेँ धणउ ॥५॥
जइयहुँ जगभूसणु धरिउ णाउ । जइयहुँ परिहविउ कियन्त-राउ ॥६॥
जइयहुँ सु-तणूयरि गउ हरेवि । अण्णु वि रयणावलि कर धरेवि ॥७॥
तइयहुँ जें णाहि ज णिहउ सत्तु । त एवहिं वड्डारउ पयत्तु' ॥८॥

घत्ता

वुच्चइ सहसक्खें 'किं केसरि सिसु-करि वहइ ।
पच्चेल्लिउ दुअवहु सुक्कउ पायउ सुहु डहइ' ॥९॥

[५]

पच्चत्तरु देवि गइन्द-गमणु । पुणु ढुक्कु सक्कु एक्कन्त-भवणु ॥१॥
जहिँ भेउ ण भिन्दइ को वि लोउ । जहिँ सुअ-सारियहुँ विणाहिँ ढोउ ॥२॥
तहि पइसेँवि पभणइ अमर-राउ । 'रिउ दुज्जउ एवहिँ को उवाउ ॥३॥
कि सामु भेउ किं उवप्पयाणु । किं दण्डु अबुज्झिय-परिपमाणु ॥४॥
किं कम्मारम्भुववाय-मन्तु । किं पुरिस-दव्व-सपत्ति-वन्तु ॥५॥
किं देस-काल-पविहाय-सारु । किं विणिवाइय-पडिहार-चारु ॥६॥
किं कज्ज-सिद्धि पञ्चमउ मन्तु । को सुन्दरु सच्च-विसार-वन्तु' ॥७॥
तो भारदुवाएं वुत्तु एम । 'ज पइँ पारद्धउ तं जि देव ॥८॥
कज्जन्तेँ णवर णिव्वडइ छेउ । पर मन्तिहिँ केवलु मन्त-भेउ' ॥९॥
तं णिसुणेँवि भणइ विसालचक्खु । 'एँहु पइँ उग्गाहिउ कवणु पक्खु ॥१०॥

घत्ता

ता अच्छउ सुरवइ जो णीसेसु रज्जु करइ ।
पहु मन्ति-विहूणउ चउरङ्गिहि मि ण सचरइ ॥११॥

था और जब उसने हजार विद्याएँ सिद्ध की थीं, जब उसके हाथमें तलवार आयी थी, जब उसे मन्दोदरी दी गयी थी, जब उसने सुरसुन्दर और कनकको बाँधा था, जब उसने युद्धसे धनदको खदेड़ा था, जब उसने त्रिजगभूषण महागजको पकडा था, जब उसने कृतान्तको मारा था, जब वह तनूदराका अपहरण करनेके लिए गया था, और भी रत्नावलीसे पाणिग्रहण किया था, उस समय तुमने जो शत्रुका नाश नहीं किया, उससे अब वह इतना बडा हो गया ॥१-८॥

घत्ता—इन्द्र कहता है "क्या सिंह गजके बच्चेको मारता है, बल्कि आग सूखे पेडको आसानीसे जला देती है" ॥९॥

[५] यह उत्तर देकर गजगतिसे चलनेवाला इन्द्र एकान्त भवनमें पहुँचा। जहाँ कोई भी आदमी भेदको न ले सके। जहाँ शुक और सारिकाको भी नही ले जा सकते। वहाँ प्रवेश कर अमरराज पूछता है, "इस समय शत्रु अजेय है, क्या उपाय है? क्या साम, दाम और भेद? क्या दण्ड जिसका परिणाम अज्ञात है? कर्म आरम्भ और उपवयका मन्त्र क्या है, पौरुष द्रव्य और सम्पत्तिसे युक्त होनेका उपाय क्या है? देशकालका सर्वश्रेष्ठ विभाजन क्या है? प्रतिहारको किस प्रकार ठीकसे विनियोजित किया जाये? कार्यकी सिद्धिका पाँचवाँ मन्त्र क्या है? सत्य विचारवान् सुन्दर कौन है?" यह सुनकर भारद्वाजने कहा, "हे देव, जो आपने प्रारम्भ किया है, वही ठीक है। कार्यके समाप्त होने पर ही इसका रहस्य प्रकट होगा। परन्तु मन्त्रियोसे केवल मन्त्रभेद करना चाहिए।" यह सुनकर विशालचक्षु कहता है, "यह तुमने कौन-सा पक्ष उद्घाटित किया है? ॥१-१०॥

घत्ता—इन्द्र तो ठीक जो अशेष राज्य करता है नहीं तो प्रभु मन्त्रीके बिना शतरंजमे भी चाल नही चलता" ॥११॥

[६]

परामरु पभणइ 'विहि मणोज्जु । णउ एक्कें मन्तिएँ रज्ज-कज्जु' ॥१॥
पिसुणेण वुत्तु 'वेण्णि वि ण होन्ति । अवरोप्परु घड्डेंवि कु-मन्तु देन्ति'॥२॥
कउटिल्लें वुच्चइ 'कवण भन्ति । तिण्णि वि चेयारि वि चारु मन्ति'॥३॥
मणु चवइ 'गरुअ वारहहुँ वुद्धि । णउ एक्कें विहिँ तिहिँ कज्ज-सिद्धि'॥४॥
त णिसुणेंवि पभणइ अमरमन्ति । 'अइसुन्दरु जइ सोलह हवन्ति' ॥५॥
भिगुणन्दणु वोल्लइ 'बुद्धिवन्तु । अकिलेसें वीसहिं होइ मन्तु' ॥६॥
त णिसुणेंवि चवइ सहासणयणु । विणु मन्ति-सहासें मन्तु कवणु ॥७॥
अण्णहों अण्णारिस होइ बुद्धि । अकिलेसें सिज्झइ कज्ज-सिद्धि' ॥८॥

घत्ता

जयकारिउ सव्वेंहिँ 'अम्महुँ केरी बुद्धि जइ ।
तो समउ दसासें सुन्दर सन्धि सुराहिवइ ॥९॥

[७]

बुह अत्थसत्थ पभणन्ति एव । कहिँ लब्भइ उत्तम सन्धि देव ॥१॥
एक्कु वि मालिहेँ सिरु खुडेंवि घित्तु । अण्णु वि जइ रावणु होइ मित्तु ॥२॥
तो तउ परमेसर कवण हाणि । अह असइ तो वि सिहि महुर-वाणि॥ ॥
जइ साम-भेय-दाणेंहि जि सिद्धि । तो दण्डें पउञ्जिएँ कवण विद्धि॥४॥
अच्छन्ति वालि-रणु सभरेवि । सुग्गीव-चन्दकर कुद्ध वे वि ॥५॥
णल-णील ते वि हियवएँ असुद्ध । सुव्वन्ति णिरारिउ अत्थ-लुद्ध ॥६॥
खर-दूसणा वि णिय-पाण-भीय । कज्जेण जेण चन्दणहि णीय ॥७॥
माहेसरपुरवइ-मरुणरिन्द । अवमाणें वि वसिकिय जिह गइन्द॥८॥

घत्ता

आएहिँ उवाएँहिँ भेइज्जन्ति णराहिवइ ।
दहवयण-णिहेलणु जाइ दूउ चित्तङ्गु जइ' ॥९॥

[६] तब पाराशर कहता है, "दो मन्त्री होना सुन्दर है। एक मन्त्रीसे राज्यकार्य नही होता।" नारदने कहा—"दो भी नही होने चाहिए। एक दूसरेसे मिलकर खोटे सलाह दे सकते है।" तब कौटिल्यने कहा, "इसमें क्या सन्देह है, तीन या चार मन्त्री ही सुन्दर है।" मनु कहते है, "बारह मन्त्रियोंकी बुद्धि भारी होती है, एक-दो या तीन मन्त्रियोसे कार्य-सिद्धि नहीं होती।" यह सुनकर बृहस्पति कहता है, "अति सुन्दर है यदि सोलह मन्त्री हों तो।" भृगुनन्दन कहता है, "वीस होनेपर मन्त्र बिना कष्टके विवेकपूर्ण होता है।" यह सुनकर इन्द्र कहता है, "एक हजार मन्त्रियोके बिना कैसा मन्त्र ? एकसे दूसरेको बुद्धि होती है और बिना किसी कष्टके कार्यकी सिद्धि हो जाती है" ॥१-८॥

घत्ता—तब सबने इन्द्रका जयकार किया और कहा, "यदि हमारा मन्त्र माना जाये तो हे इन्द्र, दशाननके साथ सन्धि कर लेना सुन्दर है" ॥९॥

[७] "पण्डित और अर्थशास्त्र यही कहते हैं कि हे देव, उत्तम सन्धि करना कठिन है। एक तो तुमने मालिका सिर काटकर फेक दिया, दूसरे यदि रावण तुम्हारा मित्र बनता है तो इसमें क्या नुकसान है ? मयूर सॉप खाता है, परन्तु वाणी सुन्दर बोलता है। यदि साम, दाम, दण्ड और भेदसे सिद्धि होती है तो दण्डका प्रयोग करनेसे कौन-सी वृद्धि हो जायेगी ? बालीके युद्धकी याद कर सुग्रीव और चन्द्रोदर दोनो क्रुद्ध है। नल और नील, वे भी हृदयसे अप्रसन्न हैं। सुना जाता है कि वे धनके अत्यन्त लोभी हैं। खरदूषण भी अपने प्राणोसे डरे हुए है। वे जिस प्रकार चन्द्रनखाको ले गये थे। माहेश्वरपुरपति और राजा मरुको अपमानित कर महागजको वशमे किया ॥१-८॥

घत्ता—इन उपायोंसे राजाका भेदन करना चाहिए। यदि चित्राग दूत दशाननके घर जाये तो यह सुन्दर होगा" ॥९॥

घत्ता

जोयण-परिमाणें जो ढुक्कइ सो णउ जियइ ।
जिह दुज्जण-वयणहुँ को वि ण पासु समिल्लियइ ॥९॥

[१२]

जसु एहउ अत्थि सहाउ दुग्गु । अण्णु वि साहणु अच्चन्त-उग्गु ॥१॥
जसु अट्ठ लक्ख भद्दहुँ गयाहुँ । बारह मन्दहुँ सोलह मयाहुँ ॥२॥
सकिण्ण-गइन्दहुँ वीस लक्ख । रह-तुरय-भडहँ पुणु णत्थि सङ्ख ॥३॥
एहउ पहिल्लारउ मूल-सेण्णु । बलु बीयउ मिच्चहँ तणउ अण्णु ॥४॥
तइयउ सेणी-बलु दुण्णिवारु । चउथउ मित्त-बलु अणाय-पारु ॥५॥
दुज्जउ पञ्चमउ अमित्त-सेण्णु । छट्टउ आडविउ अणाय-गण्णु ॥६॥
रावण पुणु वूहहँ णाहि छेउ । अमरा वि वलहँ ण मुणन्ति भेउ ॥७॥
हय-गय-रह-णर-जुज्झहुँ तहेव । सो सुरवइ जिज्जइ समरेँ केव ॥८॥

घत्ता

वुच्चइ दहवयणे 'जइ त जिणमि ण आहयणेँ ।
तो अप्पउ घत्तमि जालामालाउलेँ जलणेँ' ॥९॥

[१३]

इन्दइ पभणइ 'सुर-सार-भूअ । किं जम्पिएण बहवेण दूअ ॥१॥
ज किउ जम-धणयहुँ विहि मि ताहँ । ज सहसकिरण-णलकुब्वराहँ ॥२॥
तं तुह वि करेसइ ताउ अज्जु । लहु ठाउ पुरन्दरु जुज्झ-सज्जु' ॥३॥
त वयणु सुणेँवि उट्ठन्तएण । चित्तङ्गेँ वुच्चइ जन्तएण ॥४॥
'णिम्मन्तिओ-सि इन्देण देव । विजयन्तेँ इन्दइ तुहु मि तेव ॥५॥
सिरिमालि कुमारेँ हिँ ससिधएहिँ । सुग्गीव तुहु मि साहद्धएहिँ ॥६॥

घत्ता—जो व्यक्ति एक योजनके भीतर चला जाता है वह जीवित नहीं बचता, उसी प्रकार, जिस प्रकार 'दुर्जन मनुष्यसे कोई नही मिलता ॥९॥

[१२] जिसके ऐसे सहायक और दुर्ग हों तथा दूसरे भी साधन अत्यन्त उग्र हो। जिसके पास आठ लाख भद्रगज हों, बारह लाख मन्द और सोलह लाख मृगगज, बीस लाख संकीर्ण गज हो, तथा रथ, अश्व और योद्धाओकी संख्या ही नही है। यह उसकी पहली मूल सेना है, दूसरी सेना अनुचरो की है। तीसरा दुर्निवार श्रेणी बल है, चौथा अज्ञातपार मित्र-बल है, पाँचवीं अजेय अमित्र सेना है, छठी है आटविक सेना, जिसकी गणना अज्ञात है। हे रावण, उसकी व्यूह-रचनाका अन्त नही है, देवता भी उसकी सेनाका भेद नहीं जानते। अश्व, गज, रथ और नरोंके उस युद्धमे वह इन्द्र तुम्हारे द्वारा कैसे जीता जा सकता है ?" ॥१-८॥

घत्ता—दशवदनने तब कहा, "यदि उसे मै युद्धमे नहीं जीतूँगा तो ज्वालमालाओसे युक्त आगमे अपने आपको होम दूँगा ?" ॥९॥

[१३] इन्द्रजीत कहता है—"हे सुरसारभूत दूत, बहुत कहनेसे क्या ? जो हाल हमने यम और धनदका किया, और जो सहस्रकिरण और नलकुबरका। तात, आज वही हाल तुम्हारा करेगा। इसलिए इन्द्र ठहरे और युद्धके लिए तैयार हो जाये।" यह वचन सुनकर और उठकर जाते हुए चित्रांगने कहा, "हे देव, इन्द्रके द्वारा आप निमन्त्रित हैं, इन्द्रजीत विजयन्तके द्वारा तुम भी आमन्त्रित हो। श्रीमालि कुमार शशिध्वजके द्वारा आमन्त्रित है, सुग्रीव, तुम भी शाखाध्वजियों (वानरों)के द्वारा आमन्त्रित हो, यमराजके द्वारा जाम्बवान्, नल और नील,

जमराएं जम्बव-णील णलहों । हरिकेसि हत्थ-पहत्थ-खलहों ॥७॥
सोमेण विहीसण कुम्भयण्ण । अवरेहि मि केहि मि के वि अण्ण ॥८

घत्ता

परिवाडिएँ तुम्हहुँ दिण्णरु एउ णिमन्तणउ ।
भुञ्जेवउ सव्वेंहिं गरुअ-पहारा-भोयणउ' ॥९॥

[१४]

गउ एम भणेँवि चित्तङ्गु तेत्थु । सुर-परिमिउ सुरवर-राउ जेत्थु ॥१॥
'परमेसर दुज्जउ जाउहाणु । ण करेइ सन्धि तुम्हेँ हिं समाणु' ॥२
त णिसुणेँवि पवलु अराइ-पक्खु । सण्णज्झइ सरहसु दससयक्खु ॥३॥
हय भेरि-तूर पडु पडह वज्ज । किय मत्त महागय सारि-सज्ज ॥४॥
पक्खरिय तुरङ्गम जुत्त सयड । जस-लुद्ध कुद्ध सण्णद्ध सुहड ॥५॥
वीसावसु वसु रण-भर-समत्थ । जम-ससि-कुवेर पहरण-विहत्थ ॥६॥
किंपुरिस गरुड गन्धव्व जक्ख । किण्णर णर अमर विरल्लियक्ख ॥७॥
ज णयर-पओलिहिं वलु ण माइ । त णहयलेण उप्पएँवि जाइ ॥८॥

घत्ता

सण्णहेँ वि पुरन्दरु णिग्गउ अइरावएँ चडिउ ।
ण विज्झहों उप्परि सरय-महाघणु-पायडिउ ॥९॥

[१५]

मिग-मन्द-भद्द-सकिण्ण-गएँहिं । घड विरएँवि पञ्चहिं चाव-सएँहिं ॥१॥
थिउ अग्गएँ पच्छएँ भड-समूहु । सेणावइ-मन्तिहिं रइउ वूहु ॥२॥
सुरवर स-पवर-पहरण-कराल । घण-कक्खहिँ पक्खहिँ लोयवाल ॥३॥
डसियाहर रत्तुप्पल-दलक्ख । गएँ गएँ पण्णारह गत्त-रक्ख ॥४॥
हय पञ्च पञ्च चञ्चल वलग्ग । भड तिण्णि तिण्णि हएँ हएँ स-खग्ग॥५
एँउ जेत्तिउ रक्खणु गयवरासु । तेत्तिउ जेँ पुणु वि थिउ रहवरासु ॥६॥

हरिकेशके द्वारा खल-हस्त और प्रहस्त, सोमके द्वारा विभीषण और कुम्भकर्ण निमन्त्रित है। इसी प्रकार दूसरो-दूसरोके द्वारा दूसरे-दूसरे आमन्त्रित है ॥१-८॥

घत्ता—परम्पराके अनुसार ही तुम्हें यह निमन्त्रण दिया गया है, तुम सब भारी प्रहारोंका भोजन करोगे।" ॥९॥

[१४] यह कहकर चित्रांग वहाँ गया जहाँ देवताओंसे घिरा हुआ इन्द्र था। वह बोला, "परमेश्वर, राक्षस अजेय है, वह तुम्हारे साथ सन्धि करनेको तैयार नहीं है।" यह सुनकर प्रबल शत्रुपक्ष और इन्द्र तैयार होने लगा। भेरी और तूर्य, पट्ट-पटह तथा वज्र बजा दिये गये। मत्त महागजोंकी झूलें सजा दी गयी। तुरंगको कवच पहना दिये। रथ जोत दिये गये। यश के लोभी क्रुद्ध सुभट तैयार होने लगे। रणभारमें समर्थ विश्वावसु, वसु हाथमें हथियार लेकर, जम-शशि और कुबेर, किंपुरुष, गरुड, गन्धर्व और यक्ष-किन्नर, नर और विरल्लियाक्ष अमर। जब नगरके मुख्य द्वारपर सेना नही समायी तो वह उछलकर आकाश तलमें जा पहुँची ॥१-८॥

घत्ता—इन्द्र सन्नद्ध होकर ऐरावतपर चढ गया मानो विन्ध्याचलके ऊपर शरद्के महाघन आ गये हों ॥९॥

[१५] मृग-मन्द-भद्र और संकीर्ण गजो और पाँच सौ धनुर्धारियोसे घटाकी रचनाकर, आगे-पीछे भद्र समूह बैठ गया। सेनापति और मन्त्रियोंने व्यूहकी रचना की। प्रवर हथियारोंसे भयंकर सुरवर सघन कक्षों और पक्षोमें लोकपाल, ओठ चबाते हुए, रक्त कमलके समान आँखोंवाले पन्द्रह अंगरक्षक प्रत्येक गजके पास थे। पाँच-पाँच चंचल अश्व रखे गये, प्रत्येक अश्वके साथ तीन-तीन योद्धा तलवारके साथ रखे गये। महागजोका यह जितना भी रक्षण था, उतना ही रक्षण रथवरों

चउद्दह अङ्गुलिहिं णरो णरासु। रयणिहि तिहि तिहि हउ हयवरासु॥७॥
पञ्चहि पञ्चहिं गउ गयवरासु। धाणुक्कि छहिं धाणुक्कियासु॥८॥

घत्ता

त वूहु रएप्पिणु भीसणु तूर-वमालु किउ।
समरङ्गणें मेइणि सक्कु स इ भू सेवि थिउ॥९॥

[१७. सत्तरहमो संधि]

मन्तणएँ समत्तएँ दूएँ णियत्तएँ उभय-वलहँ अमरिसु चडइ।
तइलोक्क-भयङ्करु सुरवर-डामरु रावणु इन्दहों अब्भिडइ॥

[१]

किय करि सारि-सज्ज पक्खरिय तुरय-थट्टा।
उब्भिय धय-णिहाय स-विमाण रह पयट्टा॥१॥

आहय समर-भेरि भीसावणि। सुरवर-वइरि-वीर-कम्पावणि॥२॥
हत्थ-पहत्थ करेँ वि सेणावइ। दिण्णु पयाणउ पचलिउ णरवइ॥३॥
कुम्भयण्णु लङ्केस-विहीसण। णल-सुग्गीव-णील-खर-दूसण॥४॥
मय-मारिच्च-मिच्च-सुअ्मारण। अङ्गङ्गय-इन्दइ-घणवाहण॥५॥
रण-रम्भेण मिज्जन्त पधाइय। णिविसें समर-भूमि सपाइय॥६॥
पञ्चहि धणु-सएहिं पट्टु देप्पिणु। रिउ-वूहहों पडिवूहु रएप्पिणु॥७॥
णिवडिउ जाउहाण-वलु सुर-वलें। पत्थ-पडह-परिवड्ढिय कलयलें॥८॥
जाउ महाहउ भुवण-भयङ्करु। उट्ठिउ रउ मइलन्तु दियन्तरु॥९॥

का था। नर से नरके बीच १४ अँगुलियोंकी दूरी थी, रात्रिमें ११। उतनी ही अश्वसे अश्वके बीचमें भी। गजवरसे गजवरके बीच पाँच और धनुर्धारीसे धनुर्धारीके बीच ६ अँगुलियों की ॥१-८॥

घत्ता—उस व्यूहकी रचना कर उन्होंने तूर्योंका भीषण कोलाहल किया, उस समय ऐसा लगा मानो युद्धके प्रांगणमे धरती और इन्द्र स्वयं अलंकृत होकर स्थित थे ॥९॥

●

सत्रहवीं सन्धि

मन्त्रणा समाप्त होने और दूतके वापस जानेपर दोनो सेनाओमे रोप बढ गया। त्रिलोकभयंकर और देवताओंके लिए भयंकर रावण इन्द्रसे भिड़ जाता है।

[१] हाथी अम्बारीसे सजा दिये गये, अश्व-समूहको कवच पहना दिये गये। ध्वजसमूह उड़ने लगे। विमान और रथ चलने लगे। भयकर समरभेरी बजा दी गयी जो इन्द्रके शत्रुओंको कँपा देनेवाली थो। हस्त और प्रहस्तको सेनापति बनाकर, प्रयाण देकर राजा स्वयं चला। कुम्भकर्ण, लंकेश-विभीपण, नल, सुग्रीव, नील, खरदूषण, मय, मारीच और भृत्य, सुतसारण, अंग, अंगद, इन्द्रजीत और घनवाहन। रणरस (उत्साह) से भीगे हुए सब लोग युद्धके लिए दौड़े और पलमात्रमे युद्धभूमिमें पहुँच गये। रावण भी पाँच सौ धनुषोसे मार्ग देकर शत्रुव्यूहके विरुद्ध प्रतिव्यूहकी रचना करता है। देवसेना राक्षस सेनापर टूट पड़ी। आहत नगाडोंका कोलाहल होने लगा। भुवनभयंकर महायुद्ध हुआ। धूलि दिशान्तरोको मैली करती हुई छा गयी ॥१-९॥

पेक्खेँ वि णिय-वलु ओहट्टन्तउ । सुरवगला मुहेँ आवट्टन्तउ ॥४॥
पेक्खेँ वि उत्थल्लन्तइँ छत्तइँ । मत्त-गयहुँ भिज्जन्तइँ गत्तइँ ॥५॥
पेक्खेँ वि फुट्टन्तइँ रह-वीढइँ । जाण-विमाणइँ ममरुवगीढइँ ॥६॥
पेक्खेँवि हयवर पाडिज्जन्ता । सुहड-मडफ्फर साडिज्जन्ता ॥७॥
आयामेप्पिणु रह-गय-वाहणेँ । भिडिउ पसण्णकित्ति सुर-साहणेँ ॥८॥
वाणर-चिन्धु महागय-सन्दणु । चाव-विहत्थु महिन्दहोँ णन्दणु ॥९॥

घत्ता

णर-हय-गय तज्जेँ वि रह-धय भज्ज वि वूहहोँ मज्झेँ पइट्ठु किह ।
वम्मेँ हिँ विन्धन्तउ जीविउ लिन्तउ कामिणि-हियउ वियड्ढु जिह॥ १०॥

[४]

सुरवर-किङ्करेहिँ उत्थरेँ वि अहिमुहेहिँ ।
लइउ पसण्णकित्ति तिक्खेहिँ सिलिमुहेहिँ ॥ १॥

तो एत्थन्तरेँ दिढ-भुअ-डालेँ । रावण-पित्तिएण सिरिमालेँ ॥२॥
रहवरु वाहिउ सुरवर-चन्दहोँ । पढमउ 'भिट्टु महाहवेँ चन्दहोँ'॥३॥
कुन्त-विहत्थहोँ सीहारूढहोँ । जयसिरि-पवर-णारि-अवगूढहोँ ॥४॥
'अरेँ स-कलङ्क वङ्क महिलाणण । पुरउ म थाहि जाहि मयलञ्छण' ।५।
त णिसुणेँ वि ओखण्डिय-माणउ । ल्हसिउ मियङ्कु थक्कु जमराणउ ॥६
महिसारूढु दण्ड-पहरण-धरु । तिहुअण-जण-मण-णयण-भयङ्करु॥७॥
सो वि समुत्थरन्तु दणु-दुट्ठउ । किउ णिविसद्धे पाराउट्ठउ ॥८॥
ताम कुवेरु थक्कु सवडम्मुहु । किउ णाराएँहिँ सो वि परम्मुहु ॥९॥

घत्ता

सिरिमालि धणुद्धरु रणमुहेँ दुद्धरु भरेँ वि ण सक्किउ सुरवरेँ हिँ ।
संताउ करन्तउ पाण हरन्तउ वम्महु जेम कु-मुणिवरेँ हिँ ॥१०॥

वाले आवर्त हो। अपनी सेना नष्ट होती और सुरोंके बगुला-मुखमे जाती हुई देखकर, उछलते हुए छत्र और मत्तगजोके नष्ट होते हुए शरीर देखकर, फूटे हुए रथपीठ और भ्रमरोंसे आलिगन यान-विमान देखकर, हयवरोंको गिरते और सुभटों-का घमण्ड नष्ट होते हुए देखकर, प्रसन्नकीर्ति रथ और गजसे युक्त सुरसेनासे आयासके साथ भिड़ गया, कपिध्वजी, महागज जिसके रथमे जुता है और धनुष जिसके हाथमें है ऐसा वह महेन्द्रका पुत्र ॥१-९॥

घत्ता—नर, हय और गजोंकी भर्त्सना कर, रथध्वजोको भग्न कर वह व्यूहके बीच इस प्रकार स्थित था जैसे कामसे विद्ध जीवन लेता हुआ विदग्ध कामिनी-हृदय हो ॥१०॥

[४] इन्द्र के अनुचरोंने सामने आकर तीखे तीरोंसे प्रसन्न-कीर्तिको विद्ध कर दिया। इसी बीच दृढभुजरूपी शाखा-वाले रावणके पितृव्य श्रीमालने अपना रथ देवसमूहकी ओर बढाया, पहले वह महायुद्धमें चन्द्रमासे भिड़ा, जिसके हाथमे माला था, जो सिहपर आरूढ था और विजयलक्ष्मीसे आलिगित था। (श्रीमालने ललकारा)—"अरे कलंकी वक्र महिलानन ! मृग लांछन, मेरे सामने खड़ा मत रह, चला जा।" यह सुनकर, खण्डितमान चन्द्रमा खिसक गया। तब यमराज सामने आया, भैसेपर बैठा हुआ, हाथमे दण्ड लिये हुए। त्रिभुवनके जनमन और नेत्रोके लिए भयंकर। उछलते हुए उस दुष्ट दानवका भी आधे पलमे पार पा लिया। तब कुबेर सामने आया। परन्तु उसने तीरोसे उसे भी विमुख कर दिया ॥१-९॥

घत्ता—युद्धमे धनुर्धारी श्रीमाली दुर्धर-सा सुखरोंके द्वारा वह पकडा नहीं जा सका उसी प्रकार, जिस प्रकार कुमुनिवरो द्वारा संताप करनेवाला और प्राणोंका अन्त करनेवाला कामदेव वशमे नहीं किया जा सकता ॥१०॥

[५]

मग्गॅ कियन्त समरॅं तो ससि-कुवेर-राए ।
केसरि-कणय-हुअवहा मल्लवन्त-जाए ॥१॥

तिण्णि वि भिडिय खत्तु आमेल्लेंवि । धय-धूवन्त महारह पेल्लेंवि ॥२॥
तीहि मि समकण्डिउ रयणीयरु । ण धाराहर-घणेंहिँ महीहरु ॥३॥
सरवर-सरवरेहिँ विणिवारिय । तिण्णि वि पुट्ठि देन्त ओसारिय ॥४॥
अमर-कुमार णवर उद्धाइय । रिउ जिह एक्कहिँ मिलेंवि पराइय ॥५॥
लइय सिलीमुहेहिँ सिरिमालि । परम-जिणिन्द-चरण-कमलालि ॥६॥
अद्धससीहिँ सीस उच्छिण्णइँ । ण णीलुप्पलाइँ विक्खिण्णइँ ॥७॥
जउ जउ जाउहाणु परिसक्कइ । तउ तउ अहिमुहु को वि ण थक्कइ॥८॥
णिऍवि कुमार-सिरइँ छिज्जन्तइँ । रण-देवयहेँ वलि व दिज्जन्तइँ ॥९॥

घत्ता

सहसक्खु विरुज्झइ किर सण्णज्झइ ताव जयन्तें दिण्णु रहु ।
'मइँ ताय जियन्तें सुहड-कयन्तें अप्पुणु पहरणु धरहि कहु' ॥१०॥

[६]

जयकारेवि सुरवइं धाइओ जयन्तो ।
'णिसियर थाहि थाहि कहिँ जाहि महु जियन्तो ॥१॥

वाहि वाहि सवडम्मुहु सन्दणु । हउँ धव देमि पुरन्दर-णन्दणु ॥२॥
तीरिय-तोमर-कण्णिय-घायहुँ । वहु-वावल्ल-मल्ल-णारायहुँ ॥३॥
अद्धससिहिँ खुरुप्प-खेल्लग्गहुँ । पट्टिस-फलिह-सूल-फर-खग्गहुँ ॥४॥
मोग्गर-लउडि-चित्तदण्डुण्डिहिँ । सव्वल-हुलि-हलमुसल-भुसुण्ढिहिँ।५
झसर-तिसत्तिपरसु-इसु-पासहुँ । कणय-कोन्त-घण-चक्क-सहासहुँ ॥६॥
रुक्ख-सिलायल-गिरिवर घायहुँ । हवि-जल-पवण-विज्जु-सघायहुँ ॥७॥
त णिसुणेंवि सिरिमालि-पहरिसिउ । सुरवइ-सुअहों महारहु दरिसिउ॥८॥
'पइँ मेल्लेप्पिणु जय-सिरि-लाहवेँ । को महु अण्णु देइ धव आहवेँ ॥९॥

[५] उस युद्धमें कृतान्त, चन्द्र, कुबेरराज, केशरी, कनक, अग्नि और माल्यवन्तके नष्ट होनेपर तीनों क्षमाभाव छोड़कर फहराती हुई ध्वजाओवाले वे महारथी निशाचर इस प्रकार भिड गये, मानो मूसलाधार मेघ पहाडोंसे टकरा गये हों।" श्रेष्ठ तीरोंसे श्रेष्ठ तीर काट दिये गये। वे तीनों पीठ देकर भाग गये। केवल नये अमरकुमार दौड़े। और जहाँ शत्रु था वहाँ आकर स्थित हो गये। शिलीमुखोंसे श्रीमालिको इस प्रकार ले लिया जैसे भ्रमर जिनभगवान्‌के चरणोको। अर्धचन्द्रसे चन्द्रमा का सिर काट दिया, और नील कमल फैला दिये गये हो, जहाँ-जहाँ राक्षस पहुँचता है, वहाँ-वहाँ उसके सामने कोई नही टिक सका। विखरे हुए छत्र कुमारोके सिर ऐसी शोभा पा रहे है, मानो युद्धके देवताके लिए बलि दे दी गयी हो ॥१-९॥

घत्ता—तब इन्द्र विरुद्ध हो उठता है, और सन्नद्ध होता है, इतनेमे जयन्त अपना रथ बढाता है, "हे तात, सुभटोके लिए यम के समान मेरे रहते हुए आप शस्त्र धारण क्यो करते है ?"॥१०॥

[६] इन्द्रकी जय बोलकर जयन्त दौड़ा, "निशाचर ठहर, कहाँ जाता है मेरे जीते हुए ? सामने अपना रथ बढा, मै इन्द्रपुत्र तुझे चुनौती देता हूँ, तीरिय, तोमर और कर्णिकाके आघातसे, प्रचुर वावल्ल भालों और तीरोसे, अर्धचन्द्रो, खुरुप्प और शैलाग्रोंसे, पट्टिस-फलिह-शूल-फर और खड्गसे, मुद्गर-लकुटी-चित्रदण्ड और डण्डिसे, सव्वल-हूलि-हल-मुसल और भुसुण्डीसे, झसर-त्रिशक्ति-फरसु और इषुपासोंसे, हजारो कनक-कोंत-घन-चक्रोसे, वृक्ष-शिलातल और गिरिवरके आघातोंसे, अग्नि, जल, पवन और विद्याओके संघातोसे।" —यह सुनकर श्रीमाल हँसा और उसने अपना महारथ इन्द्रके सामने कर दिया और कहा, "तुम्हे छोड़कर दूसरा कौन युद्धमे चुनौती दे सकता है" ॥ १-९ ॥

घत्ता

तो एव विसेसेँ वि सर सपेसेँवि छिण्णु जयन्तहोँ तणउ धउ।
गयणङ्गण-लच्छिहेँ कमल-दलच्छिहेँ हारु णाइँ उच्छलेँवि गउ ॥१०॥

[७]

दहमुह-पित्तिएण दणु-देह-दारणेण।
मुसुमूरिउ महारहो कणय-पहरणेण ॥१॥

एउ ण जाणहुँ कहिँ गउ सन्दणु। चुक्कउ कह वि कह वि सुर-णन्दणु॥२॥
दुक्खु दुक्खु मुच्छा-विहलङ्घलु। उट्ठिउ उद्ध-सुण्डु ण मयगलु ॥३॥
भीसण-भिण्डिवाल-पहरण-धरु। जाउहाण-रहु किउ सय-सक्करु ॥४॥
सो वि पहार-विहुरु णिच्चेयणु। मुच्छ पराइउ पसरिय-चेयणु ॥५॥
धाइउ धुणेँवि सरीरु रणङ्गणेँ। कूर महागहु णाइँ णहङ्गणेँ ॥६॥
बिण्णि मि दुज्जय दुद्धर पवयल। बिण्णि मि भीम-गयासणि-करयल॥७॥
वेण्णि मि परिभमन्ति णह-मण्डलेँ। लीह दिन्ति रावणेँ आखण्डलेँ ॥८॥
सुरवइ-णन्दणेण आयामेँवि। कुलिस-दण्ड-सण्णिह गय-भामेँवि॥९॥

घत्ता

आहउ वच्छत्थलेँ पडिउ रसायलेँ पाण-विवज्जिउ रयणियरु।
जउ जाउ जयन्तहोँ णिसियर-तन्तहोँ घित्तु णाइँ सिरेँ रय-णियरु ॥१०॥

[८]

जं सिरिमालि पाडिओ अमर-णन्दणेण।
ता इन्दइ पधाविओ समउ सन्दणेण ॥१॥

अरे दुव्वियड्ढ मम ताउ वहेँवि कहिँ जाहि सण्ढ॥२॥
वलु वलु हयास मइँ जीवमाणेँ कहिँ जीवियास' ॥३॥
वयणेण तेण मरेँ धणुहरु किउ सुर-णन्दणेण ॥४॥
उत्थरिय वे वि समरङ्गणेँ सर-मण्डवु करेँवि ॥५॥
रिउ मद्दणेण आयामेँ वि दहमुह-णन्दणेण ॥६॥

घत्ता—इस प्रकार अपनी विशेषता बताकर और तीर चलाकर उसने जयन्तका ध्वज छिन्न-भिन्न कर दिया, मानो कमलके समान नेत्रोवाली गगनरूपी लक्ष्मीका हार ही उछलकर चला गया हो ॥ १० ॥

[७] राक्षसोंके शरीरोंका विदारण करनेवाले कनक अस्त्रसे दशमुखके पितृव्य (चाचा) ने उसके रथको तहस-नहस कर दिया । यह भी पता नहीं लगा कि रथ कहाँ गया, किसी प्रकार इन्द्रका पुत्र बच गया । मूर्च्छासे विह्वल वह बड़ी कठिनाईसे ऐसे उठा, जैसे ऊपर सूँड़ किये हुए महागज हो । भीषण भिन्दिपाल शस्त्रको धारण करनेवाले उसने राक्षसके रथके सौ टुकड़े कर दिये, प्रहारसे विधुर वह सञ्ज्ञाशून्य हो गया । मूर्च्छा चली गयी, उससे चेतना आ गयी । अपना शरीर धुनता हुआ वह आकाशमें क्रूर महाग्रहके समान दौड़ा । दोनो ही अजेय और प्रबल थे । दोनोके हाथमे भयंकर गदाएँ थीं । दोनो आकाशमें घूम रहे थे, इन्द्र और रावणकी लीक देते हुए । तब इन्द्रपुत्रने वज्रदण्डके समान, आयामके साथ गदा घुमाकर ॥१-९॥

घत्ता—वक्षस्थलपर आघात किया । निशाचर प्राणविहीन होकर रसातलमें जा गिरा । जयन्तकी जीत हो गयी, मानो निशाचर समूहके सिरपर धूल पड़ गयी ॥१०॥

[८] जब अमरपुत्र इन्द्रने श्रीमालको मार दिया, तो उसके सामने इन्द्रजीत दौड़ा, "अरे दुर्विदग्ध, धूर्त, मेरे तातको मारकर कहाँ जाता है ? हताश मुड़-मुड़, मेरे जीते हुए तुझे जीनेकी आशा कैसे ?" यह वचन सुनकर अमरपुत्रने अपने हाथमें धनुष ले लिया । तीरोंका मण्डप तानकर, वे दोनो युद्धके प्रागणमें उछले । शत्रुका नाश करनेवाले दश-मुखके

विणिहय-पहरँ हिँ सण्णाहु छिण्णु तीसहिँ सरेहिँ ॥७॥
रक्खिउ सरीरु कह कह वि णाहिँ कप्परिउ वीरु॥८॥
उप्पएँवि जाम किर धरइ पुरन्दरु पत्तु ताम ॥९॥

घत्ता

उग्गामिय-पहरणु चोइय-वारणु अन्तरेँ थिउ अमराहिवइ।
अरेँ अरिवर-मद्दण रावण-णन्दण उवरिं वलि चारहडि जइ ॥१०॥

[९]

खत्तु मुएवि सव्वेहिं भिउडि-भासुरेहि।
लङ्काहिवहोँ णन्दणो वेढिओ सुरेहिं ॥१॥

वेढिउ एक्कु अणन्तहिँ रावणि। तो वि ण गणइ सुहड चूणामणि ॥२॥
रोक्कइ वलइ धाइ अब्भिट्टइ। रिउ पण्णास-सट्ठि दलवट्टइ ॥३॥
सन्दण सन्दणेण संचूरइ। गयवर गयवरेण मुसुमूरइ ॥४॥
तुरउ तुरङ्गमेण विणिवायइ। णरवर णरवर-घाएँ घायइ ॥५॥
जाम वियम्भइ सव्वायामे। ताव सु-सारहि सम्भइ-णामें ॥६॥
पभणइ 'रावण किं णिच्चिन्तउ। मलवन्त-णन्दणु अत्थन्तउ ॥७॥
अण्णु वि रावणि लइउ असत्ते। वेढिउ सुरवर-वलेँण समत्तें ॥८॥
दुज्जउ जइ वि महाहवेँ सक्कइ। एक्कु अणेय जिणेँवि किं सक्कइ ॥९॥

घत्ता

ते वयणे रावणु जण-जूरावणु चडिउ महारहेँ खग्ग-करु।
लक्खिज्जइ देवेँहि वहु-अवलेवेँ हिँ णाइँ कियन्तु जगन्तयरु ॥१०॥

[१०]

दूरत्थेण णिसियरिन्देण सुरवरिन्दो।
सीहेण विरुद्धेण जोइओ गइन्दो ॥१॥

पुत्र इन्द्रजीतने आयाम करके, शस्त्रोंको आहत करनेवाले तीस तीरोंसे उसका कवच छिन्न कर दिया। शरीर किसी प्रकार बच गया, वह कटा नहीं। जैसे ही वह उछलकर उसे पकड़ने-वाला था, वैसे ही इन्द्र वहाँ आ गया। ॥१-९॥

घत्ता—शस्त्र लिये हुए, हाथीको प्रेरित करके असरराज बीचमे आकर स्थित हो गया और बोला, "अरे शत्रुका मर्दन करनेवाले रावणपुत्र, यदि वीरता हो तो मेरे ऊपर उछल"॥१०॥

[९] इस प्रकार क्षात्रधर्मको ताकमें रखते हुए, भौहोंसे भास्वर सभी देवोंने लंकाराजके पुत्र इन्द्रजीतको घेर लिया। एक रावणपुत्रको अनेकोंने घेर लिया, वह सुभटश्रेष्ठ तब भी उनको कुछ नहीं गिनता। रोकता है, मुड़ता है, दौड़ता है, लड़ता है, पचास-साठ शत्रुओ का सफाया कर देता है। रथको रथसे चूर कर देता है, गजवरको गजवरसे कुचल देता है। तुरंगको तुरगसे गिरा देता है, मनुष्य, मनुष्यके आघातसे घायल होता है। इस प्रकार जब इन्द्रजीत पूरे आयामके साथ सबको अश्चर्यमे डाल रहा था कि इतनेमे सन्मति नामक सारथी कहता है, "आप निश्चिन्त है माल्यवान्‌का पुत्र मारा गया है, और भी इन्द्रजीतको अक्षात्रभावसे घेर लिया है समस्त सुरवर सेनाने। महायुद्धमें यद्यपि वह अजेय है, फिर भी अकेला वह अनेकोंको कैसे जीत सकता है ?" ॥१-९॥

घत्ता—यह शब्द सुनकर जनोंको सतानेवाला रावण हाथमें तलवार लेकर महारथमे चढा, अत्यन्त अहंकारसे भरे हुए देवोने उसे जगका अन्त करनेवाले कृतान्तकी तरह देखा ॥१०॥

[१०] दूरस्थ निशाचरराजने सुरराजको इस प्रकार देखा, जैसे विरुद्ध होकर सिंह गजराजको देखता है। वह कहता है,

'सारहि वाहि वाहि रहु तेत्तहें। आयवत्तु आपण्डुरु जेत्तहें ॥२॥
जेत्तहें अइरावणु गलगज्जइ। जेत्तहें भीसण दुन्दुहि वज्जइ ॥३॥
जेत्तहें सुरवइ सुर-परियरियउ। जेत्तहें वज्ज-दण्डु करें धरियउ' ॥४॥
त णिसुणें वि सम्मइ उच्छाहिउ। पूरिउ सङ्खु महारहु वाहिउ ॥५॥
किउ कलयलु दिण्णइँ रण-तूरइँ। हसियइँ सणि-जन-मुहइँ व कूरइँ ॥६॥
समरु घुट्टु वलइ मि अब्भिट्टइँ। रण-रसियइँ सण्णाह-विसट्टइँ ॥७॥
पवर-तुरङ्गम पवर-तुरङ्गहुँ। भिडिय मयङ्ग मत्त-मायङ्गहुँ ॥८॥
रह रहवरहुँ परोप्परु धाइय। पायालहुँ पायाल पराइय ॥९॥

घत्ता

मेल्लिय-हुक्कारइँ दिण्ण-पहारइँ सिर-कर-णास णमन्ताइँ।
भिडियइँ अ-णिविण्णइँ वेण्णि मि सेण्णइँ मिहुणइँ जॅम अणुरत्ताइँ ॥१०॥

[११]

जाउ महन्तु आहवो विहिँ विहि जणाहुं।
इन्दइ-इन्दतणयहु इन्द-रावणाहु ॥१॥

रयणासव-सहसार-जणेरहुँ। मय-मेसइ-मारिच्च-कुवेरहुँ ॥२॥
जम-सुग्गीवहुँ दूसम-सीलहुँ। अणल-णलहुँ पलयाणिल-णीलहुँ ॥३॥
ससि-अङ्गयहुँ दिवायर-अङ्गहुँ। खर-चित्तहुँ दूसण-चित्तङ्गहुँ ॥४॥
सुअ-चमूहुँ वीसावसु-हत्थहुँ। सारण-हरि-हरिकेसि-पहत्थहुँ ॥५॥
कुम्भयण्ण-ईसाणणरिन्दहुँ। विहि-केसरिहिँ विहीसण-खन्दहुँ ॥६॥
घणवाहण-तडिकेसकुमारहुँ। मल्लवन्त-कणयहुँ दुव्वारहुँ ॥७॥
'जम्वुमालि-जीमुत्तणिणायहुँ। वज्जोयर-वज्जाउहरायहुँ ॥८॥
वाणरधय पञ्चाणणचिन्धहुँ। एम जुज्झु अब्भिट्टु पसिद्धहुँ ॥९॥

"सारथि-सारथि, रथ वहाँ हाँको, जहाँ सफेद आतपत्र है। जहाँ ऐरावत गरज रहा है, जहाँ दुन्दुभि बज रही है। जहाँ इन्द्र देवताओंसे घिरा हुआ है। जहाँ उसने वज्रदण्ड हाथमे ले रखा है।" यह सुनकर सन्मति सारथिका उत्साह बढ गया, शंख बजाकर उसने अपना रथ आगे बढाया। कोलाहल होने लगा। तूर्य बजा दिये गये। शनि और यमके मुख दुष्टोकी तरह हँसने लगे। समर होने लगता है, सेनाएँ भिड़ती है, उत्साहसे भरी हुई और कवचोसे आरक्षित। प्रबल अश्व, प्रबल अश्वोसे, गज गजवरोसे, रथ रथवरोंसे और पैदल, पैदल सैनिको से ॥१-९॥

घत्ता—हुंकार छोड़ते हुए, प्रहार करते हुए, सिर कर और नाक झुकाये हुए बिना किसी खेदके दोनो सेनाएँ अनुरक्त मिथुनोंकी भाँति आपसमे भिड़ गयी ॥१०॥

[११] दोनों सेनाओंमें दोनों ओरसे भयंकर युद्ध हुआ। इन्द्रजीत और जयन्तमे तथा रावण और इन्द्रमे। पिता रत्नाश्रव और सहस्रारमे, मय-बृहस्पति-मारीच और कुवेरमें, विपमशीलवाले यम और सुग्रीवमे, प्रलयकालके अनलकी लीला धारण करनेवाले अनल और नलसें, चन्द्रमा और अंगदमे, सूर्य और अंगमे, खर और चित्रमे, दूपण और चित्रांगमे, सुत और चमूमे, विश्वावसु और हस्तमे, सारण और हरिमे, हरिकेश और प्रहस्तमे, कुम्भकर्ण और ईशान नरेन्द्रमे, विधि और केशरीमे, विभीषण और स्कन्धमें, घनवाहन और तडित्केशीके कुमारमें, दुर्वार्य माल्यवन्त और कनकमे, जम्बू और मालिमे, जीमूत और निनादमे, वज्रोदर और वज्रायुधमे, वानरध्वजियो और सिंहध्वजियोमे, इस प्रकार प्रसिद्ध-प्रसिद्ध लोगोमे युद्ध हुआ ॥१-९॥

घत्ता

करि-कुम्भ-विकत्तणु गओलिय-तणु जो रणेँ जासु समावडिउ ।
सो तासु समच्छरु तोसिय-अच्छरु गिरिहेँ दवग्गि व अब्भिडिउ ॥१०॥

[१२]

को वि किवाण-पाणिए सुरवहू णिएवि ।
ण मुअइ मण्डलग्गु पहर समलिएवि ॥१॥
को वि णीसरन्तन्त-चुम्भलो । भमइ मत्त-हत्थि व स-सङ्कलो ॥२॥
को वि कुम्भि-कुम्भयल-दारणो । मोत्तिओह-उज्जलिय-पहरणो ॥३॥
को वि दन्त-मुसलुक्खयाउहो । धाइ मत्त-मायङ्ग-सम्मुहो ॥४॥
को वि खुडिय-सीसो धणुद्धरो । वलइ धाइ विन्धइ स-मच्छरो ॥५॥
को वि वाण-विणिभिण्ण-वच्छओ । वाहिरन्तरुच्चरिय-पिच्छओ ॥६॥
सोणियारुणो सहइ णरवरो । रत्त-कमल-पुञ्जो व्व स-भमरो ॥७॥
को वि एक्क-चलणे तुरङ्गमे । हरि व विस्थिओ ण भरिए कमे ॥८॥
को वि सिरउडे करेँ वि करयले । जुज्झ-भिक्ख मग्गेइ पर-वले ॥९॥

घत्ता

भडु को वि पडिच्छिरु णिव्वट्टिय-सिरु सोणिय-धारुच्छलिय-तणु ।
लक्खिज्जइ दारुणु सिन्दूरारुणु फग्गुणेँ णाइँ सहसकिरणु ॥१०॥

[१३]

कत्थ इ मत्त-कुञ्जरा जीविएण चत्ता ।
कसण-महाघण व्व दीसन्ति धरणि-पत्ता ॥१॥
कत्थ इ स-विसाणइँ कुम्भयलइँ । ण रणवहु-उक्खलइँ स-मुसलइँ ॥२॥
कत्थ इ हय करवालहिँ खण्डिय । अन्त-ललन्त खलन्त पहिण्डिय ॥३॥

घत्ता—गजकुम्भको विदीर्ण करनेवाले पुलकित शरीर जिसके सामने जो योद्धा आया, अप्सराओंको सन्तुष्ट करनेवाला वह मत्सरसे भरकर उसी प्रकार भिड गया, जिस प्रकार गिरिसे दावानल।" ॥१०॥

[१२] कोई सुरवधूको देखकर, कृपाण हाथमे लिये हुए आघात खाकर भी तलवारको नहीं छोड रहा है। कोई अपनी निकली हुई आँतोंसे विह्वल इस प्रकार घूम रहा था, जैसे शृंखलाओसे बँधा हुआ मत्तगज हो, गजके कुम्भस्थलको विदीर्ण करनेवाले किसीका अस्त्र मोतियोके समूहसे उज्ज्वल था। दन्त और मूसलोंके लिए निकाल रखा है आयुध जिसने, ऐसा कोई वीर मत्तगजके सम्मुख दौड़ता है। कट गया है सिर जिसका, ऐसा कोई धनुर्धारी मुडता है दौड़ता है और मत्सरसे भरकर वेधता है। किसीका वक्षस्थल तीरोसे इतना विद्ध है कि उसके बाहर-भीतर पुंख आरपार लगे हुए है ? कोई रक्तसे लाल व्यक्ति ऐसा शोभित है मानो भ्रमरसहित रक्त कमलोका समूह हो। कोई एक पैरके अश्वपर आसीन, विष्णुके समान ही एक कदम नहीं चल पाता। कोई अपने करतल सिरतटपर रखकर शत्रुसेनामे युद्धकी भीख माँग रहा है ॥१-९॥

घत्ता—कट चुका है सिर जिसका, जिसके शरीरसे रक्तकी धाराएँ उछल रही है, तथा प्रति इच्छा रखनेवाला भट ऐसा दारुण दिखाई देता है, जैसे फागुनमें सिन्दूरसे लाल सूर्य हो ॥१०॥

[१३] कहींपर जीवनसे त्यक्त मत्तगज ऐसे जान पड़ते हैं जैसे काले महामेघ धरतीपर आ गये हो। कहींपर दाँतो सहित कुम्भस्थल ऐसे जान पडते है मानो रणरूपी वधूके ऊखल और मूसल हो। कहींपर तलवारोसे खण्डित अश्व स्खलित होते

घत्ता

मयगलेँ हिँ महन्तेँ हिँ विहि मि भमन्तेँहिँ सुरवइ-लङ्काहिवेँ पवर।
भव-भवणेँहिँ छूढी ण महि मूढी भमइ स-सायर स-धरधर ॥९॥

[१७]

तिजगविहूसणेण किउ सुर-करी णिरत्थो।
परिओसिय णिसायरा ल्हसिउ वइरि-सत्थो ॥१॥

रावणु णव-जुवाणु वलवन्तउ। अमराहिउ गय-वेस-महन्तउ ॥२॥
समेँ वि ण सक्किउ करिवरु खञ्चिउ। रक्खेँ सयवारउ परियञ्चिउ ॥३॥
गउ गएण पहु पहुणोट्ठद्धउ। झम्म देवि अंसुएँण णिवद्धउ ॥४॥
विजउ घुट्ठु रयणीयर-साहणेँ। देवेँहिँ दुन्दुहि दिण्ण दिवङ्गणेँ ॥५॥
ताव जयन्तु दसाणण-जाएँ। आणिउ वन्धेँवि वाहु-सहाएँ ॥६॥
जमु सुग्गीवे दूसम-सीलेँ। अणलु णलेण अणिलु रणेँ णीलेँ ॥७॥
खर-दूसणेँहिँ चित्त-चित्तङ्गय। रवि ससि लेवि आय अङ्गङ्गय ॥८॥
सुरवर-गुरु मएण णिडिभच्चे। लइउ कुवेरु समरेँ मारिच्चे ॥९॥

घत्ता

जो जसु उत्थरियउ सो ते धरियउ गेण्हेँवि पवर-वन्दि-सयइँ।
गउ सुरवर-डामरु पुरु अजरामरु जिणु जिह जिणेँवि महाभयइँ॥१०॥

[१८]

लङ्क पुरन्दरे णिए जय-सिरी-णिवासो।
सहसारेण पत्थिवो पत्थिओ दसासो ॥१॥

'अहोँ जम-धणय-सक्क-कम्पावण। देहि सुपुत्त-भिक्ख महु रावण' ॥२॥
त णिसुणेवि भणइ सुर-वन्धणु। 'तुम्हवि अम्ह वि एउ णिवन्धणु ॥३॥
जमु तलवरु परिपालउ पट्टणु। पङ्गणु णिक्किउ करउ पहञ्जणु ॥४॥
पुप्फ-पयरु घरेँ देउ वणासइ। सहुँ गन्धव्वेँहिँ गायउ सरसइ ॥५॥

घत्ता—दोनों घूमते हुए मदकल महागजोंके साथ इन्द्र और रावण ऐसे मालूम पड रहे थे, मानो भवरूपी भवनसे युक्त धरतीरूपी मुग्धा सागर और समुद्रके साथ घूम रही है। ॥९॥

[१७] त्रिजगभूषण महागजने ऐरावतको निरस्त्र कर दिया। निशाचर प्रसन्न हो गये। शत्रुसमूहका पतन हो गया। रावण नवयुवक और बलवान् था जब कि इन्द्रकी वय और तेज जा चुका था। खींचनेपर भी ऐरावत महागज हिल नही सका, राक्षसने सौ बार उसे छुआ। गजने गजको और स्वामीने स्वामीको उठा लिया। घूमकर उसने वस्त्रसे उसे बाँध दिया। निशाचरोकी सेनामे विजयकी घोषणा कर दी गयी। देवताओंने आकाशसे दुन्दुभि बजा दी। तबतक इन्द्रजीत जयन्तको अपनी बाहुओंसे बाँधकर ले आया, विषमशील सुग्रीव यमको, नल अनलको, नील अनिलको, खर-दूषण, चित्र-चित्रांगद-को और अंग-अंगद सूर्य-चन्द्रको लेकर आ गये। निर्भीक मयने बृहस्पतिको और मारीचने कुबेरको पकड़ लिया ॥१-९॥

घत्ता—जिसने जिसपर आक्रमण किया, उसने उसको पकड़ लिया। इस प्रकार सैकड़ो प्रवर बन्दियोंको पकड़कर, इन्द्रके लिए भयंकर रावण अपने नगरके लिए उसी प्रकार गया, जिस प्रकार परमजिन महामदोंको जीतकर अजर-अमर पदको प्राप्त करते है ॥१०॥

[१८] इन्द्रको लंका ले जानेपर, सहस्रारने जयश्रीके निवास राजा रावणसे प्रार्थना की, "यम, धनद और शक्रको कँपानेवाले रावण, मुझे पुत्रकी भीख दो।" यह सुनकर देवोंको बाँधनेवाले रावणने कहा, "तुम्हारे-हमारे बीच यह शर्त है कि यम तलवर (कोतवाल) होकर नगरकी रक्षा करे, प्रभंजन हमारा आँगन साफ करे, वनस्पति घरपर पुष्पसमूह दे,

वत्थ-सहासइँ हवि पक्खालउ । कोसु असेसु कुवेरु णिहालउ ॥६॥
जोण्ह करेउ मियङ्कु णिरन्तरु । सीयलु णहयलेँ तवउ दिवायरु ॥७॥
अमरराउ मज्जणउ भरावउ । अण्णु वि घणेँहिं छडउ देवावउ' ॥८॥
तं पडिवण्णु सव्वु सहसारें । मुक्कु सक्कु लङ्कालङ्कारें ॥९॥

घत्ता

णिय-रज्जु विवज्जेँवि गउ पव्वज्जेँवि सासयपुरहोँ सहसणयणु ।
जय-सिरि-वहु मण्डेँवि थिउ अवरुण्डेँवि स इँ भु य-फलिहेँहिँ दहवयणु॥१०

इय चारु-पउमचरिए धणञ्जयासिय-सयम्भुएव-कए ।
जाणह 'रा व ण वि ज य' सत्तारहम इम पव्व ॥

●

[१८. अट्ठारहमो संधि]

रणेँ माणु मलेँवि पुरन्दरहोँ परियञ्च वि सिहरइँ मन्दरहोँ ।
आवइ वि पडीवउ जाम पहु ताणन्तरेँ दिट्ठु अणन्तरहु ॥

[१]

पेक्खेप्पिणु गिरि-कञ्चण-सुसद्दु । जिण-वन्दण-दूरुच्छलिय-सद्दु ॥१॥
सुरवर-सय-सेव-करावणेण । मारिचि पपुच्छिउ रावणेण ॥२॥
'भड-मञ्जण-भुवणुच्छलिय-णाम । उहु कलयलु सुम्मइ काइँ माम' ॥३॥
त णिसुणेँवि पभणइ समर-धीरु । 'एहु जइ णामेण अणन्तवीरु ॥४॥
दसरह-मायरु अणरण्ण-जाउ । सहसयर-सणेहेँ तवसि जाउ ॥५॥
उप्पण्णउ एयहोँ एत्थु णाणु । उहु दीसइ देवागमु स-जाणु' ॥६॥

गन्धर्वोंके साथ सरस्वती गान करे, अग्नि हजारों वस्त्र धोये, कुबेर अशेष कोशकी देखभाल करे, चन्द्र सदैव प्रकाश करे, दिवाकर आकाशमे धीरे-धीरे तपे, अमरराज नहानेका पानी भराये और मेघोसे छिड़काव कराये।" सहस्रारने यह सब स्वीकार कर लिया, लंकानरेशने शक्रको मुक्त कर दिया ॥१-१०॥

घत्ता—अपना राज्य छोड़कर और प्रव्रज्या लेकर सहस्रार शाश्वत स्थानको चला गया और रावण जयश्रीरूपी वधूको अलंकृत कर अपने भुजस्तम्भोंसे उसका आलिंगन कर रहने लगा ॥११॥

धनंजयके आश्रित, स्वयम्भूदेवकृत पद्मचरितमें रावण-विजय नामक १७वाँ पर्व पूरा हुआ।

●

अठारहवीं संधि

युद्धमें इन्द्रका मान-मर्दन कर, सुमेरु पर्वतके शिखरोकी प्रदक्षिणा कर, जब दशानन लौट रहा था तो उसने अनन्तरथके दर्शन किये।

[१] जिसमें दूर-दूर तक जिनकी वन्दनाके शब्द उछल रहे हैं, ऐसे सुभद्र स्वर्णगिरिको देखकर, सुरवरोंसे अपनी सेवा करानेवाले रावणने मारीचसे पूछा, "योद्धाओंका संहार करनेवाले, प्रसिद्धनाम ससुर, वह क्या कोलाहल सुनाई दे रहा है?" यह सुनकर समरधीर मारीच कहता है, "यह अनन्तवीर नामके मुनि हैं, अणरण्णसे उत्पन्न दशरथके भाई, जो सहस्रकिरणके स्नेहके कारण तपस्वी हो गये थे इन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है,

त वयणु सुणेप्पिणु णिसियरिन्दु । गउ जेत्तहें तेत्तहें मुणिवरिन्दु ॥७॥
परियञ्चेंवि णवेँ वि थुणेँ वि णिविट्ठ। सयलु वि जणु वयइँ लयन्तु दिट्ठु॥८॥

घत्ता

महवयइँ को वि कोँ वि अणुवयइँ को वि सिक्खावयइँ गुणव्वयइँ ।
कोँ वि दिढु सम्मत्तु लएवि थिउ पर रावणु एक्कु ण उवसमिउ ॥९॥

[२]

धम्मरहु महारिसि भणइ तेत्थु । 'मणुयत्तु लहेँ वि वइसरेँ वि एत्थु॥१॥
अहोँ दहमुह मोहन्धारें छूढ । रयणायरेँ रयणु ण लेहि मूढ ॥२॥
अमियालएँ अमिउ ण लेहि केम । अच्छहि णिहुअउ कट्ठमउ जेम' ॥३॥
त वयणु सुणेप्पिणु दससिरेण । वुच्चइ थोत्तुग्गीरिय-गिरेण ॥४॥
'सक्कमि भूमद्धएँ झम्प देवि । सक्कमि फण-फणिमणि-रयणु लेवि ५॥
सक्कमि गिरि-मन्दरु णिद्दलेवि । सक्कमि दस दिसि-वह दरमलेवि ६॥
सक्कमि मारुइ पोट्टलेँ छुहेवि । सक्कमि जम-महिसेँ समारुहेवि ॥७॥
सक्कमि रयणायर-जलु पिएवि । सक्कमि आसीविसु अहि णिएवि ॥८॥

घत्ता

सक्कमि सक्कहोँ रणेँ उत्थरेँ वि सक्कमि ससि-सूरहँ पह हरेँ वि ।
सक्कमि महि गउणु एक्कु करेँ वि दुद्धरु णउ सक्कमि वउ धरेँ वि ॥९॥

[३]

परिचिन्तेँ वि सुइरु णराहितेण । 'लइ लेमि एक्कु वउ' वुत्तु तेण ॥१॥
'ज मइँ ण समिच्छइ चारु-गत्तु । तं मण्ड लएमि ण पर-कलत्तु' ॥२॥
गउ एम भणेप्पिणु णियय-णयरु । थिउ अचलु रज्जु भुञ्जन्तु खयरु ॥३॥
एत्तहेँ वि महिन्दु महिन्दु णामेँ । पुरवरेँ इच्छिय-अणुहूअ-कामेँ ॥४॥
तहोँ हिययवेय णामेण भज्ज । तहेँ दुहियअणसुन्दरी मणोज्ज ॥५॥

वह यानोंके साथ देवागम दिखाई दे रहा है।" यह शब्द सुन-कर निशाचरराज वहाँ गया जहाँ मुनिवरेन्द्र थे। प्रदक्षिणा, नमन और स्तुति कर वह वहाँ बैठ गया। उसने वहाँ लोगोंको व्रत ग्रहण करते हुए देखा ॥१-८॥

घत्ता—कोई महाव्रत, और कोई अणुव्रत। कोई शिक्षाव्रत और गुणव्रत। कोई देखा गया दृढ सम्यक्त्व लेता हुआ। परन्तु रावणने एक भी व्रत नहीं लिया ॥९॥

[२] तब धर्मरथ महामुनि वहाँ कहते है, "अरे रावण, मनुष्यत्व पाकर और यहाँ बैठकर मोहान्धकारसे छूट। मूर्ख रत्नाकरसे भी रत्न ग्रहण नही करता। अमृतालयसे अमृत क्यों नहीं लेता, एकाकी ऐसा बैठा है, जैसे काष्ठसे बना हो।" यह वचन सुनकर, रावण, स्तोत्रका उच्चारण करनेवाली वाणीमें बोला, "मैं आगको ढक सकता हूँ, शेषनागके फनसे मणि ग्रहण कर सकता हूँ, मन्दराचलको उखाड़ सकता हूँ, दसों दिशाओको चूर-चूर कर सकता हूँ, हवाको पोटलीमे बाँध सकता हूँ, यम-महिषपर चढ सकता हूँ, समुद्रका जल पी सकता हूँ, आशीविष साँपको ला सकता हूँ ॥१-८॥

घत्ता—युद्धमें इन्द्रको पकड सकता हूँ, चन्द्रमा और सूर्यकी प्रभा छीन सकता हूँ। धरती और आसमान एक कर सकता हूँ, परन्तु कठोर व्रत ग्रहण नही कर सकता" ॥९॥

[३] तब बहुत समय तक सोचनेके बाद, "लो, एक व्रत लेता हूँ" उसने कहा, "जो सुन्दरी मुझे नहीं चाहेगी, उस पर-स्त्रीको मै बलपूर्वक नहीं ग्रहण करूँगा।" यह कहकर वह अपने नगर चला गया और अपने अचल राज्यका उपभोग करने लगा। यहाँ भी 'महेन्द्र' नामका राजा अपनी इच्छाके अनुसार कामको भोग करता हुआ रहता था। उसकी हृदय-वेगा नामकी सुन्दर पत्नी थी। उसकी अंजना सुन्दरी नामकी

छिन्दुएण रमन्तिहेँ थण णिएवि । थिउ णरवइ मुहेँ कर-कमलु देवि॥६
उप्पण्ण चिन्त 'कहोँ कण्ण देमि । लइ वट्टइ गिरि-कइलासु णेमि ॥७॥
विज्जाहर-सयइँ मिलन्ति जेत्थु । वरु अवसे होसइ को वि तेत्थु' ॥८॥

घत्ता

गउ एम भणेँवि पहु पव्वयहोँ जिण-अट्टाहिएँ अट्टावयहोँ ।
आवासिउ पासेँहिं णीयडेँहिँ ण तारायणु मन्दर-तडेँहिँ ॥९॥

[४]

एत्तहेँ वि ताव पल्हाय-राउ । सहुँ केउमइएँ रविपुरहोँ आउ ॥१॥
स-विमाणु स-साहणु स-परिवारु । अण्णु वि तहिँ पवणञ्जय-कुमारु ॥२॥
एक्कत्तहेँ दूसावासु लइउ । णं वन्दणहत्तिएँ इन्दु अइउ ॥३॥
अवर वि जे जे आसण्ण-भव्व । ते ते विज्जाहर मिलिय सव्व ॥४॥
पहिलएँ फग्गुणणन्दीसराहेँ । किय ण्हवण-पुज्ज तइलोक्क-णाहेँ॥५॥
दिणेँ वीयएँ विहि मि णराहिवाहँ । मित्तइय परोप्परु हूअ ताहँ ॥६॥
पल्हाएँ खेड्डु करेवि वुत्तु । 'तउ तणिय कण्ण महु तणउ पुत्तु ॥७॥
किण कीरइ पाणिग्गहणु राय' । त णिसुणेँवि तेण वि दिण्ण वाय ॥८॥
परिओसु पवड्ढिउ सज्जणाहँ । मइलियइँ मुहइँ खल-दुज्जणाहँ ॥९॥

घत्ता

'वहु अञ्जण वाउकुमारु वरु' घोसेप्पिणु णयणाणन्दयरु ।
'तइयएँ वासरेँ पाणिग्गहणु' गय णरवइ णियय-णियय-भवणु १०॥

[५]

एत्थन्तरेँ दुज्जउ दुण्णिवारु । मयणाउरु पवणञ्जय-कुमारु ॥१॥
णउ विसहइ तइयउ दिवसु एन्तु । अच्छइ विरहाणलेँ झम्प देन्तु ॥२॥
धूमाइ वलइ धगधगइ चित्तु । ण मन्दिरु अब्भन्तरेँ पलित्तु ॥३॥
चन्दिणउ चन्दु चन्दणु जलद्दु । कप्पूर-कमलदलसेज्ज-सद्दु ॥४॥

सुन्दर कन्या थी। एक दिन गेद खेलते हुए उसके स्तन देखकर राजा अपने मुँहपर कर-कमल रखकर रह गया। उसे चिन्ता उत्पन्न हुई कि मै किसे कन्या दूँ, लो मै कैलास पर्वत ले जाता हूँ। जहाँ सैकडों विद्याधर मिलते है, वहाँ कोई न कोई वर अवश्य होगा ॥१-८॥

घत्ता—यह विचारकर जिन-अष्टाह्निकाके दिनोंमें राजा अष्टापद पर्वतपर गया और निकटके भागमें ठहर गया, मानो मन्दराचलके तटोंपर तारागण हों ॥९॥

[४] यहाँ भी आदित्यपुरसे प्रह्लादराज अपनी पत्नी केतुमतीके साथ आया और अपने विमान, सेना और परिवारके साथ, कुमार पवनंजय भी। उन्होंने एक जगह अपना तम्बू ताना, मानो वन्दनाभक्तिके लिए इन्द्र ही आया हो। और भी जो-जो आसन्नभव्य थे, वे सब विद्याधर वहाँ आकर मिले। पहले उन्होंने फागुन नन्दीश्वर त्रिलोकनाथकी अभिषेक-पूजा की। दूसरे दिन सब नराधिपोंकी परस्परमे मित्रता हुई। प्रह्लादने मजाक करते हुए पूछा, "तुम्हारी कन्या हमारा पुत्र, हे राजन्, विवाह क्यो नही कर देते।" यह सुनकर प्रह्लादराजने भी वचन दे दिया। सज्जनोको इससे सन्तोप हुआ, परन्तु खल और दुर्जनोके मुख मैले हो गये ॥१–९॥

घत्ता—"अंजना बहू, और वर—नेत्रोंको आनन्द देनेवाला वायुकुमार, तीसरे दिन विवाह" यह घोषणा कर राजा अपने-अपने घर चले गये ॥१०॥

[५] इसी बीचमे दुर्जय और दुर्निवार कुमार पवनंजय कामातुर हो उठा। आनेवाले तीसरे दिन को भी वह सहन नही कर सका, किसी तरह विरहानलको शान्त करनेका प्रयत्न करता है। उसका चित्त धुआँता है, मुडता है, धकधक करता है, जैसे घरमें भीतर ही भीतर आग लगी हो। चाँदनी चन्द्र

जलार्द्र-चन्दन-कपूर-कमलदलोंकी मृदु सेज, दक्षिणपवन और शीतल जल, उसके लिए केवल आगकी चिनगारियाँ थीं। अनंग उसके अंग-प्रत्यंगको जलाता है, उसी प्रकार, जिस प्रकार दुष्टोंका संग सज्जनोंके हृदयको। निश्वास लेता, साँस छोड़ता, (अज्ञानसे) काँपता, पंचम स्वरमें चिल्लाता, उत्तरीय आभरण और प्रसाधन सभी उसके अंगोको असुहावने लगते ॥१-८॥

घत्ता—पसीना-पसीना होने लगता, शरीर टूटता। उसकी अन्यमन चेष्टा और मुँह देखकर प्रहसित बोला, "कुमार, तुम दुर्बल क्यों हो गये" ॥९॥

[६] विरहाग्निसे जिसका मुँहकमल दग्ध हो गया है, ऐसे पवनंजयने कहा, "हे नेत्रोको आनन्द देनेवाले सुन्दरचित्त मित्र, मेरे लिए तीसरा भी दिन असह्य है, यदि मैं आज प्रियतमा का मुँह नही देखता तो कल मेरा मरण निश्चित है।" यह सुनकर प्रहसित, जिसका मुख कमलके समान है, बोला, "नागराजके सिरका भी रत्न किस गिनतीमें है? फिर यह कितनी-सी बात है कि जिसके लिए तुम इतने दुखी हो। क्या पवनका कही भी प्रवेश असम्भव है?" इस प्रकार तपस्वीका रूप बनाकर रातमे दोनों गये। उन्होने जालीके गवाक्षमें बाला-को बैठे हुए देखा, मानो कामदेवके बाण धनुष और तूणीरकी माला हो। जिसके वियोग में कामदेव ही स्वयं मर रहा हो, उसके रूपका वर्णन कौन कर सकता है? ॥१-८॥

घत्ता—उस वधूको देखकर प्रहसितको परितोप हुआ और उसने वरकी प्रशंसा की, "तुम्हारा जीवन सफल है, जिसके हाथ अनन्तश्रीवाली यह स्त्री हाथ लगेगी" ॥९॥

[७] इसके अनन्तर, अष्टमीके चन्द्रके समान है भाल जिसका ऐसी अंजना सुन्दरीका मुख देखकर, वसन्तमाला कहती है, "हे आदरणीये, तुम्हारा मनुष्यजन्म

तं णिसुणेँवि दुम्मुह दुट्ठ-वेस। सिरु विहुणेँ वि भणइ वि मीलकेस॥३॥
'सोदामणिपहु पहु परिहरेवि। थिउ पवणु कवणु गुणु सभरेवि॥४॥
जं अन्तरु गोपय-सायराहुँ। जं जोइङ्गणहँ दिवायराहुँ॥५॥
जं अन्तरु केसरि-कुञ्जराहँ। जं कुसुमाउह-तित्थङ्कराहँ॥६॥
जं अन्तरु गरुड-महोरगाहुँ। ज अमरराय-पहरण-णगाहुँ॥७॥
जं पुण्डरीय-चन्दुज्जयाहुँ। त विज्जुप्पहु-पवणञ्जयाहुँ'॥८॥

घत्ता

आएँहि आलावेँहिँ कुविउ णरु थिउ भीसणु उक्खय-खग्ग-करु।
'किं वयणेँहिँ वहुएहि वाहिरेँहिँ रिउ रक्खउ विहि मि लेमि सिरइँ'॥९॥

[८]

कडु-अक्खरेण परिभासिरेण। करेँ धरिउ पहञ्जणु पहसिएण॥१॥
'जं करि-सिर-रयणुज्जलिय(?)देव। त असिवरु मइलहि एत्थु केम॥२॥
लज्जिज्जहि वोल्लहि णाइँ मुक्खु'। णिउ णिय-आवासहोँ दुक्खु दुक्खु॥३
दस-वरिस-सरिस गय रयणि तासु। रवि उग्गउ पसरिय-कर-सहासु॥४॥
कोक्कावेँ वि णरवइ पवर वर (?) हय भेरि पयाणउ दिण्णु णवर॥५॥
अञ्जणसुन्दरिहेँ तुरन्तएण। उम्माहउ लाइउ जन्तएण॥६॥
सचल्लइ पउ पउ जेम जेम। कम्पिज्जइ हियवउ तेम तेम॥७॥
तेहएँ अवसरेँ वहु-जाणएहिँ। कर-चरण धरेप्पिणु राणएहिँ॥८॥

घत्ता

वलि-वण्ड मण्ड परियत्तियउ तेण वि उवाउ परिचिन्तियउ।
'लइ एक्कवार करयले धरेवि पुणु वारह वरिसइँ परिहरेहि'॥९॥

पवनंजय-जैसा पति मिला।" यह सुनकर कोई दुर्मुख दुष्टवेश-वाली अपना सिर पीटती हुई मिथकेशी बोली, "प्रभु विद्युत्प्रभ-को छोड़कर, पवनंजयकी याद करनेमें कौन सा गुण है? जो अन्तर गोपद और समुद्रमें, जो जुगनू और सूर्यमे, जो अन्तर सिंह और गजमे, जो कामदेव और तीर्थंकरमे, जो अन्तर गरुड़ और महानागमे, जो वज्र और पर्वतराजमे, जो पुण्डरीक और चन्द्रमामे है वही विद्युत्प्रभ और पवनंजयमें है" ॥१-८॥

घत्ता—इन आलापोंसे पवनंजय कुपित हो गया, उसने अपने हाथमें तलवार निकाल ली और बोला, "बाहरी औरतों और वचनोंसे क्या शत्रु रक्षित है? मै दोनोंका सिर लेता हूँ" ॥९॥

[८] तब, कटु-अक्षरोंसे तिरस्कृत प्रहसितने पवनंजयका हाथ पकड लिया और कहा, "हे देव, जो असिवर गजोंके सिरोंके रत्नोंसे उज्ज्वल है, उसे इस प्रकार मैला क्यों करते हो, तुम्हें लज्जा आनी चाहिए कि तुम मूर्खकी तरह बोलते हो।" वह बड़ी कठिनाईसे उसे अपने आवासपर ले गया। उसकी रात दस वर्षके समान बीती। सवेरे अपनी हजारो किरणे फैलाता हुआ सूर्य निकला। राजाने श्रेष्ठ लोगोको बुलाया, भेरी बजा दी गयी। अंजनासुन्दरीके लिए तुरन्त कूच करवा दिया गया। परन्तु जाते हुए वह उन्मत्त हो गया। जैसे-जैसे वह एक पग चलता वैसे-वैसे उसका हृदय काँप उठता। उस अवसरपर बहुत-से जानकार राजाओने उसके हाथ-पैर पकड़कर ॥१-८॥

घत्ता—जबरदस्ती उसे मोड़ा। उसने भी अपने मनमे उपाय सोच लिया। "एक बार उसका पाणिग्रहण कर, फिर बारह वर्षके लिए छोड़ दूँगा" ॥९॥

[९]

तो दुक्खु दक्खु दुम्मिय-मणेण । किउ पाणिग्गहणु पहञ्जणेण ॥१॥
थिउ वारह वरिसइँ परिहरेवि । णवि सुभइ आलवइ सुइणवे(?)वि॥२॥
वारे वि ण जाइ ण (?) जेम जेम । खिज्जइ झिज्जइ पुणु तेम तेम ॥३॥
डज्झन्तउ उरु विरहाणलेण । ण वुज्झावइ असुअ-जलेण ॥४॥
परिवार-भित्ति-चित्ताइँ जाइँ । णीसास-धूम-मलियाइँ ताइँ ॥५॥
ढिल्लइँ आहरणइँ परियलन्ति । ण णेह-खण्ड-खण्डइँ पडन्ति ॥६॥
गउ रुहिरु णवर थिउ अट्ठणु अत्थि । णउ णावइ जीविउ अत्थि णत्थि ॥७॥
तहि तेहएँ कालेँ दसाणणेण । सुरवर-कुरङ्ग-पञ्चाणणेण ॥८॥

घत्ता

जो दुम्मुहु दूउ विसज्जिय सो आयउ कप्प-विवज्जियउ ।
हय समर-भेरि रहवरेँ चडिउ रणेँ रावणु वरुणहोँ अब्भिडिउ ॥९॥

[१०]

एत्थन्तर वरुणहोँ णन्दणेहिँ । समरङ्गणेँ वाहिय-सन्दणेहिँ ॥१॥
राजीव-पुण्डरीएहिँ पवर । खर-दूसण पाडेँ वि धरिय णवर ॥२॥
गय पवण-गमण केण वि ण दिट्ठ । सहुँ वरुणे जल-दुग्गमेँ पइट्ठ ॥३॥
'सालयहुँ म होसइ कहि मि घाउ' । उव्वेढ वि गउ रयणियर-राउ ॥४॥
णीसेस-दीव-दीवन्तराहुँ । लहु लेह दिण्ण विज्जाहराहुँ ॥५॥
अवरेक्कु रणङ्गणेँ दुज्जयासु । पट्ठविउ लेहु पवणञ्जयासु ॥६॥
तं पेक्खेँवि तेण वि ण किउ खेउ । णीसरिउ स-साहणु वाउ-वेउ ॥७॥
थिय अन्जण कलसु लएवि वारेँ । णिब्भच्छिय 'ओसरु दुट्ठ दारेँ' ॥८॥

[९] तब उसने बड़ी कठिनाई और दुर्मनसे विवाह किया। उसने बारह वर्षके लिए छोड दिया। स्वप्नमें भी न याद करता और न बात करता। जैसे-जैसे वह उसके द्वार तक नहीं जाता, वैसे-वैसे वह बेचारी खिन्न होती और छीजती। उसका हृदय विरहाग्निमे जलने लगा, मानो वह उसे आँसुओके जलसे बुझाती। परिवारकी दीवालोंपर जितने चित्र थे, वे सब उसके विश्वासके धुएँसे मैले हो गये। ढीले आभूषण इस प्रकार गिर पडते, जैसे उसके स्नेहके खण्ड-खण्ड हो गिर रहे हों। रुधिर सूख गया। केवल चमड़ा और हड्डियाँ बची थीं। यह मालूम नहीं पड़ता था कि 'जीव है या नहीं'। ठीक इसी अवसरपर सुरवररूपी कुरंगोंके लिए सिंहके समान दशाननने ॥१-८॥

घत्ता—जो दुर्मुख नामका दूत भेजा था, और जो समय-समयसे रहित है (जिसका कोई समय निश्चित नहीं है), ऐसा दूत आया। उसने कहा, "समरभेरी बज चुकी है, और रावण रथवरपर चढकर युद्धमें वरुणसे भिड़ गया है" ॥९॥

[१०] इसी बीच वरुणके पुत्रों, राजीव-पुण्डरीक आदिने युद्धमे अपने रथ आगे बढाते हुए प्रवर खरदूषणको धरतीपर गिरा दिया। पवनगामी भी गये, उन्हें किसीने नही देखा, और वरुणके साथ जलदुर्गमें प्रविष्ट हो गये। 'सालोंपर हमला न हो' (यह सोचकर) उन्मुक्त निशाचर-राज रावण भी वहाँ गया है। उसने समस्त द्वीप-द्वीपान्तरोंके विद्याधरोके लिए लेखपत्र भेजा है। एक लेख युद्ध-प्रांगणमें अजेय पवनंजयके लिए भी भेजा है। उस लेखपत्रको देखकर पवनंजयने, जरा भी खेद नहीं किया और सेनाके साथ कूच किया। अंजना द्वारपर कलश लेकर खडी थी। उसने उसे अपमानित किया, "हे दुष्ट स्त्री, हट" ॥१-८॥

घत्ता

तं णिसुणेँ वि असु फुसन्तियएँ वुच्चइ लीहउ कड्ढन्तियएँ।
'अच्छन्तें अच्छिउ जीउ महु जन्तें जाएसइ पइँ जि सहुँ' ॥९॥

[११]

तं वयणु पडिउ ण असि-पहारु। अवहेरि करेप्पिणु गउ कुमारु ॥१॥
मासण-सरवरेँ आवासु मुक्कु। अत्थवणहोँ ताम पयङ्गु ढुक्कु ॥२॥
दिट्ठइँ सयवत्तइँ मउलियाइँ। पिय-विरहिय-महुअरि-मुहलियाइँ॥३॥
चक्की वि दिट्ठ विणु चक्कएण। वाहिज्जमाण मयरद्धएण ॥४॥
विहुणन्ति चञ्चु पञ्चाहणन्ति। विरहाउर पक्कन्दन्ति धन्ति ॥५॥
त णिएँ वि जाउ तहोँ कलुण-भाउ। 'मइँ सरिसउ अण्णु ण को वि पाउ॥६॥
ण कयाइ वि जोइउ णिय-कलत्तु। अच्छइ मयणग्गि-पलित्त-पत्तु ॥७॥
परिअत्तें वि समाणिउ ण जाम। रणेँ वरुणहोँ जुज्झु ण देहि ताम'॥८॥

घत्ता

सब्भाउ सहायहोँ कहिउ तुणु पहसिएँण वुत्तु 'एँहु परम-गुणु'।
उप्पएँ वि णहङ्गणेँ वे वि गय ण सिय-अहिसिञ्चणेँ मत्त गय ॥९॥

[१२]

णिविसेण अत्त अञ्जणहेँ भवणु। पच्छण्णु होवि थिउ कहि मि पवणु॥१॥
गउ पहसिउ अब्भन्तरेँ पइट्ठु। पणवेप्पिणु पुणु आगमणु सिट्ठु ॥२॥
'परिपुण्ण मणोरह अज्जु देवि। हउँ आयउ वाउकुमारु लेवि' ॥३॥
त णिसुणेँवि भणइ वसन्तमाल। थोरसु-सित्त-थण-अन्तराल ॥४॥
'भव-भव-सञ्चिय-दुह-भायणाएँ। एवड्डु पुण्णु जइ अञ्जणाएँ ॥५॥
तो किं वेयारहि' रुअइ जाव। सयमेव कुमारु पइट्ठु ताव ॥६॥

घत्ता—यह सुनकर, आँसू पोंछते हुए और लकीर खीचते हुए उसने कहा, "तुम्हारे रहते हुए ही मेरा जीव है, तुम्हारे जानेपर वह भी साथ चला जायेगा" ॥९॥

[११] यह वचन कुमारको असिप्रहारकी तरह लगा। वह उसकी उपेक्षा करके चला गया। मानस-सरोवरपर उसने अपना डेरा डाला। तबतक सूर्यास्त हो गया। कमल मुकुलित दिखाई देने लगे, प्रियके वियोगमे मधुकरियाँ मुखरित हो उठी, चकवी भी बिना चकवेके, कामदेवके द्वारा पीडित दिखाई दी, चोंचको पीटती और पंखोंको नष्ट करती हुई, विरहातुर वह चिल्लाती और दौडती हुई। उसे देखकर कुमारको करुणभाव उत्पन्न हो गया। (वह सोचता है)— "मेरे समान कोई दूसरा पापी नही है, मैने अपनी पत्नीकी ओर देखा तक नही, वह कामकी ज्वालाओंमे जल रही है। जबतक लौटकर मै उसका सम्मान नहीं करता, तबतक वरुणके युद्धमे मै नही लडूँगा" ॥१-८॥

घत्ता—अपने सहायकसे उसने अपना सद्भाव बताया। प्रहसितने भी कहा, "यह अच्छी बात है।" आकाशमें उडकर दोनों गये, मानो लक्ष्मीका अभिषेक करनेके लिए दो महागज जा रहे हो ॥९॥

[१२] निमिप मात्रमे वे अंजनाके भवनमें जा पहुँचे। पवनकुमार कही छिपकर बैठ गया। प्रहसित भीतर घुसा और प्रणाम करते हुए, उसे आगमन बताया, "हे देवी, आज तुम्हारा मनोरथ परिपूर्ण है, मै पवनकुमारको लेकर आया हूँ।" यह सुनकर वसन्तमाला, जिसका स्तनोके बीचका हिस्सा आँसुओसे गीला हो गया है, बोली, "यदि अजनाका इतना बडा पुण्य है तो क्या सोचते हो"। (यह कहकर) वह जबतक

महुरक्खर विणयालाव लिन्तु । आणन्दु सोक्खु सोहग्गु दिन्तु ॥७॥
पल्लङ्के चडिउ करें लेवि देवि । विहसन्त-रमन्तइँ थियइँ वे वि ॥८॥

घत्ता

स इँ भु वहिं परोप्परु लिन्ताइँ सरहसु आलिङ्गणु दिन्ताइँ ।
णीसन्धि-गुणेण ण णायाइँ दोण्णि वि एक्कं पिव जायाइँ ॥९॥

इय रामएवचरिए धणञयासिय-सयम्भुएव-कए ।
'प व णञ्ज णा वि वा हो' अट्ठारहमं इम पव्वं ॥

●

[१९. एगुणवीसमो संधि]

पच्छिम-पहरेँ पहञ्जणेॅण आउच्छिय पिय पवसन्तएॅण ।
'तं मरुसेज्जहि मिगणयणि ज मइँ अवहत्थिय मन्तएण' ॥

[१]

जन्तएण आउच्छिय ज परमेसरी ।
थिय विसण्ण हेट्ठामुह अञ्जणसुन्दरी ॥१॥

कर मउलिकरेप्पिणु विण्णवइ । 'रयसलहेँ गब्भु जइ सम्भवइ ॥२॥
तो उत्तरु काइँ देमि जणहोँ । ण वि सुज्झइ एउ मज्झु मणहोँ' ॥३॥
चित्तेण तेण सुपरिट्ठवेँ वि । कङ्कणु अहिणाणु समल्लवेँ वि ॥४॥
गउ णरवइ सहुँ मित्तेण तहिँ । माणससरेँ दूसावासु जहिँ ॥५॥
गुरुहार हूअ एत्तहेँ वि सइ । कोक्कावेँ वि पभणइ केउमइ ॥६॥
'एउ काइँ कम्मु पइँ आयरिउ । णिम्मलु महिन्द-कुलु धूसरिउ ॥७॥

रोती है कि कुमार प्रवेश करता है। मधुर अक्षर और विनया-लाप करते हुए, आनन्द-सुख और सौभाग्य देते हुए, एक दूसरेका हाथ लेते-देते हुए वे पलंगपर चढ़े। दोनों हँसने और रमण करने लगे ॥१-८॥

घत्ता—अपनी बाँहोंमें एक दूसरेको लेते हुए सहर्ष आलिंगन देते हुए दोनों एक हो गये और उन्हें वियोगकी बात ज्ञात नहीं रही ॥९॥

इस प्रकार धनंजयके आश्रित स्वयम्भूदेव कृत 'पवनंजय-विवाह' नामका अठारहवाँ यह पर्व समाप्त हुआ।

●

उन्नीसवीं सन्धि

अन्तिम पहरमें प्रवास करते हुए पवनंजयने प्रियासे कहा, "हे मृगनयनी, जो मैंने भ्रान्तिके कारण तुम्हारा अनादर किया, उसे क्षमा करो।"

[१] जाते हुए प्रियने जब परमेश्वरीसे यह पूछा तो अजनासुन्दरीने दुःखी होकर अपना मुँह नीचा कर लिया। वह हाथ जोड़कर प्रार्थना करती है, "रजस्वला होनेसे यदि गर्भ रह जाता है तो लोगोंको मैं क्या उत्तर दूँगी? यह बात मेरी समझमें नहीं आ रही है?" तब उसके चित्तके विश्वास और पहचानके लिए कंगन देकर कुमार पवनंजय अपने मित्रके साथ वहाँ गया, जहाँ मानसरोवरमें उसका तम्बू था। यहाँ वह सती गर्भवती हो गयी। तब केतुमती उसे बुलाकर कहती है, "यह तूने किस कर्मका आचरण किया है, निर्मल

दुव्वार-वइरि-विणिवाराहों। मुहु मइलिउ सुअहों महाराहों' ॥८॥
तं सुणेंवि वसन्तमाल चवइ। 'सुविणे वि कलङ्कु ण सम्भवइ ॥९॥

घत्ता

इमु कङ्कणु इमु परिहणउ इमु कञ्चीदामु पहञ्जणहों।
ण तो का वि परिक्ख करें परिसुज्झहुं जेण मज्झें जणहों ॥१०॥

[२]

तं णिसुणन्ति वेवन्ति समुट्ठिय अप्पुणु।
वे वि ताउ कसघाएँहि हयउ पुणुप्पुणु ॥१॥
'किं जारहों णाहिं सुवण्णु घरें। जें कडउ घडावेंवि छुहइ करें ॥२॥
अण्णु वि एत्तिउ सोहग्गु कउ। जें कङ्कणु देइ कुमारु तउ' ॥३॥
कडुअक्खर-पहर-भयाउरउ। सजायउ वे वि णिरुत्तरउ ॥४॥
हक्कारेंवि पभणिउ कूर-भडु। 'हय जोत्तें महारह-वीढें चडु ॥५॥
एयउ दुट्ठउ अवलक्खणउ। ससि-धवलामल-कुल-लञ्छणउ ॥६॥
माहिन्दपुरहों दूरन्तरेंण परिघिववि आउ सहुँ रहवरेंण ॥७॥
जिह मुअहुँ ण आवइ वत्त महु', तं णिसुणेंवि सन्दणु जुत्तु लहु ॥८॥
गउ वे वि चडावेंवि णवर तहिं। सामिणि-केरउ आएसु जहिं ॥९॥

घत्ता

णयरहों दूरें वरन्तरेंण अञ्जण रुवन्ति ओआरिया।
'माएँ खमेज्जहि जामि हउँ' सहुँ धाहएँ पुणु जोक्कारिया ॥१०॥

[३]

कूर-वीरें परिअत्तएँ रवि अत्थन्तओ।
अञ्जणाएँ केरउ दुक्खु व असहन्तओ ॥१॥
भीषण-रयणिहिं भीसण अडइ। खाइ व गिलइ व उवरि व पडइ ॥२॥
भिंभियइ व भिङ्गारी-रवेंहिं। रुवइ व सिव-सद्देंहिं रउरवेंहिं ॥३॥

महेन्द्रकुलको तूने कलंक लगाया है, दुर्वार वैरियोंका निवारण करनेवाले मेरे पुत्रका मुख मैला कर दिया।" यह सुनकर वसन्तमाला कहती है, "स्वप्नमे भी कलंककी सम्भावना नही है ॥१-९॥

घत्ता—यह कंगन, यह परिधान और यह सोनेकी माला कुमार पवनंजय की है। नही तो कोई परीक्षा कर लो जिससे लोगोके बीच हम शुद्ध सिद्ध हो जाये" ॥१०॥

[२] यह सुनकर केतुमती स्वयं कॉपती हुई उठी। उसने दोनोंको कोडोसे बार-बार मारा। "क्या यारके घरमे सोना नहीं है, जो कड़े गढवाकर हाथमे पहना सकता है। और तुम्हारा इतना सौभाग्य कैसे हो सकता है कि कुमार तुम्हे कगन दे।" उसके कटु वचनोके प्रहारके डरसे व्याकुल होकर वे दोनो चुप हो गयी। उसने क्रूर भटको बुलाकर कहा, "घोड़े जोतो और महारथकी पीठपर चढो, कुलक्षणी चन्द्रमाके समान पवित्र कुलको कलंक लगानेवाली इस दुष्टाको महेन्द्रपुरसे बहुत दूर रथसे छोड आओ, जिससे इसकी बात मुझ तक न आये।" यह सुनकर उसने शीघ्र रथ जोता, उन दोनोको चढाकर वह केवल वहाँ गया जहॉके लिए स्वामिनीका आदेश था ॥१-९॥

घत्ता—नगरसे दूर वनान्तरमे उसने रोती हुई अंजनाको उतार दिया, "आदरणीये क्षमा करना, मैं जाता हूँ" यह कहकर जोरसे रोते हुए नमस्कार किया ॥१०॥

[३] "क्रूर वीरके वापस होनेपर सूरज डूब गया, मानो वह अंजनाका दुःख सहन नहीं कर पा रहा था। भीषण रातमे अटवी और भी भयानक थी, जैसे खाती हुई, लीलती हुई, ऊपर गिरती हुई, भृंगारोंके शब्दोसे डराती हुई, सियारोंके

पुप्फुवइ व फणि-फुक्कारएँ हिं । धुक्कइ व पमय-धुक्कारएँहिं ॥४॥
सा दुक्खु दुक्खु परियलिय णिसि । दिणयरेंण पसाहिय पुव्व-दिसि ॥५॥
गइयउ णिय-णयरु पराइयउ । अग्गएँ पडिहारु पधाइयउ ॥६॥
'परमेसर आइय मिग-णयण । अञ्जणसुन्दरि सुन्दर-वयण' ॥७॥
तं सुणेंवि जाय दिहि णरवरहों । 'लहु पट्टणें हट्ट-सोह करहों ॥८॥
उब्भहों मणि-कञ्चण-तोरणइँ । वर-वेसउ लेन्तु पसाहणइँ ॥९॥

घत्ता

सव्व पसाहहों मत्त गय पल्लाणहों पवर तुरङ्ग-थड ।
(जय-) मङ्गल-तूरइँ आहणहों सवडम्मुह जन्तु असेस भड ॥१०॥

[४]

भणेंवि एम पडिपुच्छिउ पुणु वद्धावओ ।
'कइ तुरङ्ग कइ रहवर को वोलावओ' ॥१॥

पडिहारु पवोल्लिव अतुल-वलु । 'णउ को वि सहाउ ण किं पि वलु॥२॥
अञ्जण वसन्तमालाएँ सहुँ । आइय पर एत्तिउ कहिउ महु ॥३॥
एक्कएँ असुअ-जल-सित्त-थण । दीसइ गुरुहार विसण्ण-मण' ॥४॥
तं णिसुणेंवि थिउ हेट्ठामुहउ । ण णरवइ सिरें वज्जेण हउ ॥५॥
'दुस्सील दुट्ठ म पइसरउ । विणु खेवें णयरहों णीसरउ' ॥६॥
वभणइ आणन्दु मन्ति सुचवि । अपरिक्खिउ किज्जइ कज्ज ण वि ॥७॥
सासुअउ होन्ति विरुआरिउ । महसइहेँ वि अवगुण-गारियउ ॥८॥

घत्ता

सुकइ-कहहों जिह खल-मइउ हिम-वद्दलियउ कमलिणिहिं जिह ।
होन्ति सहावें वइरिणिउ णिय-सुण्हहें खल-सासुअउ तिह ॥९॥

भयंकर शब्दोंसे रोती हुई, साँपोंकी फूत्कारसे फुफकारती हुई, बन्दरोंकी बुक्कारसे घिघियाती हुई-सी ! बडी कठिनाईसे वह रात बीती। और पूर्व दिशामे सूर्य हँसा। जाती हुई वह किसी तरह अपने पिताके नगर पहुँची। प्रतिहारने आगे जाकर कहा, "हे परमेश्वर ! मृगनयनी, सुन्दरमुखी अजना आयी है।" यह सुनकर राजाको सन्तोष हुआ। (उसने कहा) 'शीघ्र नगरमें बाजारकी शोभा कराओ, मणिस्वर्णके वन्दनवार सजाओ, सुन्दर वेष और प्रसाधन कर लिये जाये ॥१-९॥

घत्ता—सभी मत्तगज सजा दिये जाये, प्रवर अश्वोंको पर्याणसे अलंकृत कर दिया जाये, 'सामने जाती हुई समस्त भटसेना जयमंगल तूर्य बजाये" ॥१०॥

[४] यह कहकर बधाई देनेवाले राजाने पूछा—"कितने घोड़े, कितने रथवर और साथ कौन आया है ?" तब अतुलबल प्रतिहारने उत्तर दिया, "न तो कोई सहायक है, और न कोई सेना है ? अंजना वसन्तसेनाके साथ आयी है, मुझसे केवल इतना कहा गया है, सिर्फ आँसुओके जलसे उसके स्तन गीले हो रहे है, वह गर्भवती और दु खी दिखाई देती है।" यह सुनकर राजा नीचा मुँह करके रह गया, मानो किसीने उसके सिरपर वज्र मारा हो। वह बोला, "दुष्ट दुःशील उसे प्रवेश मत दो, बिना किसी देरके नगरसे बाहर निकाल दो।" इसपर विचार कर आनन्द मन्त्री कहता है, "बिना परीक्षा किये कोई काम नहीं करना चाहिए, सासे बहुत बुरी होती है, वे महासतियोंको भी दोष लगा देती है ॥१-८॥

घत्ता—जिस प्रकार सुकविकी कथाके लिए दुष्टकी मति, और जिस प्रकार कमलिनीके लिए हिमघन, उसी प्रकार अपनी बहुओके लिए दुष्ट साँसे स्वभावसे शत्रु होती है" ॥९॥

[५]

सासुआण सुण्हाण जणे सुपसिद्धइं।
एक्कमेक्क-वइराइँ अणाइ-णिबद्धइं'॥१॥

भत्तार भणेसइ जं दिवसु। विरुआरी होसइ त दिवसु' ॥२॥
वयणेण तेण मन्तिहिँ तणेण। आरुट्ठु पसण्णकित्ति मणेण ॥३॥
'किं कन्तएँ णेह-विहूणियएँ। किं कित्तिएँ वइरिहिं जाणियएँ ॥४॥
किं सु-कहएँ णिरलङ्कारियएँ। किं धीयएँ लञ्छण-गारियएँ ॥५॥
घरेँ अञ्जण समरङ्गणेँ पवणु। गब्भहोँ सबन्धु एत्थु कवणु' ॥६॥
त णिसुणेँ वि णरेँण णिवारियउ। पडहउ देप्पिणु णीसारियउ ॥७॥
वणु गम्पि पइट्ठउ भीसणउ। धाहाविउ पहणेँवि अप्पणउ ॥८॥
'हा विहि हा काइँ कियन्त किउ। णिहि दरिसेँ वि लोयण-जुयलुहिउ'॥९॥

घत्ता

विहि मि कलुणु कन्दन्तियहि वणेँ दुक्खे को व ण पेल्लियउ।
सच्छन्देहिँ चरन्तएँहिँ हरिणेहिँ वि दोवउ मेल्लियउ ॥१०॥

[६]

वारवार सोआउर रोवइ अञ्जणा।
'का वि णाहिँ मइँ जेही दुक्खहँ भायणा ॥१॥

सासुअएँ हयासएँ परिहविय। हा माएँ पइँ वि णउ सथविय ॥२॥
हा माइ-जणेरहोँ णिट्ठुरहोँ। णीसारिय कह रुयन्ति पुरहोँ ॥३॥
कुलहर-पइहरहि मि दइयहु मि। पूरन्तु मणोरह सव्वहु मि' ॥४॥
गब्भेसरि जउ जउ संचरइ। तउ तउ रुहिरहोँ छिल्लरु भरइ ॥५॥
तिस-भुक्ख-किलामिय चत्त-सुह। गय तेत्थु जेत्थु पलियङ्क-गुह ॥६॥
तहि दिट्ठु महारिसि सुद्धमइ। णामेण भडारउ अमियगइ ॥७॥
अत्तावण-तावेँ ताविय्उ। छुडु जेँ छुडु जोग्गु सम्भावियउ ॥८॥
तहि अवसरेँ वे वि पढुक्कियउ। ण दुक्ख-किलेसहिँ मुक्कियउ ॥९॥

[५] "लोगोमें यह प्रसिद्ध है कि सासों और बहुओंका एक दूसरेके प्रति वैर अनादिनिबद्ध है। जिस दिन पति इस बातका विचार करेगा, उस दिन बहुत बुरा होगा।" लेकिन मन्त्रीके इन वचनोंसे राजा प्रसन्नकीर्ति अपने मनमें क्रुद्ध हो उठा। वह बोला, "स्नेहहीन पत्नीसे क्या? शत्रुको जाननेवाली कीर्तिसे क्या? अलंकार-विहीन सुकविकी कथासे क्या? कलंक लगानेवाली लड़कीसे क्या? घरमे अंजना, और युद्धमें पवनंजय, यहाँ गर्भका सम्बन्ध कैसा?" यह सुनकर एक नरने अंजनाका निवारण कर दिया और ढोल बजाकर निकाल दिया। वह भीषण वनमें घुसी। और अपनेको पीटती हुई जोर-जोरसे चिल्लायी, "हे विधाता, हे कृतान्त, तुमने यह क्या किया, तुमने निधि दिखाकर दोनों नेत्र हर लिये ॥१–९॥

घत्ता—करुण विलाप करती हुई उन दोनोने वनमें किसको द्रवित नही किया, यहाँ तक कि स्वच्छन्द चरते हुए हरिणोंने भी मुँहका कौर छोड दिया ॥१०॥

[६] अजना शोकातुर होकर बार-बार रोती है कि "ऐसी कोई भी नहीं, जो मेरे समान दुखकी भाजन हो। हताश सासने तो मुझे छोडा ही, परन्तु हे माँ, तुमने भी मुझे सहारा नहीं दिया, हे निष्ठुर भाई और पिता, तुम लोगोंने रोती हुई मुझे नगरसे कैसे निकाल दिया। अब कुलगृह, पतिगृह, पति भी सभीके मनोरथ पूरे हो।" गर्भवती वह जैसे-जैसे चलती वैसे-वैसे खूनका घूँट पीकर रह जाती। सुखोसे परित्यक्त, प्यास और भूख से तिलमिलाती हुई वे दोनो वहाँ गयी, जहाँ पर्यंकगुहा थी। वह उन्होंने शुद्धमति महामुनि आदरणीय अमितगतिके दर्शन किये। आत्माके तपको करनेवाले जो योग्य और क्षमाशील थे। उस अवसरपर वे दोनो वहाँ पहुँची, मानो दुख और क्लेशसे वे सूख चुकी थी ॥१–९॥

घत्ता

चलण णवेप्पिणु मुणिवरहों अञ्जण विण्णवइ लुहन्ति मुहु ।
'अण्ण-भवन्तरेँ काइँ मइँ किउ दुक्किउ जे अणुहवमि दुहु' ॥१०॥

[७]

पुणु वसन्तमालाएँ वुत्तु 'णउ तेरउ ।
एउ सव्वु फलु एयहों गब्भहों केरउ' ॥१॥

तं णिसुणेँवि विगय-राउ-भणइ । 'एँउ गब्भहों दोसु ण सम्भवइ' ॥२॥
जइ घोसइ 'होसइ तणउ तउ । एँहु चरिम-देहु रणेँ लद्ध-जउ ॥३॥
पइँ पुव्व-भवन्तरेँ सइँ करेँण । जिण-पडिम सवत्तिहेँ मच्छरेँण ॥४॥
परिघित्त पत्त त एहु दुहु । एवहिँ पावेसहि सयल-सुहु' ॥५॥
गउ एम भणेप्पिणु अमियगइ । ताणन्तरेँ ढुक्कु मयाहिवइ ॥६॥
विहुणिय-तणु दूरुग्गिण्ण-कमु । सणि असणि णाइँ जमु काल-समु ॥७॥
कुञ्जर-सिर-रुहिरारुण-णहरु । कीलाल-सित्त-केसर-पसरु ॥८॥
अइ-वियड-दाढ-फाडिय-वयणु । रत्तुप्पल-गुञ्ज-सरिस-णयणु ॥९॥
खय-सायर-रव-गम्भीर-गिरु । लङ्गूल-दण्ड-कण्डुइय-सिरु ॥१०॥

घत्ता

त पेक्खेँवि हरिणाहिवइ अञ्जण स-मुच्छ महियलेँ पडइ ।
विज्जा-पाणएँ उप्पएँवि आयासेँ वसन्तमाल रडइ ॥११॥

[८]

'हा समीर पवणञ्जय अणिल पहञ्जणा ।
हरि-कियन्त-दन्तन्तरेँ वट्टइ अञ्जणा ॥१॥

हा कम्मु काइँ किउ केउमइ । खलेँ मुइय लहेसहि कवण गइ ॥२॥
हा ताय महिन्द मइन्दु धरेँ । सु-पसण्णकित्ति पडिरक्ख करेँ ॥३॥
हा मायरि तुहु मि ण सथवहि । मुच्छाविय दुहिय समुत्थवहि ॥४॥
गन्धव्वहों देवहों दाणवहों । विज्जाहर-किण्णर माणवहों ॥५॥

घत्ता—मुनिवरके चरणोंकी वन्दना कर, अंजना अपना मुँह पोंछती हुई निवेदन करती है, "मैंने अन्यभवमें ऐसा कौन-सा पाप किया, जिससे दुखका अनुभव कर रही हूँ" ॥१०॥

[७] तब वसन्तमाला बोली, "यह तेरा नहीं, यह सब फल तेरे गर्भका है ?" यह सुनकर वीतराग मुनि कहते हैं—"यह गर्भका दोप नहीं है।" यति घोपणा करते है, "यह चरम शरीरी और युद्ध विजय प्राप्त करनेवाला है। तुमने पूर्वजन्म-में अपने हाथसे सौतकी ईर्ष्याके कारण जिनप्रतिमाको फेंका था, उसी कारण इस दुखको प्राप्त हुई। अब तुम्हें समस्त सुख प्राप्त होगा।" यह कहकर अमितगति वहाँसे चले गये। इसी बीचमे वहाँ एक सिंह आया, शरीर हिलाता हुआ, और दूरसे ही पैरोको उठाये हुए, जैसे शनि, वज्र या यम हो। जिसके नख गजोके शिरोके खूनसे लाल है, जिसकी अयाल भी रक्तरजित है, जिसका मुख अति विकट दाढोंके कारण खुला हुआ है, जिसके नेत्र लाल कमल और गुंजाफलके समान लाल हैं, जिसकी वाणी प्रलयसमुद्रके समान गम्भीर है, जो पूँछके दण्डसे अपने सिरको खुजला रहा है ॥१-१०॥

घत्ता—ऐसे उस सिंहको देखकर अंजना मूर्च्छित होकर धरतीपर गिर पडी। तब विद्याके वलसे आकाशमे जाकर वसन्तमाला जोर-जोरसे चिल्लायी ॥११॥

[८] "हा समीर पवनंजय, अनिल प्रभंजन! अंजना इस समय सिंहरूपी यमकी दाढोके भीतर है। हा, केतुमतीने यह कौन-सा काम किया। उसने इसे छोड़ा है, वह कौन-सी गति प्राप्त करेगी? हा तात महेन्द्र, सिंहको पकडो, सुप्रसन्नकीर्ति, तुम रक्षा करो, हा माँ, तुम भी सान्त्वना नहीं देती। तुम्हारी कन्या मूर्च्छित है, उठाओ इसे। अरे गन्धर्वो, देवदानवो विद्याधरो,

जक्खहों रक्खहों रक्खहों सहिय । ण तो पञ्चाणणेण गहिय ॥६॥
त णिसुणेंवि गन्धव्वाहिवइ । रणें दुज्जउ पर-उवयार-मइ ॥७॥
मणिचूडु रयणचूडहँ दइउ । पञ्चाणणु जेत्थु तेत्थु अइउ ॥८॥
अट्ठावउ सावउ होवि थिउ । हरि पाराउट्ठउ तेण किउ ॥९॥

घत्ता

तावेंहि गयणहों ओअरेंवि अञ्जणहें वसन्तमाल मिलिय ।
'इहु अट्ठावउ होन्तु ण वि ता वट्टइ (?) आम्मि माएँ गिलिय'॥१०॥

[९]

एम वोल्ल किर विहि मि परोप्परु जावेंहि ।
गीउ गेउ गन्धव्वे मणहरु तावेंहि ॥१॥
तं णिसुणें वि परिओसिय णिय मणें(?)। 'पच्छण्णु को वि सुहि वसइ्वणें॥२
असमाहि-मरणु जें णासियउ । अण्णुवि गन्धव्वु पयासियउ' ॥३॥
अवरोप्परु एम चवन्तियहुँ । पलियङ्क-गुहहिँ अच्छन्तियहुँ ॥४॥
माहवमासहों वहुलट्ठमिएँ । रयणिहेँ पच्छिम-पहरद्धेँ थिएँ ॥५॥
णक्खत्तें सवणें उप्पण्णु सुउ । हल-कमल-कुलिस-झस-कमल-जुउ॥६॥
चक्कङ्कुस-कुम्भ-सङ्ख-सहिउ । सुह-लक्खणु अवलक्खण-रहिउ ॥७॥
ताणन्तरें पर-वल-णिम्महेंण । पडिसूरें सूर-सम-प्पहेंण ॥८॥
णहेँ जन्ते वे वि णियच्छियउ । ओअरें वि विमाणहों पुच्छियउ ॥९॥

घत्ता

'कहिँ जायउ कहिँ वड्ढियउ कहों धीयउ कहों कुलउत्तियउ ।
कसु केरउ एवड्डु दुहु वणें अच्छहों जेण रुअन्तियउ' ॥१०॥

किन्नरों, मनुष्यो, यक्ष, राक्षसो, बचाओ मेरी सखी को, नहीं तो सिंह उसे पकड़ लेगा।" यह सुनकर परोपकारमें है बुद्धि जिसकी, तथा जो युद्धमें अजेय है, ऐसा चन्द्रचूडका पुत्र, विद्याधरराज रविचूड़ वहाँ आया, जहाँ सिंह था, और वह स्वयं अष्टापदका बच्चा बनकर बैठ गया। इस प्रकार सिंहको उसने भगा दिया ॥१-९॥

घत्ता—इतनेमें आकाशसे उतरकर वसन्तमाला अंजनासे मिलती है। (अंजना कहती है)—यहाँ अष्टापद होनेसे वह सिंह नहीं है, वह अष्टापद भी मायासे विलीन हो गया है ॥१०॥

[९] इस प्रकार दोनोंमें मधुर बातचीत हो ही रही थी तब-तक गन्धर्वने एक सुन्दर गीत गाया। उसे सुनकर अंजना अपने मनमें सन्तुष्ट हुई, उसे लगा कि कोई सुधीजन छिपकर वनमें रहता है, जिसने इस असामयिक मरणसे बचाया और यह गन्धर्वगान प्रकाशित किया। इस प्रकार आपसमें बातचीत करती हुई वे पर्यंक गुफामें रहने लगीं। तब चैत्र कृष्ण अष्टमी की रातके अन्तिम पहरके श्रवण नक्षत्रमें अंजनाको पुत्र उत्पन्न हुआ जो हल-कमल-कुलिश-मीन और कमलयुगके चिह्नोंसे युक्त था। चक्र-अंकुश-कुम्भ-शंखसे सहित शुभ लक्षणोंवाला वह अशुभ लक्षणोंसे रहित था। इसके अनन्तर जिसने शत्रुसेना-का नाश किया है और जिसकी प्रभा सूर्यके समान है ऐसे प्रतिसूर्यने आकाशमार्गसे जाते हुए उन दोनोंको देखा। उसने विमानसे उतरकर उनसे पूछा ॥१-९॥

घत्ता—"कहाँ पैदा हुईं, कहाँ बड़ी हुईं, किसकी कन्या हो, किसकी कुलपुत्रियाँ हो, किसका तुम्हें इतना बड़ा दुःख है जिसके कारण तुम वनमें रोती हुई रह रही हो" ॥१०॥

[१०]

पुणु वसन्तमालाएँ पडुत्तरु दिज्जइ ।
णिरवसेसु तहों णिय-वित्तन्तु कहिज्जइ ॥१॥

'अञ्जणसुन्दरि णामेण इम । सइ सुद्ध मुद्ध जिह जिण-पडिम ॥२॥
मणवेय-महाएविहें तणय । जइ मुणहों महिन्दु तेण जणिय ॥३॥
पायड पसण्णकित्तिहें भइणि । मणहर पवणञ्जयाहों घरिणि' ॥४॥
विज्जाहरु त णिसुणेंवि वयणु । पभणइ वाहम्म-भरिय-णयणु ॥५॥
'हउँ माएँ महिन्दहों मेहुणउ । सु-पसण्णकित्ति महु भायणउ ॥६॥
तउ होमि सहोयरु माउलउ । पडिसूरु हणूरुह-राउलउ' ॥७॥
त णिसुणेंवि जाणेंवि सरेंवि गुणु । अत्तिल्लु तेहिँ ता रुण्णु पुणु ॥८॥
ज लइउ आसि पुण्णेहिँ विणु । तं दिण्णु विहिहें ण सोय-रिणु ॥९॥

घत्ता

सरहसु साइउ देन्तएँहिँ ज एक्कमेक्क आवीलियउ ।
अंसु पणालें णीसरइ ण कलुणु महारसु पीलियउ ॥१०॥

[११]

दुक्खु दुक्खु माहारँ वि णयण लुहावेँवि ।
माउलेण णिय णियय-विमाणेँ चडावेँवि ॥१॥

सुर-करिवर-कुम्भत्थल-थणहेँ । गयणङ्गणेँ जन्तिहेँ अञ्जणाहेँ ॥२॥
णीसरिउ वालु अइ-दुल्ललिउ । ण णहयल-सिरिहेँ गब्भु गलिहेँउ ॥३॥
मारुइ दवत्ति णिवडिउ डलहेँ । ण विज्जु-पुञ्जु उप्परि सिलहेँ ॥४॥
उच्चाएँवि णिउ विज्जाहरेंहिं । ण जम्मणेँ जिणवरु सुरवरेंहिं ॥५॥
अञ्जणहें समप्पिउ जाय दिहिँ । ण णट्ठु पडीवउ लद्धु णिहिँ ॥६॥
णिय-पुरु पइसारेंवि णरवरेंण । जम्मोच्छउ किउ पडिकिण्णयरेंण ॥७॥

[१०] तब वसन्तमालाने उत्तर दिया, उसने उसका (अंजना-का) और अपना सारा वृत्तान्त बता दिया। इसका नाम अंजना सुन्दरी है, यह सती उसी प्रकार शुद्ध और सुन्दर है जिस प्रकार जिनप्रतिमा। यह महादेवी मदनवेगाकी कन्या है, यदि महेन्द्रको आप जानते है, उन्होंने इसे जन्म दिया है। यह प्रसन्नकीर्तिकी प्रकट बहन है, और पवनंजयकी सुन्दर गृहिणी।" यह वचन सुनकर विद्याधरकी ऑखे ऑसूसे भर आयी। वह बोला, "आदरणीये, मै महेन्द्रका साला हूँ, प्रसन्न-कीर्ति मेरा भानजा है, मैं तुम्हारा सगा मामा हूँ, प्रतिसूर्य हनुरुह द्वीपके राजकुलका।" यह सुनकर, जानकर और अतुल गुणोकी याद कर वह फिरसे रोयी कि पुण्योंके बिना जो कुछ मैने (पूर्वजन्ममें) अर्जित किया था, विधाताने वही मुझे शोक-ऋण दिया है ॥१-९॥

घत्ता—हर्षपूर्वक एक दूसरेको स्वागत देते हुए उन्होंने जो एक दूसरेको आलिंगन दिया, उससे अश्रुधारा इस प्रकार वह निकलती है, मानो करुण महारस ही पीड़ित हो उठा हो ॥१०॥

[११] कठिनाईसे उसे ढाढस बॅधाकर और ऑसू पोछकर मामाने उसे अपने विमानमे चढाकर ले गया। ऐरावतके कुम्भस्थलके समान है स्तन जिसके ऐसी वसन्तमाला जब आकाशमार्गसे जा रही थी, तब वह अत्यन्त सुन्दर बालक विमानसे गिर पडा, मानो आकाशतलरूपी लक्ष्मीसे गर्भ ही गिर गया हो। हनुमान् शीघ्र ही धरती पर गिर पड़ा, मानो शिलाके ऊपर विद्युत्पुंज गिरा हो, विद्याधर उसे उठाकर ले गये, मानो जन्मके समय सुरवर ही जिनेन्द्रको ले गये हों। उन्होंने अंजनाको सौप दिया। उसे धीरज हुआ, जैसे नष्ट हुई निधिको उसने दुबारा पा लिया हो, नरवर प्रतिसूर्यने अपने पुरमे ले जाकर उसका जन्मोत्सव मनाया ॥१-७॥

घत्ता

'सुन्दरु' जगेँ सुन्दरु भणेँवि 'सिरिसइलु' सिलायलु चुण्णु णिउ ।
हणुरुह-दीवेँ पवड्ढियउ 'हणुवन्तु' णामु ते तासु किउ ॥८॥

[१२]

एत्तहे वि खर-दूसण मेल्लावेप्पिणु ।
वरुणहों रावणहो वि सन्धि करेप्पिणु ॥१॥

णिय-णयरु पईसइ जाव मरु । णीसुण्णु ताम णिय-घरिणि-घरु ॥२॥
पेक्खेप्पिणु पुच्छिय का वि तिय । 'कहिँ अञ्जणसुन्दरि पाण-पिय' ॥३॥
तं णिसुणेँवि वुच्चइ वालियएँ । 'णव-रम्भ-गब्भ-सोमालियएँ ॥४॥
किर गब्भु भणेँवि पर-णरवरहोँ । केउमइएँ घल्लिय कुलहरहोँ' ॥५॥
त सुणेँवि समीरणु णीसरिउ । अणुसरिसेँहिँ वयसेँहिँ परियरिउ ॥६॥
गउ तेत्थु जेत्थु त सासुरउ । किर दरिसावेसइ सा सुरउ ॥७॥
पिय इट्ठ ण दिट्ठ णवर तहि मि । असहन्तु पहञ्जणु गउ कहि मि ॥८॥
परियत्तिय पहसियाइ-सयण । दुक्खाउर ओहुल्लिय-वयण ॥९॥

घत्ता

'एस भणेज्जहु केउमइ पूरन्तु मणोरह माएँ तउ ।
विरह-दवाणल-दीवियउ पवणञ्जय-पायवु खयहोँ गउ' ॥१०॥

[१३]

दुक्खु दुक्खु परियत्तिय सयल वि सज्जणा ।
गय रुयन्त णिय-णिलयहोँ उम्मण-दुम्मणा ॥१॥

पवणञ्जओ वि पडिवक्ख-खउ । काणणु पइसरइ विसाय-रउ ॥२॥
पुच्छइ 'अहोँ सरवर दिट्ठ धण । रत्तुप्पल-दल-कोमल-चलण ॥३॥
अहोँ रायहस हसाहिवइ । कहेँ कहि मि दिट्ठ जइ हस-गइ ॥४॥
अहोँ दीहर-णहर मयाहिवइ । कहेँ कहि मि णियम्बिणि दिट्ठ जइ ॥५॥
अहोँ कुम्भि कुम्भ-सारिच्छ-थण । केत्तहेँ वि दिट्ठ सइ सुद्ध-मण ॥६॥

घत्ता—वह सुन्दर था, दुनिया उसे सुन्दर कहती, 'श्रीशैल' इसलिए कि शिलातल चूर्ण किया था। हनुवन्त नाम इसलिए, क्योंकि हनुरुह द्वीपमे उसका लालन-पालन हुआ था ॥८॥

[१२] यहाँपर भी खरदूपणको मुक्त कराकर तथा रावण और वरुणकी सन्धि कराकर वर पवनंजय जब अपने नगरमे प्रवेश करता है तो उसे अपनी पत्नीका भवन सूना दिखाई दिया। उसने एक स्त्रीसे पूछा, "प्राणप्रिय अजना कहाँ है?" यह सुनकर वह कहती है, "नवकदली वृक्षके गाभके समान सुन्दर उस बालिकाके गर्भको परपुरुपका गर्भ समझकर केतुमतीने उसे कुलगृहसे निकाल दिया।" यह सुनकर पवनंजय वहाँसे निकल गया। अपनी समानवयके मित्रोंसे घिरा हुआ वह वहाँ गया जहाँ उसकी ससुराल थी कि शायद वह प्रिया वहाँ दिखाई देगी? लेकिन उसकी इष्ट प्रिया केवल वहाँ भी नहीं दिखाई दी। इसे असहन करता हुआ पवनंजय कहीं भी चला गया। नीचा मुख किये, दुःखातुर, प्रहसितके साथ वह लौट पड़ा ॥१-९॥

घत्ता—केतुमतीसे इस प्रकार कह देना कि हे माँ, तुम्हारे मनोरथ सफल हो गये, पवनंजयरूपी वृक्ष विरहकी ज्वालामें जलकर खाक हो गया ॥१०॥

[१३] सभी सज्जन बड़ी कठिनाईसे वापस आये। उन्मन, दुर्मन वे रोते हुए बड़ी कठिनाईसे अपने घर गये ॥१॥

प्रतिपक्षका हनन करनेवाला विपादरत पवनंजय भी जंगलमे प्रवेश करता है और पूछता है—अरे हसोंके अधिराज राजहंस! बताओ यदि तुमने उस हंसगतिको कही देखा हो, अहो दीर्घ-नखवाले सिंह, क्या तुमने उस नितम्बिनीको कहीं देखा है? हे गज, कुम्भके समान स्तनोवालीको क्या तुमने

अहों अहों असोय पल्लविय-पाणि । कहिँ गय परहुएँ परहूय-वाणि ॥७॥
अहों रुन्द चन्द चन्दाणणिय । मिग कहि मि दिट्ठ मिग-लोयणिय ॥८॥
अहों सिहि कलाव-सण्णिह-चिहुर । ण णिहालिय कहि मि विरह-विहुर' ॥९॥

घत्ता

एम भवन्ते विउलेँ वणेँ णग्गोह-महादुमु दिट्ठु किह ।
सासय-पुर-परमेसरेँण णिक्खवणेँ पयागु जिणेण जिह ॥१०॥

[१४]

त णिएवि वड-पायवु अण्णु वि सरवरु ।
कालमेहु णामेण खमाविउय गयवरु ॥१॥
'जं सयल-काल कण्णारिउ । अङ्कुस-खर-पहर-वियारियउ ॥२॥
आलाण-खम्भे जं आलियउ । ज सङ्कल-णियलहि णियलियउ ॥३॥
त सयलु खमेज्जहि कुम्भि महु' । तहि पच्चक्खाणउ लइउ लहु ॥४॥
'जइ पत्त वत्त कन्तहेँ तणिय । तो णउ णिवित्ति गइ एत्तडिय ॥५॥
जइ घईँ पुणु एह ण हूय दिहि । तो एत्थु मज्झु सण्णास-विहि' ॥६॥
थिउ मउणु लएवि णराहिवइ । झायन्तु सिद्धि जिह परम-जइ ॥७॥
सच्छन्दु गइन्दु वि सचरइ । सामिय-सम्माणु ण वीसरइ ॥८॥
पडिरक्खइ पासु ण मुअइ किह । भव-भव-किउ सुकिय-कम्मु जिह॥९॥

घत्ता

ताम रुअन्ते पहसिएँण अक्खिउ जणणिहेँ वुण्णाणणहेँ ।
'एउ ण जाणहुँ कहि मि गउ मरुएउ विओए अञ्जणहेँ' ॥१०॥

देखा है, उस शुद्ध और सतीमनको देखा है। अहो अशोक! पल्लवोंके समान हाथवाली, उसे देखा है? हे कोकिल, कोकिलवाणी कहाँ गयी? अरे सुन्दर चन्द्र! वह चन्द्रमुखी कहाँ गयी, हे मृग, बताओ क्या तुमने मृगनयनीको देखा है? अरे मयूर! तुम्हारे कलापकी तरह बालोंवाली उसे क्या तुमने देखा है? क्या वह विरहविधुरा तुम्हें दिखाई नहीं दी? ॥२-९॥

घत्ता—उस विपुल वियावान जंगलमें भटकते हुए उसे एक महान् वटवृक्ष इस प्रकार दिखाई दिया कि जिस प्रकार शाश्वतपुरके परमेश्वर जिनभगवान्‌ने दीक्षाके समय प्रयागवन देखा था ॥१०॥

[१४] उस वटवृक्ष और दूसरे एक सरोवरको देखकर पवनंजयने अपने कालमेघ नामके गजवरसे क्षमा माँगी। जो हमेशा मैंने तुम्हारे कानोंमें शब्द किया, अंकुशके खरप्रहारोंसे जो विदीर्ण किया, आलात खम्भेसे जो तुम्हे बाँधा, शृंखला और बेड़ियोंसे जो नियन्त्रित किया, हे गज, वह सब तुम क्षमा कर दो। उसने शीघ्र वहाँ यह प्रतिज्ञा कर ली, "यदि पत्नीका समाचार मिल गया, तो मेरी यह संन्यास-गति नहीं होगी, पर यदि मेरा यह भाग्य नहीं हुआ, तो मैं संन्यासविधि ले लूँगा।" राजा मौन होकर उसी प्रकार, स्थित हो गया जिस प्रकार परममुनि सिद्धिका ध्यान करते हुए मौन धारण करते हैं। वह गज स्वच्छन्द विचरण करता, परन्तु स्वामीके सम्मानको नहीं भूलता। वह उसकी रक्षा करता, और किसी भी प्रकार उसका साथ नहीं छोडता, जैसे भवभवका किया हुआ पुण्य साथ नहीं छोडता ॥१-९॥

घत्ता—इसी बीच, दुखी है चेहरा जिसका, ऐसी पवनंजयकी माँसे रोते हुए प्रहसित ने कहा, "यह मैं नहीं जानता कि अंजनाके वियोगमें पवनंजय कहाँ चला गया है" ॥१०॥

[१५]

तं णिसुणेंवि सव्वङ्गिय-पसरिय-वेयणा ।
पवण-जणणि मुच्छाविय थिय अच्चेयणा ॥१॥

पव्वालिय हरियन्दण-रसेंण । उज्जीविय कह वि पुण्ण-वसेंण ॥२॥
'हा पुत्त पुत्त दक्खवहि मुहु । हा पुत्त पुत्त कहिं गयउ तुहुँ ॥३॥
हा पुत्त आउ महु कमेंहिं पडु । हा पुत्त पुत्त रहगएहिँ चडु ॥४॥
हा पुत्त पुत्त उववणेंहिँ भमु । हा पुत्त पुत्त झेन्दुएँहिं रमु ॥५॥
हा पुत्त पुत्त अत्थाणु करें । हा पुत्त महाहवें वरुणु धरें ॥६॥
हा वहुएँ वहुएँ मइँ भन्तियएँ । तुहुँ घल्लिय अपरिक्खन्तियएँ' ॥७॥
पल्हाएँ धीरिय 'लुहहि मुहु । णिक्कारणें रोवहि काइँ तुहुँ ॥८॥
हउँ कन्ते गवेसमि तुव तणउ । इमु मेइणि-मण्डल केत्तडउ' ॥९॥

घत्ता

एम भणेवि णराहिवेंण उवयारु करेंवि सासणहरहुँ ।
उभय-सेढि-विणिवासियहुँ पट्ठविय लेह विज्जाहरहुँ ॥१०॥

[१६]

एक्कु जोहु सपेसिउ पासु दसासहो ।
अक्क-सक्क-तइलोक्क-चक्क-सतासहो ॥१॥

अवरेक्कु विहि मि खर-दूसणहुँ । पायाललङ्क-परिभूसणहुँ ॥२॥
अवरेक्कु कइद्धय-पत्थिवहों । सुग्गीवहों किक्किन्धाधिवहों ॥३॥
अवरेक्कु किक्कुपुर-राणाहुँ । णल-णीलहुँ पमय-पहाणाहुँ ॥४॥
अवरेक्कु महिन्द-णराहिवहों । तिकलिङ्ग-पहाणहों पत्थिवहों ॥५॥
अवरेक्कु धवल-णिम्मल-कुलहों । पडिसूरहों अञ्जण-माउलहों ॥६॥
दूवत्तएँ पत्तएँ गीढ-भय । हणुवन्तहों मायरि मुच्छ गय ॥७॥
अहिसिञ्चिय सीयल-चन्दणेंण । पढ वाइय वर-कामिणि-जणेंण ॥८॥
आसासिय सुन्दरि पवण-पिय । ण थिय तुहिणाहय कमल-सिय ॥९॥

[१५] यह सुनकर पवनंजयकी माँके सब अंगोंमें वेदना फैल गयी। वह मूर्च्छित और संज्ञाशून्य हो गयी। हरिचन्दनके रससे छिड़ककर (गीला कर) किसी प्रकार पुण्यके वशसे वह फिरसे जीवित हुई। (वह विलाप करने लगी), "हा पुत्र-पुत्र, मुझे मुँह दिखाओ, हा पुत्र, पुत्र, तू कहाँ गया, हे पुत्र आ, और मेरे चरणोंमें पड, हा पुत्र-रथ और गजपर चढो, हा पुत्र-पुत्र, उपवनोंमें घूमो, हा पुत्र, पुत्र, तुम गेंदोंसे खेलो, हा पुत्र-पुत्र, तुम सिंहासनपर बैठो, हा पुत्र-पुत्र, महायुद्धमें तुम वरुणको पकड़ो, हा बहू-हा बहू, मैंने बिना परीक्षा किये हुए तुझे निकाल दिया।" तब प्रह्लादने उसे धीरज बँधाया, "अपना मुँह पोंछो, अकारण तू क्यों रोती है, हे कान्ते, मैं तेरे पुत्रकी खोज करता हूँ, यह पृथ्वीमण्डल है कितना ? ॥१-९॥

घत्ता—यह कहकर और उसका उपचार कर राजाने शासनधरोंके द्वारा विजयार्धकी दोनों श्रेणियोंमे निवास करनेवाले विद्याधरोंके पास लेख भेजा ॥१०॥

[१६] एक योद्धाको सूर्य, शक्र और त्रिलोकमण्डलको सतानेवाले रावणके पास भेजा, एक और, दोनों खर और दूषणको, जो पाताललंकाके भूषण थे, एक और, कपियोंके राजा, और किष्किन्धाधिप सुग्रीवके पास, एक और वानरोंमें प्रमुख किष्कपुरके राजा नल और नीलके पास, एक और त्रैलोक्यमें प्रधान राजा महेन्द्रके पास, एक और धवल और पवित्र कुलवाले, अंजनाके मामा प्रतिसूर्यके पास। उस खोटे पत्रके पहुँचते ही भयभीत हनुमान्‌की माँ मूर्च्छित हो गयी। उसपर शीतल चन्दनका छिड़काव किया गया, और उत्तम कामिनीजनने हवा की। पवनंजयकी प्रिया अंजना आश्वासित हुई, मानो हिमाहत कमलश्री हो ॥१-९॥

घत्ता

ताम विधीरिय माउलेँण 'मा माएँ विसूरउ करि मणहोँ।
सिद्धहोँ सासय-सिद्धि जिह तिह पइँ दक्खवमि समीरणहोँ' ॥१०॥

[१७]

पुणु पुणो वि धीरेप्पिणु अञ्जणसुन्दरि।
णिय-विमाणेँ आरूढु णराहिव-केसरि ॥१॥

गउ तेत्तहेँ जेत्तहेँ केउमइ। अण्णु वि पल्हाय-णराहिवइ ॥२॥
णरवर-विन्दाइँ असेसाइँ। मेलेप्पिणु गयइँ गवेसाइँ ॥३॥
तं भूअरवाडइ ढुक्काइँ। घण-उलइँ व थाणहोँ चुक्काइँ ॥४॥
पवणञ्जउ जहिँ आरुहेँ वि गउ। सो कालमेहु वणेँ दिट्ठु गउ ॥५॥
उद्धाइउ उक्करु उव्वयणु। तण्डविय-कण्णु तम्बिर-णयणु ॥६॥
त पाराउट्ठउ करेँवि वलु। गउ तहिँ जेँ पडीवउ अतुल-वलु ॥७॥
गणियारिउ ढोइय वसिकियउ। णव-णलिणि-सण्डेँ भमरु व थियउ ॥८॥
किङ्करेँहिँ गवेसन्तेहिँ वणेँ। लक्खिउ वेल्लहलेँ लया-भवणेँ ॥९॥
जोक्कारिउ विज्जाहर-सएँहिँ। जिह जिणवरु सुरेँहिँ समागएँहिँ १०

घत्ता

मउणु लएवि परिट्ठियउ णउ चवइ ण चल्लइ 'झाण-परु।
जाय भन्ति मणेँ सव्वहु मि 'कट्ठमउ किण्ण णिम्मविउ णरु' ॥११॥

[१८]

पुणु सिलोउ अवणीयलेँ लिहिउ स-हत्थेँण।
'अञ्जणाएँ मुइयाएँ मरमि परमत्थेँण ॥१॥

जीवन्तिहेँ णिसुणमि वत्त जइ। तो वोल्लमि लइ एत्तडिय गइ' ॥२॥
त णिसुणेँवि हणुरुह-राणएँण। वज्जरिय वत्त परिजाणएँण ॥३॥
तामरस-रहास-सरिसाणणउ। विण्णि मि वसन्तमालञ्जणउ ॥४॥

घत्ता—तब मामाने भी उसे समझाया, "हे आदरणीये, अपने मनमे विषाद मत करो, सिद्ध जैसे शाश्वत-सिद्धिको देखते है, उसी प्रकार मैं तुम्हें पवनकुमारको दिखाऊँगा" ॥१०॥

[१७] इस प्रकार बार-बार अंजना सुन्दरीको समझाकर वह नराधिप सिंह अपने विमानमे बैठ गया। वह वहाँ गया, जहाँ केतुमती और प्रह्लादराज थे। अशेष नरवर समूह एक साथ होकर उसे खोजनेके लिए गये, वे उस भूतरवा अटवीमें पहुँचे, जो ऐसी मालूम होती थी, जैसे अपने स्थान च्युत मेघ-कुल हो। पवनंजय जिस गजपर बैठकर गया था, वह कालमेघ उन्हे वहाँ दिखाई दिया। अपनी सूँड और मुख ऊँचा किये हुए, कान फैलाये हुए, लाल-लाल आँखोवाला वह महागज दौडा, सेनाने उसे नियन्त्रित किया, वह अतुलबल फिर वापस वहाँ गया। हथिनी ले जानेपर वह उसी प्रकार वशमे हो गया जिस प्रकार कमलिनियोके समूहमे भ्रमर स्थित रहता है। वनमे खोजते हुए अनुचरोने उसे वेलफलोके लतागृहमें बैठे हुए देखा। सैकडों विद्याधरोने उसे वैसे ही नमस्कार किया, जिस प्रकार आये हुए देव जिनवरको नमस्कार करते है ॥१-१०॥

घत्ता—वह मौन लेकर बैठा था, ध्यानमे लीन, न बोलता है और न डिगता है, सभीको यह भ्रान्ति हो गयी, क्या यह मनुष्य काष्ठमय निर्मित है" ॥११॥

[१८] उसने अपने हाथसे धरतीपर श्लोक लिख रखा था, "अंजनाके मर जानेपर मै निश्चित रूपसे मर जाऊँगा।" यदि उसके जीनेकी खबर सुनूँगा, तो बोलूँगा। बस मेरी इतनी ही गति है।" यह पढकर हनुरुह द्वीपके राजाने अंजनाका समाचार उसे दिया कि किस प्रकार म्लान रक्त कमलके समान मुखवाली वसन्तमाला और अंजना दोनों, दोनो नगरोसे

जिह उभय-पुरहुँ परिघल्लियउ । जिह वणेँ भमियउ एक्कल्लियउ ॥५॥
जिह हरिवरेण उवसग्गु किउ । अट्ठावएण जिह उवसमिउ ॥६॥
जिह लद्धु पुत्तु भूसणु कुलहेँ । जिह णहेँ णिज्जन्तु पडिउ सिलहेँ ॥७॥
सिरिसइलु णाउँ हणुवन्तु जिह । वित्तन्तु असेसु वि कहिउ तिह ॥८॥
तं वयणु सुणेवि समुट्ठियउ । पडिसूरेँ णिय-णयरहोँ णियउ ॥९॥

घत्ता

मिलिउ पहञ्जणु अञ्जणहोँ वेण्णि मि णिय कहउ कहन्ताइँ ।
हणुरुह-दीवेँ परिट्ठियइँ थिरु रज्जु स इं भुञ्जन्ताइँ ॥१०॥

●

[२०. वीसमो संधि]

वड्ढन्तउ पावणि मउ-चूडामणि जाव जुवाण-भावेँ चडइ ।
तहिँ अवसरेँ रावणु सुर-संतावणु रणउहेँ वरुणहोँ अब्भिडइ ॥

[१]

दूआगमणेँ कोउ सवज्झइ । सइँ सरहसु दसासु सण्णज्झइ ॥१॥
परिवेढिउ रयणियर-सहासेँ हिँ । पेसिय सासणहर चउपासेँ हिँ ॥२॥
खर-दूसण-सुग्गीव-णरिन्दहुँ । णल-णीलहुँ माहिन्द-महिन्दहुँ ॥३॥
पल्हायहोँ पडिदिणयर-पवणहुँ । जाणेँ वि समरु वरुण-दहवयणहुँ ॥४॥
मारुइ सयण-जयासाऊरेँ हिँ । वुच्चइ पवणञ्जय-पडिसूरेँ हिँ ॥५॥
'वच्छ वच्छ परिपालहि मेइणि । माणहि राय-लच्छि जिह कामिणि ॥६॥
अम्हेँ हिँ रावण-आण करेवी । पर-बल-जय-सिरि-वहुअ हरेवी' ॥७॥
त णिसुणेँ वि अरि-गिरि-सोदामणि । चलण णवेप्पिणु पभणइ पावणि ॥८॥

निकाली गयीं, किस प्रकार अकेली वनमें घूमी, किस प्रकार सिंहने उपसर्ग किया और अष्टापदने उन्हें बचाया, किस प्रकार पृथ्वीका आभूषण पुत्र प्राप्त किया, किस प्रकार आकाशमें ले जाते हुए शिलापर गिर पड़ा और किस प्रकार उसका नाम पडा, यह सारा वृत्तान्त कह दिया। यह वचन सुनकर वह उठा, प्रतिसूर्य उसे अपने नगरमें ले गया ॥१-९॥

घत्ता—प्रभंजन वहाँ अंजनासे मिला, दोनों अपनी-अपनी कहानी कहते हुए हनुरुह द्वीपमें प्रतिष्ठित हो गये और स्वयं राज्यका उपभोग करने लगे ॥१०॥

बीसवीं सन्धि

जबतक भट चूडामणि हनुमान् बढकर युवक हुआ, तबतक सुरसन्तापक रावण वरुणसे भिड गया।

[१] दूतके आगमनसे उसका क्रोध बढ गया। स्वयं दशानन हर्षके साथ तैयारी करने लगा। वह हजारों निशाचरोंसे घिरा हुआ था, उसने चारों ओर शासनधर भेजे। खरदूषण-सुग्रीव राजाओंको, नल-नील और महेन्द्रनगरके महेन्द्रको। प्रह्लाद, प्रतिसूर्य और पवनजयको। वरुण और रावणके समरकी बात जानकर, स्वजनकी विजयकी आशासे पूरित पवनंजय और प्रतिसूर्यने हनुमान्से कहा, "वत्स-वत्स, तुम धरतीका पालन करो और राजलक्ष्मीको कामिनीकी तरह मानो। हमें रावणकी आज्ञाका पालन करना है और शत्रुसेनाकी विजयश्रीरूपी वधू-का अपहरण करना है।" यह सुनकर शत्रुरूपी पर्वतके लिए बिजलीके समान हनुमान्ने चरणोंको प्रणाम कर कहा—॥१-८॥

घत्ता

'कि तुम्हेँ विरुज्झहों अप्पुणु जुज्झहों मइँ हणुवन्तें हुन्तएँण ।
पावन्ति वसुन्धर चन्द-दिवायर किं किरणोहेँ सन्तएँण' ॥९॥

[२]

भणइ समीरणु 'जयसिरि-लाहउ । अज्जु वि पुत्त ण पेक्खिउ आहउ ॥१॥
अज्जु वि वालु केम तुहुँ जुज्झहि । अज्जु वि वूह-भेउ णउ वुज्झहि' ॥२॥
त णिसुणेवि कुविउ पवणञ्जइ । 'वालु कुम्भि किं विडवि ण भञ्जइ॥३॥
वालु सीहु किं करि ण विहाडइ । कि वालग्गि ण डहइ महाडइ ॥४॥
वालयन्दु किं जणेँ ण मुणिज्जइ । वालु मडारउ किं ण थुणिज्जइ ॥५॥
वालु भुवङ्गमु काइँ ण डङ्कइ । वाल रविहेँ तमोहु किं थक्कइ' ॥६॥
एम भणेवि पहञ्जणि-राणउ । लङ्काणयरिहेँ दिण्णु पयाणउ ॥७॥
दहि-अक्खय-जल-मङ्गल-कलसहिँ । णड-कइ-वन्दि-विप्प-णिग्घोसहिँ॥८॥

घत्ता

हणुवन्तु स-साहणु परिओसिय-मणु एन्तु दिट्ठु लङ्केसरेँण ।
छण-दिवसेँ वलन्तउ किरण-फुरन्तउ तरुण-तरणि ण ससहरेँण ॥९॥

[३]

दूरहोँ ज्जेँ तइलोक्क-भयावणु । सिरु णावेँवि जोक्कारिउ रावणु ॥१॥
तेण वि सरहसेण सव्वङ्गिउ । एन्तउ सामीरणि आलिङ्गिउ ॥२॥
चुम्वेँवि उच्छोलिहि वइसारिउ । वारवार पुणु साहुक्कारिउ ॥३॥
'धण्णउ पवणु जासु तुहुँ णन्दणु । भरहु जेम पुरएवहोँ णन्दणु' ॥४॥
एम कुसल-पिय-महुरालावेँहिँ । कङ्कण-कञ्चीदाम-कलावेँहिँ ॥५॥
त हणुवन्त-कुमारु पपुज्जेँवि । वरुणहोँ उप्परि गउ गलगज्जेँवि॥६॥

घत्ता—"मुझ हनुमान्‌के जीवित होते हुए तुम विरुद्धोंसे स्वयं लड़ोगे, क्या सूर्य-चन्द्रमा किरणसमूहके होते हुए धरती पर आते है ?" ॥९॥

[२] तब पवनंजय कहता है, "हे पुत्र, अभी तक तुमने न तो युद्ध देखा है और न विजयश्रीका लाभ। अभी भी तुम बालककी तरह हो, तुम क्या लडोगे, अभी भी तुम युद्धव्यूह नहीं जानते।" यह सुनकर हनुमान् क्रुद्ध हो गया, "क्या गजशिशु पेडको नहीं नष्ट कर सकता, शिशु सिंह क्या हाथीको विघटित नही करता, क्या शिशु आग अटवीको नहीं जलाती, क्या बालचन्द्रको लोग सम्मान नही देते, क्या बालक योद्धाकी प्रशंसा नही की जाती, क्या बाल सर्प काटता नही है, बाल रविके सामने क्या तमका समूह ठहर सकता है ?" यह कहकर हनुमान्‌ने लंकाके लिए कूच किया। दही, अक्षत, जल, मंगल-कलश, नट, कवि-वृन्द और ब्राह्मणोंके निर्घोषके साथ ॥१-८॥

घत्ता—सन्तुष्ट मन हनुमान्‌को अपनी सेनाके साथ रावणने इस प्रकार देखा मानो पूर्णिमाके दिन चन्द्रमाने आलोकित किरणोसे भास्वर तरुण-तरणिको देखा हो ॥९॥

[३] जो त्रिलोक भयंकर है, ऐसे रावणको उसने दूरसे ही सिरसे प्रणाम किया। उसने भी आते हुए हनुमान्‌का हर्ष और पूरे अंगोंसे आलिंगन किया। चूमकर अपनी गोदमे बैठाया, और बार-बार उसे साधुवाद दिया, "पवनंजय धन्य है जिसके तुम पुत्र हो, ऋषभनाथके पुत्र भरतके समान।" इस प्रकार कुशलप्रिय और मधुर आलापो, कंकण और स्वर्ण डोरके समूह-से उसका सम्मान कर रावण गरजता हुआ वरुणपर चढाई करनेके लिए गया। अपना कूच बन्द कर शरद्‌के मेघकुलके

वेलन्धर-धरेँ मुक्क-पयाणउ । थिउ वलु सरयब्भ-उल-समाणउ ॥७॥
कहि मि सम्वु-भर-दूसण-राणा । कहि मि हणुव-णल-णील-पहाणा॥८॥
कहि मि कुमुअ-सुग्गीवङ्गङ्गय । णं थिय थट्टेँहि मत्त महागय ॥९॥

घत्ता

रेहइ णिसियर-वलु वड्ढिय-कलयलु थडेँहि थडेँहि आवासियउ ।
णं दहमुह-केरउ विजय-जणेरउ पुण्ण-पुन्जु पुञ्जेँहि थियउ ॥१०॥

[४]

तो एत्थन्तरेँ रणेँ णिक्करुणहोँ । चर पुरसेँहिँ जाणाविउ वरुणहोँ ॥१॥
'देव देव किं अच्छहि अविचलु । वेलन्धरेँ आवासिउ पर-वलु' ॥२॥
चारहुँ तणउ वयणु णिसुणेप्पिणु । वरुणु णराहिउ ओसारेप्पिणु ॥३॥
मन्तिहि कण्ण-जाउ तहोँ दिज्जइ । 'केर दसाणण-केरी किज्जइ ॥४॥
जेण धणउ समरङ्गणेँ वङ्किउ । तिजगविहूसणु वारणु वसि किउ॥५॥
जे अट्ठावउ गिरि उद्धरियउ । माहेसर-वइ णरवइ धरियउ ॥६॥
जेण णिरत्थीकिउ णल-कुव्वरु । ससहरु सूरु कुवेरु पुरन्दरु ॥७॥
तेण समाणु कवणु किर आहउ । केर करन्तहुँ कवणु पराहउ ॥८॥

घत्ता

त णिसुणेँवि दुद्धरु वरुणु धणुद्धरु पजलिउ कोव-हुवासणेँण ।
'जइयहुँ खर-दूसण जिय वेण्णि मि जण तइउ काइँ किउ रावणेँण' ॥९॥

[५]

एव भणेवि भुवणेँ जस-लुद्धउ । सरहसु वरुणु राउ सण्णद्धउ ॥१॥
करि-मयरासणु विप्फुरियाहरु । दारुण-णागपास-पहरण-करु ॥२॥
ताडिय समर-भेरि उब्भिय धय । सारि-सज्ज किय मत्त महागय ॥३॥
हय पक्खरिय पजोत्तिय सन्दण । णिग्गय वरुणहोँ केरा णन्दण ॥४॥
पुण्डरीय-राजीव धणुद्धर । वेलाणल-कल्लोल-वसुन्धर ॥५॥

समान सेना वेलन्धर पर्वतपर ठहर गयी। कहीं पर शम्बूक, खर-दूषण राजा, कहींपर हनुमान् , नल-नील प्रमुख, कहींपर कुमुद, सुग्रीव, अग और अंगद, मानो मत्त महागजोंके समूह ही ठहरे हों ॥१-९॥

घत्ता—कोलाहल करता हुआ और समूहोंमे ठहरा हुआ निशाचर-बल ऐसा मालूम हो रहा था, मानो दशाननकी विजय-का जनक पुण्यपुंज ही समूहोंमे ठहरा हो ॥१०॥

[४] इसी अवधिमें निष्करुण वरुणसे, उसके चरपुरुषोंने कहा, "हे देव-देव, अचल क्यों बैठे हो, शत्रुसेना वेलन्धरपर ठहरी हुई है।" गुप्तचरोंकी बात सुनकर राजा वरुणको हटाते हुए एकान्तमें मन्त्रियोने उसके कानमें कहा—"रावणकी आज्ञा मान लीजिए, उसने धनदको युद्धके प्रागणमे कुचला, त्रिजग-भूषण महागज वशमे किया, जिसने अष्टापद पहाड़ उठाया, राजा माहेश्वरपतिको पकडा, जिसने नलकूबरको अस्त्रविहीन कर दिया। चन्द्रमा, कुबेर, सूर्य और इन्द्रको हराया, उसके साथ कैसा युद्ध, और आज्ञा मान लेनेपर कैसा पराभव ?" ॥१-८॥

घत्ता—यह सुनकर दुर्धर धनुर्धारी वरुण कोपकी ज्वालासे भडक उठा, "कि जब मैने खर और दूषण दोनोको जीत लिया था, उस समय रावणने क्या कर लिया था" ॥९॥

[५] यह कहकर, भुवनमें यशका लोभी वरुण हर्षपूर्वक युद्धके लिए सन्नद्ध होने लगा। गजके ऊपर मकरासनपर आरूढ, फडक रहे है ओठ जिसके, और दारुण नागपाश शस्त्र हाथमें लिये हुए। रणभेरी बजा दी गयी, ध्वज उठा लिये गये, हाथियों-को अम्बारीसे सजा दिया गया, अश्वोको कवच पहना दिये गये, रथ जोत दिये गये। वरुणके पुत्र निकल पड़े। पुण्डरीक,

तोयावलि-तरङ्ग-वगलामुह । वेलन्धर-सुवेल-वेलामुह ॥६॥
सञ्झा-गलगज्जिय-सञ्झावलि । जालामुह-जलोह-जालावलि ॥७॥
जलकन्ताइ अणेय पधाइय । सरहस आहव-भूमि पराइय ॥८॥
विरएँवि गरुड-वूहु थिय जावेँहि । वइरिहिँ चाव-वूहु किउ तावेँहि ॥९॥

घत्ता

अवरोप्परु वरियइँ मच्छर-भरियइँ दूरुग्घोसिय-कलयलइँ ।
रोमञ्च-विसट्टइँ रणेँ अब्भिट्टइँ वे वि वरुण रावण-वलइँ ॥१०॥

[६]

किय-भङ्गइँ उल्लालिय-खग्गइँ । रावण-वरुण-वलइँ आलग्गइँ ॥१॥
गय-घड-घण-पामेल्लिय-गत्तइ । कण्ण-चमर-मलयाणिल-पत्तइँ ॥२॥
इन्दणील-णिसि-णासिय-पसरइँ । सूरकन्ति-दिण-लद्धावसरइँ ॥३॥
उक्खय-करिकुम्भत्थल-सिहरइँ । कड्ढिय-असि-मुत्ताहल-णियरइँ ॥४॥
पम्मुक्केक्कमेक्क-करवालइँ । दस-दिसिवह-धाइय-कीलालइँ ॥५॥
गय-मय-णइ-पक्खालिय-घायइँ । णच्चाविय-कबन्ध-सङ्घायइँ ॥६॥
ताव दसाणणु वरुणहोँ पुत्तेँहिँ । वेढिउ चन्दु जेम जोमुत्तेँहिँ ॥७॥
केसरि जेम महागय-जूहहिँ । जीउ जेम दुक्कम्म-समूहहिँ ॥८॥

घत्ता

एक्कल्लउ रावणु भुवण-भयावणु भमइ अणन्तऍ वइरि-बलेँ ।
स-णियम्बु स-कन्दरु णाइँ महीहरु मत्थिज्जन्तऍ उवहि-जलेँ ॥९॥

राजीव, धनुर्धर, वेलानल, कल्लोल, वसुन्धर, तोयावलि, तरंग, बगलामुह, वेलन्धर, सुवेल, बेलामुख, सन्ध्या गलगर्जित, सन्ध्यावलि, ज्वालामुख, जलोह, ज्वालावलि और जलकेताइ आदि अनेक वरुण पुत्र दौड़े, हर्षके साथ युद्धभूमिपर पहुँचे। जबतक गरुड़-व्यूह बनाकर वे स्थित हुए कि तबतक शत्रुओने अपना चाप-व्यूह बना लिया ॥१-९॥

घत्ता—एक दूसरेसे बलिष्ठ, ईर्ष्यासे भरे हुए दूरसे ही कोलाहल करते हुए और पुलकित, रावण और वरुणके दल आपसमें लड़ने लगे ॥१०॥

[६] कवच पहने और खड्ग उठाये हुए रावण और वरुणके दल लडने लगे। जिनके शरीर गजघटाके सघन प्रस्वेदसे युक्त थे, उनके कर्णरूपी चमरोसे जो दक्षिणपवनका आनन्द ले रहे थे, इन्द्रनीलरूपी निशासे जिनका प्रसार रोक दिया गया था, सूर्यकान्त मणियोंसे जिन्हें दिनको दुबारा अवसर दिया गया, उखाड दिये है महागजोके कुम्भस्थल जिन्होंने, तलवारसे निकाल लिये है मुक्तासमूह जिन्होंने, जो एक दूसरेपर तलवार चला रहे है, दसों दिशापथोमे रक्तकी धाराएँ बह रही है जिसमें, गजमदके जलमे धोये जा रहे है घाव जिसमे, नचाये जा रहे है धड जिसमे। तवतक वरुणके पुत्रोंने दशाननको इस प्रकार घेर लिया, जिस प्रकार मेघ चन्द्रमाको घेर लेते है, जैसे सिंह हाथी घेर लेते है, जैसे जीव दुष्कर्मोंके समूहसे घेर लिया जाता है ॥१-८॥

घत्ता—अकेला भुवनभयंकर रावण अनन्त शत्रुसेनामें उसी प्रकार घूमता है, जिस प्रकार समुद्रमन्थनके समय तट और गुफाओके साथ मन्दराचल ॥९॥

[७]

ताम वरुणु रावणहों वि मिच्चेंहिं । त्रिहि-सुअ-सारण-मय-मारिच्चेंहि ॥१॥
हत्थ-पहत्थ-विहीसण-राएँहिं । इन्दह-घणवाहण-महकाएँहिं ॥२॥
अङ्गङ्गय-सुग्गीव-सुसेणेंहिं । तार-तरङ्ग-रम्भ-विससेणेंहिं ॥३॥
कुम्भयण्ण-खर-दूसण-वीरेंहिं । जम्बव-णल-णीलेंहिं सोण्डीरेंहिं ॥४॥
वेढिउ खत्त धम्मु परिसेसेंवि । तेण वि सरवर-धोरणि पेसेंवि ॥५॥
खेडिय अणडुह व्व जलधारहिं । ताम दसाणणु वरुण-कुमारेंहि ॥६॥
आयामेंवि सव्वहिं समकण्डिउ । रहु सण्णाहु महाधउ खण्डिउ ॥७॥
तं णिएवि णिय-कुल-णेयारे । सरहसेण हणुवन्त-कुमारें ॥८॥

घत्ता

रणउहें पइसन्तें वइरि वहन्ते रावणु उव्वेढावियउ ।
अवियाणिय-लाएं ण दुव्वाएं रवि मेहहँ मेल्लावियउ ॥९॥

[८]

सयल वि सत्तु सत्तु-पडिकूले । सवेढेंवि विज्जा-लङ्गूलें ॥१॥
लेइ ण लेइ जाम मरु-णन्दणु । ताम पधाइउ वरणु स-सन्दणु ॥२॥
'अरें खल खुद्द पाव वलु वाणर । कहि सञ्चरहि सण्ढ अहवा णर' ॥३॥
त णिसुणेप्पिणु वलिउ कइद्धउ । सीहु व सीहहों वेहाविद्धउ ॥४॥
विण्णि वि किर भिडन्ति दणु-दारण । णागपास-लङ्गल-प्पहरण ॥५॥
ताम दसाणणु रहवरु वाहेंवि । अन्तरें थिउ रण-भूमि पसाहेंवि ॥६॥
ओरें वलु वलु हयास अरें माणव । मइँ कुविएण ण देय ण दाणव ॥७॥
'ज किउ जम-मियङ्क-धणयक्कहुँ । सहस-किरण-णलकुव्वर-सक्कहुँ ॥८॥

घत्ता

अवरहु मि सुरिन्दहुँ णरवर-विन्दहुँ दिण्णइँ आसि जाइँ जाइँ ।
परिहव-दुमइत्तइँ फलइँ विचित्तइँ तुज्झु वि देमि ताइँ ताइँ' ॥९॥

[७] तबतक वरुणको रावणके अनुचरोंने घेर लिया, दोनों सुतसार और मयमारीचने, हस्त-प्रहस्त और विभीपणराजने, महाकाय इन्द्रजीत और घनवाहनने, अंग-अंगद-सुग्रीव और सुषेणने, तार-तरंग-रम्भ और वृषभसेनने, कुम्भकर्ण और खरदूपण वीरोंने, जाम्बवान् नल, नील और शौण्डीरने। इन्होंने घेर लिये क्षात्रधर्मको ताकपर रखकर। उसने भी सरवरोकी बौछार की। तबतक दशानन वरुणकुमारोंके साथ उसी प्रकार क्रीडा करने लगा जैसे बैल जलधाराओंसे। आयाम करके उसे सबने घेर लिया, और उसका रथ, कवच और महाध्वज खण्डित कर दिया। यह देखकर, अपने कुलका नेतृत्व करनेवाले हनुमान् कुमारने हर्षके साथ ॥१-८॥

घत्ता—युद्धमुखमें प्रवेश कर, दुश्मनोंको खदेडकर, उसी प्रकार रावणको मुक्त किया, जिस प्रकार अविज्ञात-मार्ग दुर्वात मेघोसे रविको मुक्त करता है ॥९॥

[८] शत्रुसे प्रतिकूल होनेपर सभी शत्रुओंको हनुमान्ने विद्याकी पूँछसे घेर लिया, और जबतक वह पकड़े या न पकड़े तबतक वरुण अपने रथके साथ दौडा। वह बोला, "अरे खल क्षुद्र पापी वानर, मुड, हे नर या सॉड, कहॉ जाता है?" यह सुनकर वानर मुडा जैसे सिंह सिंहपर क्रुद्ध होकर मुडता है। दनुका दारण करनेवाले वे दोनों आपसमें भिडते हैं, नागपाश और पूँछके प्रहरण लिये हुए। तब दशानन रथ हॉककर, रण-भूमिमे पहुँचकर बीचमे स्थित हो गया। वह बोला, "अरे हताश मनुष्यो, मुडो-मुडो, मेरे क्रुद्ध होनेपर न देव रहते हैं और न दानव। यम, चन्द्र और धनद अर्कका मैंने जो किया, सहस्र-किरण, नलकूबर और इन्द्रका जो किया ॥१-८॥

घत्ता—और भी सुरवृन्द और नरविन्दोको तुमने जो पराभवके बुरे-बुरे फल दिये हैं, वे मै तुझे दूँगा" ॥९॥

[९]

तं णिसुणेँवि अतुलिय-माहप्पें । णिब्भच्छिउ जलकन्तहोँ वप्पें ॥१॥
'लङ्काहिव देवाइउ अवरेँहिँ । सूर-कुवेर-पुरन्दर-अमरेँहिँ ॥२॥
हउँ पुणु वरुणु वरुणु फलु दावमि । पइँ दहमुह-दवग्गि उल्हावमि' ॥३॥
दोच्छिउ रावणेण एत्थन्तरेँ । 'केत्तिउ गज्जहि सुहडब्भन्तरेँ ॥४॥
अहिमुहु थक्कु ढुक्कु वलु वुज्झहि । सामण्णाउहेँहि लइ जुज्झहि ॥५॥
मोहण-थम्मण-डहण-समत्थेँहिँ । को विण पहरइ दिव्वहिँ अत्थेँहिँ' ॥६॥
एम भणेवि महाहवेँ वरुणहोँ । गहकल्लोलु भिडिउ णं अरुणहोँ ॥७॥
तहिँ अवसरेँ पवणञ्जय-सारेँ । आयामेँवि हणुवन्त-कुमारेँ ॥८॥

घत्ता

णरवर-सिर-सूलेँ णिय-लङ्गूलेँ वेढेँवि धरिय कुमार किह ।
कम्पावण-सीलें पवणावीलें तिहुवण-कोडि-पएसु जिह ॥९॥

[१०]

णिय-णन्दण-वन्धणेँण स-करुणहोँ । पहरणु हत्थेँ ण लग्गइ वरुणहोँ ॥१॥
रावणेण उप्पएँवि णहङ्गणेँ । इन्दु जेम तिह धरिउ रणङ्गणेँ ॥२॥
कलयलु घुट्ठु हयइँ जय-तूरइँ । जलणिहि-सद्द सद्द-गय-दूरइँ ॥३॥
ताव भाणुकण्णेण स-णेउरु । आणिउ णिरवसेसु अन्तेउरु ॥४॥
रसणा-हार-दाम-गुप्पन्तउ । गलिय-घुसिण कद्दमेँ खुप्पन्तउ ॥५॥
अलि-झङ्कार-पमुहलिज्जन्तउ । णिय-भत्तार-विओअ-किलन्तउ ॥६॥
असु-जलेण धरिणि सिञ्चन्तउ । कज्जल-मलेँण वयइँ मइलन्तउ ॥७॥
त पेक्खवि गञ्जोल्लिय-गत्तें । गरहिउ कुम्भयण्णु दहवत्तें ॥८॥

घत्ता

'कामिणि-कमल-वणइँ सुभ-लय-भवणइँ महुअरि-कोइल-अलिउलइँ ।
एयइँ सुपसिद्धइँ वम्मह-चिन्धइँ पालिज्जन्ति अणाउलइँ' ॥९॥

[९] यह सुनकर अतुल माहात्म्यवाले जलकान्तके पिता ारुणने तिरस्कारके स्वरमें कहा, "लंकाधिप तुम दूसरे सूर्य ुवेर और इन्द्रादि अमरों द्वारा जिता दिये गये हो, मैं वरुण ;, और तुम्हें वरुण फल दूँगा, तुम्हारे दसमुखोंकी आगको ान्त कर दूँगा।" तब रावणने उसे खूब झिडका, "सुभटोंके ीचमे कितना गरज रहा है, सामने आ, अपनी शक्ति समझ ले। ाामान्य आयुधोसे ही युद्ध कर, मोहन, स्तम्भन, दहन आदिमें ामर्थ दिव्य अस्त्रोसे आज कोई भी नही लड़ेगा।" यह कहकर ाह वरुणसे भिड़ गया, मानो ग्रह-समूह बालसूर्यसे भिड़ ाया हो ॥१-८॥

घत्ता—नरवरोंके शिर है शूल जिसमें, ऐसी कम्पनशील और पवनसे आन्दोलित अपनी पूँछसे हनुमान् वरुण कुमारोको ोरकर ऐसे पकड़ लिया जैसे त्रिभुवनके करोड़ों प्रदेशों को ॥९॥

[१०] अपने पुत्रोके बाँधे जानेसे दीन वरुणके हाथमें कोई मस्त्र नहीं आ रहा था। तब दशाननने आकाशमे उछलकर, ुद्धके प्रागणमें उस इन्द्रको पकड लिया। कोलाहल होने लगा, तयतूर्य बजने लगे, समुद्रके शब्दकी तरह तूर्य शब्द दूर-दूर तक ाया। तबतक भानुकर्ण नूपुर सहित समूचे अन्तःपुरको ले आया, जो करधनी, हार और मालाओसे ढका हुआ, गलित केशरकी कीचडमे निमग्न, भौरोंके झंकारोसे मुखरित, अपने ातियोंके वियोगसे क्लान्त, आँसुओंसे धरती सीचता हुआ, काजलके मलसे मलिन मुख था। यह देखकर हर्षित शरीर रावणने कुम्भकर्णकी निन्दा की ॥१-८॥

घत्ता—कामिनीरूपी कमल वन, शुक-लताभवन मधुकरी कोयल और अलिकुल, ये कामदेवके प्रसिद्ध चिह्न है, इनका अनाकुल भावसे पालन होना चाहिए ॥९॥

[११]

तं णिसुणेवि म-डोरु स-णेउरु । रविकण्णेण मुक्कु अन्तेउरु ॥१॥
गउ णिय-णयरु मडप्फर-मुक्कउ । करिणि-जूहु ण वारिहें चुक्कउ ॥२॥
कोक्कावेप्पिणु वरुणु दसासें । पुज्जिउ सुर-जय-लच्छि-णिवासें ॥३॥
'अवलुय म तुहुँ करहि सरीरहों । मरणु गहणु जउ सव्वहों वीरहों ॥४॥
णवर पलायणेण लज्जिज्जइ । जें मुहु णासु गोत्तु मइलिज्जइ' ॥५॥
दहवयणहों वयणेहिं स-करुणें । चलण णवेप्पिणु वुच्चइ वरुणें ॥६॥
'धणय-कियन्त-सक्क जें वङ्किय । सहसकिरण-णलकुब्बर वसि किय ॥७॥
तासु भिडइ जो सो जि अयाणउ । अज्जहों लग्गेंवि तुहुँ महु राणउ ॥८॥

घत्ता

अण्णु वि ससि-वयणी कुवलयणयणी महु सुय णामें सच्चवइ ।
करि ताएँ समाणउ पाणिग्गहणउ विज्जाहर-भुवणाहिवइ' ॥९॥

[१२]

कुसुमाउहकमला वुह-णयणे । परिणिय वरुण-धीय दहवयणें ॥१॥
पुप्फ-विमाणें चडिउ आणन्दें । दिण्णु पयाणउ जयजय-सद्दे ॥२॥
चलियइँ णाणा-जाण-विमाणइँ । रयणइँ सत्त णवद्ध-णिहाणइँ ॥३॥
अट्ठारह सहास वर-दारहुँ । अद्धछट्ठ-कोडीउ कुमारहुँ ॥४॥
णव अक्खोहणीउ वर-तूरहुँ । (णरवर-अक्खोहणिउ सहासहुँ ॥५॥
अक्खोहणि णरवर-गय-तुरयहुँ) । अक्खोहणि-सहासु चउ-सूरहुँ ॥६॥
लङ्क पइट्ठु सुट्ठु परिओसें । मङ्गल-धवलुच्छाह-पघोसे ॥७॥
पुज्जिउ पवण-पुत्तु दहगीवे । दिज्जइ पउमराय सुग्गीवे ॥८॥
खरेंण अणङ्गकुसुम वय-पालिणि । णल-णीलेहिँ धीय सिरिमालिणि ॥९॥

[११] यह सुनकर भानुकर्णने डोर नूपुरसे सहित अन्तःपुरको मुक्त कर दिया। अहंकारसे शून्य, वह अपने नगरके लिए उसी प्रकार गया मानो वारिसे (जलसे या हाथी पकडनेकी जगहसे) हथिनियोंका झुण्ड छूट गया हो। देव-लक्ष्मीके विलाससे युक्त दशाननने वरुणको बुलाकर उसका सम्मान किया और कहा, "शरीरका नाश मत कीजिए, मृत्यु ग्रहण और जय, सब वीरोंकी होती है। केवल पलायन करनेसे लज्जित होना चाहिए, जिससे नाम और गोत्र कलंकित होता है।" रावणके शब्द सुनकर, सकरुण वरुणने उनके चरणोंमें प्रणाम करते हुए कहा, "जिसने धनद, कृतान्त और वक्रको सीधा किया, सहस्र किरण और नलकूबरको वशमें किया, उससे जो लड़ता है वह अज्ञानी है, आजसे लेकर, तुम मेरे राजा हो" ॥१-८॥

घत्ता—और भी मेरी चन्द्रमुखी कुमुदनयनी सत्यवती नामकी कन्या है, हे विद्याधर भुवनके राजा, उसके साथ आप पाणिग्रहण कर लीजिए ॥९॥

[१२] बुधनयन दशमुखने कामदेवकी लक्ष्मीके समान वरुणकी कन्यासे विवाह कर लिया। आनन्दके साथ पुष्प-विमानमें चढा, और जय-जय शब्दके साथ उसने प्रयाण किया। नाना यान और विमान चल पड़े, सात रत्न नये खजाने, अठारह हजार सुन्दर स्त्रियाँ, तीन करोड़ कुमार, नौ अक्षौहिणी वरतूर्य, हजारों मनुष्योंकी अक्षौहिणियाँ, नरवर गज और अश्वोंकी अक्षौहिणियाँ, शूरोंकी चार हजार अक्षौहिणियाँ, साथ लेकर सन्तोष पूर्वक मंगल धवल और उत्साहकी घोषणाओंके मध्य रावणने पवनपुत्रका सत्कार किया, सुग्रीवने उसे अपनी कन्या पद्मरागा दी, और खर

अट्ठ सहास एम परिणेप्पिणु । गउ णिय-णयरु पसाउ भणेप्पिणु ॥१०॥
रम्भु कुमारु वि गउ वणवासहोँ । खग्गहो कारणेँ दिणयरहासहोँ ॥११॥

घत्ता

सुग्गीवङ्गङ्गय णळ-णील वि गय खर-दूसण वि कियत्थ-किय ।
विज्जाहर-कीळएँ णिय-णिय-लीळएँ पुरईं स इ भुञ्जन्त थिय ॥१२॥

इय 'वि ज्जा ह र क ण्ड' । वीस हिँ आसासएहिँ मे सिट्ठ ॥१॥
एण्हि 'उ ज्झा क ण्ड' । साहिज्जन्त णिसामेह ॥
धुवरायवत इयलु । अप्पणत्ति पत्ती सुयाणुपाढेण (?) ।
णामेण साऽमिअव्वा । सयम्भु घरिणी महासत्ता ॥
तीए लिहावियमिणं । वीसहिँ आसासएहिँ पडिवद्ध ।
'सिरि-विज्जाहर-कण्डं' । कण्ड पिव कामएवस्स ॥

इह पढम विज्जाहरकण्ड समत्त

व्रतोंका पालन करनेवाली अनंगकुसुम। नल और नीलने अपनी कन्या श्रीमालिनी। इस प्रकार वह आठ हजार कन्याओंका पाणिग्रहण कर, साभार अपने नगर चला गया। शम्बूकुमार वनवासके लिए चला गया,- सूर्यहास तलवार सिद्ध करनेके लिए" ॥१-११॥

घत्ता—सुग्रीव अंग, अंगद, नल, नील भी गये, खरदूषण भी कृतार्थ हुए, सब विद्याधरोकी क्रीड़ाके साथ भोग करते हुए, रहने लगे॥१२॥

इस प्रकार बीस आश्वासकोंका यह विद्याधर काण्ड मैंने पूरा किया। अब अयोध्याकाण्ड लिखा जाता है, उसे सुनिए। ध्रुवराजके वात्सल्य से, ... अमृतम्मा नामकी महासती, स्वयम्भूकी पत्नी है, उसके द्वारा लिखाया गया यह बीस आश्वासको मे रचित है। यह विद्याधर काण्ड काम-देवके काण्डके समान प्रिय है। विद्याधर काण्ड पूरा हुआ।